रत्नद्वीप

बँगला के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक

बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की पुस्तक का

हिन्दी-अनुवाद ।



अनुवादक

पण्डित जनार्दन झा



प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९२८



बहूजी बल-पूर्वक दासी के हाथ से आंचल छुड़ा कर बड़ी
सावधानी से सीढ़ियाँ तय करती हुई नीचे
को उतरने लगीं।—पृ० ७२।

रत्नदीप

पहला भाग।

[१]

गोपालचन्द्र चौबे सुन्दरपुर स्टेशन का असिस्टेन्ट मास्टर (छोटा बाबू) है। घर बर्दवान जिले के मदनपुर गाँव में है। उम्र लगभग तीस वर्ष की होगी। रङ्ग साँवला, देखने में सुन्दर, हट्टा-कट्टा युवा पुरुष है। एन्ट्रेन्स परीक्षा में फेल होकर गरीबी के कारण पढ़ना छोड़ जीविका के उद्देश से रेलवे विभाग में भर्ती हुआ है। पाँच-छः वर्ष से नौकर है। पचीस रुपया महीना मिलता है। बीच बीच में एक-आध रुपया ऊपर से भी मिल जाता है।

गोपाल जब छोटा था तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। गोपाल का एक छोटा भाई था, जो बाप की मृत्यु के दो ही वर्ष बाद मर गया। विधवा माँ बड़े कष्ट से गोपाल को पालने लगी। गाँव से कोस भर पर एक मिडिल स्कूल था वहीं उसने गोपाल का नाम लिखा दिया। मिडिल पास करने पर गोपाल को चार रुपये मासिक वजीफा मिलने लगा था। उसने बर्दवान में अपने मामा के घर रह कर एन्ट्रेंस तक पढ़ा था। मामा महेशचन्द्र बर्दवान में मुख्तार थे।

यथासमय गोपाल का विवाह हुआ। उसकी ससुराल गाँव से बहुत दूर न थी, सिर्फ तीन कोस के फासले पर थी। उसकी विधवा माँ पतोहू का मुँह देखकर दो ही वर्ष तक जीवित रही। माता की मृत्यु के अनन्तर गोपाल नौकरी की खोज में निकला।

सुन्दरपुर स्टेशन में गोपाल क़रीब एक वर्ष से नौकर है। सरकारी क्वार्टर में रहता है। किन्तु वह क्वार्टर इतना छोटा है कि उसे घर भी कह सकते हैं और पिंजरा भी। पानी-पाँडे दोनों वक्त उसकी रसोई बना देता है, इसके लिए उसे वेतन या इनाम दो रुपये महीना गोपाल देता है। महाराज अरहर की दाल और आलू की तरकारी के सिवा और कुछ बनाना नहीं जानता। दाल भी किसी दिन कच्ची ही रह जाती है और किसी दिन जल जाती है। तरकारी में किसी दिन नमक डालता है और किसी दिन वह भी नदारद। इस सम्बन्ध में गोपाल को बड़ी तकलीफ है।

गोपाल की स्त्री लीलावती की उम्र इस समय उन्नीस वर्ष की होगी। छोटे बाबू से लोग बराबर कहा करते हैं—"तुम इतना कष्ट सहते हो, स्त्री को बुला क्यों नहीं लेते?" वह कहता है—"हाँ, अब की बार उसे लेता आऊँगा।" असल बात यह थी कि उसकी स्त्री विदेश में आकर नहीं रहना चाहती थी। दो वर्ष पूर्व गोपाल जब जमुई स्टेशन में था तब, बहुत समझा-बुझाकर, स्त्री को एक बार बुला लाया था। किन्तु पन्द्रह दिन बीतते न बीतते लीलावती ने इस प्रकार रोना कलपना आरम्भ किया कि गोपाल को लाचार हो ससुर को तार देकर बुलाना पड़ा और उनके साथ उसे नैहर भेज देना पड़ा। लीलावती बराबर अपने बाप के ही घर रहती थी। मदनपुर में रहना उसे अच्छा नहीं लगता था। सास थी नहीं, उसे बुलाता ही कौन? घर पर केवल गोपाल का एक चचेरा भाई सपरिवार रहता था।

पति-पत्नी की प्रेम-कहानी गोपाल उपन्यासों में ही पढ़ता है या मित्रों के मुँह से सुन लेता है—अपने जीवन में उसने कभी इस प्रेम-रस का आस्वादन नहीं किया। पत्नी का प्रेम पति पर कैसा होता है—इसका परिचय अभी तक उसे नहीं मिला।

विवाह होने के बाद गोपाल जब अपने घर पर था तब लीलावती बालिका थी। उस समय दोनों में परस्पर भेंट होने या बातचीत करने का भी सुयोग न था। इसके बाद वह बराबर विदेश में ही घूमता रहा। कुछ दिन तो उम्मीदवारी में ही बीते। पाँच-छः वर्ष से नौकरी करता है। साल में एक बार छुट्टी लेकर, या बीच में एक आध बार बीमारी का बहाना करके भी, गोपाल घर,जाता है। परन्तु बहुत दिन के बाद स्वामी से मिलने पर स्त्री को जैसा हर्ष होना चाहिए, वैसा भाव लीलावती का होते गोपाल ने कभी नहीं देखा। विदा होते समय उसने गोपाल से यह कभी नहीं कहा कि और दो दिन ठहरो, उसने यह भी नहीं पूछा कि अब कब आओगे। प्रेम-सभाषण की बात तो दूर है। स्वामी के साथ लीलावती का बर्ताव रूखा सा था। वह लिखना-पढना जानती थी। गोपाल कभी कभी उसे चिट्ठी भी लिखता था। तब, गोपाल के दो तीन पत्र पाने पर, लीलावती उत्तर देती थी—वह भी बहुत मुख़्तसर—"पत्र मिला। हम लोग अच्छी तरह है। अपना,कुशल लिखिएगा।" गोपाल कभी कभी सोचता था, हम दोनों को एक साथ रहने का अब तक यथेष्ट अवसर नहीं मिला है इसी से लीलावती के मन में नई उम्र के योग्य अनुराग अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ। कुछ दिन एक साथ रहने ही से उसका स्वाभाविक प्रेम माधुर्य मुझे प्राप्त होगा। वह एकदम हृदय-शून्य नहीं जान पडती।

इस दफे गोपाल ने स्त्री को अपने साथ लाने का विचार किया है। माघ बदी ७ को उसकी विदा का मुहूर्त्त भी स्थिर हो गया है। नैहर में रहने से शायद किसी के बहकाने में पड कर ऐन मौके पर मुँह फेर ले,—इस ख़याल से उसने दस दिन पहले ही उसे अपने घर बुलवा लिया। तारीख़ का हिसाब करके

गोपाल ने एक हफ्ते की छुट्टी के लिए दरख्वास्त दी थी, किन्तु छुट्टी मजूर नहीं हुई। रेल की नौकरी में प्राय आवश्यकता के समय छुट्टी नहीं मिलती। एक दफे एक कर्मचारी ने पिता की मृत्यु की खबर पाकर घर जाने और श्राद्ध करने के लिए छुट्टी माँगी थी। तब साहब ने हुक्म दिया, "अभी मैं तुम को नहीं छोड सकता। दो महीने के बाद श्राद्ध कर लेना।" ऐसी अवस्था में रेल के नौकर जिस उपाय का अवलम्बन करते हैं, उसी उपाय का अवलम्बन गोपाल ने भी किया। "नियत तिथि से एक दिन पहले अर्थात् माघ वदी ६ को वह बीमारी की रिपोर्ट देकर साँझ की गाडी से घर चल दे। दूसरे दिन स्त्री के साथ रवाना हो और ८ को दिन के नव बजे की गाडी से यहाँ लौट आवे"।—स्टेशन-मास्टर ने यह सम्मति दी है। रेल के डाक्टर बाबू भी बडे दयालु पुरुष हैं, उन्होंने भी सर्टिफिकेट देने का वादा किया है।

देखते ही देखते गोपाल के घर जाने का निश्चित दिन आया। तीन बजे उसने स्टेशन में जाकर "सिक-रिपोर्ट" की। बडे बाबू ने यह खबर तार के जरिये सदर दफ्तर और डाक्टर बाबू के पास भेज दी। छुट्टी मजूर हुई। गोपाल अपनी चीज वस्तु ठिकाने से रख कर और बिछौना बाँध कर सात बजे की ट्रेन से रवाना होगा। पानी-पाँडे ने कुछ परावँठे और आलू-बैंगन की तरकारी बना कर दे दी, गोपाल ने उसे पत्ते में रख कर रूमाल में बाँध लिया। गाडी में निश्चिन्त होकर खावेगा। साथ में एक सुराही पानी भी रख लिया। बडे बाबू की स्त्री ने गीले कपडे के टुकडे में कुछ पान के बीडे लपेट कर रख दिये थे। गाडी पर चढते समय बडे बाबू ने वह गोपाल के हाथ में देकर कहा—हो सके तो देहात का बढिया गुड मेरे लिए लेते आना।

गाडी चल पडी।

---

[२]

गोपाल का मदनपुर गाँव मनिहारी स्टेशन से ढाई कोस था। रेलगाड़ी से उतर कर एक कुली के सिर पर गठरी रख कर और हाथ में बेग देकर नौ बजे के पहले गोपाल घर पहुँचा। आँगन में जाकर उस ने देखा कि सभी के चेहरों पर उदासी की छाप लगी हे, सभी पर चिन्ता की विषम छाया पड़ी हुई हैं। किसी अज्ञात विपत्ति की आशङ्का से उसका सारा शरीर काँप उठा।

बड़ी बहू उस समय गोशाला के बाहर खड़ी गाय दुहा रही थी, गोपाल की आवाज सुन कर भी उसने मुँह फेर कर नहीं देखा। भाई की बूढी सास रामनामी ओढे, हाथ में फूलों की टोकरी लिये, फुलवाड़ी में एक तरफ करवीर के फूल तोड़ रही थी। वह गोपाल की ओर एक बार देख कर फिर अपना काम करने लगी। टहलुनी चमेली की माँ पानी का घटा बगल में दबाये गोपाल के सामने हो कर चली गई। आँख उठा कर उसने एक बार पूछा तक नहीं कि "छोटे बाबू आप अच्छे हैं न?" केवल गोपाल की भतीजी स्वर्णलता—जो दश वर्ष की बालिका थी—धीरे धीरे पास आई और गोपाल का हाथ पकड़ कर स्नेह भरे स्वर में बोली—छोटे चाचा।

गोपाल ने सन्देह-पूर्ण स्वर में कहा—कहो बेटी! सब लोग अच्छे हैं?

स्वर्ण—हाँ, अच्छे हैं।

गोपाल—तुम्हारे बाबू जी कहाँ हैं?

स्वर्ण—क्या जानूॅं ।

गोपाल—क्या कहीं घूमने गये हैं ?

स्वर्ण—हाँ ।

"मेरी चिट्ठी नहीं मिली ?"—कहते कहते गोपाल दालान की ओर बढ़ा । एक बार उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखा । जिसे खोज रहा था, उसका कहीं कोई चिह्न दिखलाई नहीं दिया । इसी समय उसकी भौजाई (बड़ी बहू) उसके पास आ खड़ी हुई ।

गोपाल ने उसे प्रणाम करके कहा—भाभी आप प्रसन्न तो हैं ?

"हाँ" कह कर उसने उदास दृष्टि से एक बार गोपाल के मुँह की ओर देख कर आँखें नीची कर ली ।

"मैंने जिस चिट्ठी में आज अपने आने का समाचार लिखा था, क्या वह नहीं मिली ?"

"मिली तो थी ।"

"भैया कहाँ हैं ?"

"क्या जाने, कहीं गये हैं ।"

छोटा बच्चा अच्छा है ?—कहते कहते गोपाल ने दालान में पैर रक्खा ।

किन्तु कुछ ही देर में उसकी यह आशा भङ्ग होगई। बड़ी बहू स्वयं जलपान लेकर आई। एक तशतरी में दो लड्डू और एक गिलास पानी।

एक डिब्बे में पान के दो बीड़े रख कर स्वर्णलता चली गई। गोपाल लड्डू खाने लगा। बड़ी बहू चुपचाप उदासी के साथ बाहर की ओर देखने लगी।

गोपाल ने पानी पीकर गिलास को नीचे रक्खा और पूछा—भाभी, भैया कितनी देर में लौटेंगे?

"नहीं कह सकती।"

गोपाल—एक बैल गाड़ी तो अभी से कर लेनी चाहिए। चार बजे यहाँ से प्रस्थान करना होगा। साहब ने छुट्टी नहीं दी। बीमारी का बहाना करके आया हूँ। यहाँ सब प्रबन्ध ठीक है न?

बड़ी बहू ने गोपाल की ओर देखे बिना ही सिर हिला कर सूचित किया "नहीं"। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

यह देख कर गोपाल विस्मित होकर बोला—क्यों भाभी, क्या हुआ?

भाभी कुछ न बोली।

गोपाल चारपाई से उतर कर भाभी के पास खड़ा हो गया। काँपते हुए स्वर से उसने पूछा—क्या वह जीती नहीं है?

बड़ी बहू गोपाल की ओर देखे बिना ही बोली—उसका ऐसा सौभाग्य कहाँ?

"भाभी तो क्या हुआ है? कहतीं क्यों नहीं?"

"क्या हुआ है, यह तो मैं नहीं जानती। आज तड़के से वह लापता है"।

यह सुनते ही मानो गोपाल के सिर पर वज्राघात हुआ।

वह रुँधे हुए कण्ठ से बोला—क्या कहती हो, वह लापता है ? कहाँ गई !

"भगवान् जाने। तुम्हारे भाई उसको खोजने गये हैं।"

कुछ देर तक सोच कर गोपाल बोला—क्या कुछ लड़ाई-झगड़ा हुआ था ?

बड़ी बहू—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ।

गोपाल—तब ?

बड़ी बहू—कल साँझ को वह हाथ में चिराग लिये रसोई-घर में जा रही थी कि रास्ते में दीया हाथ से गिर पड़ा।

गोपाल—आपने इसके लिए उससे कुछ कहा भी ?

बड़ी बहू—मैंने सिर्फ यही कहा—छोटी बहू, दीये भर तेल तुमने बरबाद कर दिया। कहो तो इतना कहाँ से आवेगा ? गृहस्थी का खर्च न जाने कैसे चलता है। जरा सावधान होकर चलना चाहिए।—बस, इतना ही कहा था।

"इसके बाद ?"

"इसके बाद और क्या ? वह देर तक मुँह फुलाये बैठी रही। रात में उसने अच्छी तरह खाया भी नहीं।"

गोपाल ने सोचा, भाभी घटना को जितने संक्षेप में साधारण रीति से कह गई हैं प्राय उतने संक्षेप में वह हुई न होगी। जान पड़ता है, भाभी ने क्रोधवश उसे खूब कड़ी कड़ी बातें सुनाई होंगी। इसीसे मारे ग्लानि के बेचारी ने पानी में डूब कर अवश्य ही आत्म-हत्या कर डाली है। मानिनी स्त्री अपने मान के लिए जान को हथेली पर लिये रहती है। तत्पश्चात् भाभी से पूछा—कल रात को वह सोई कहाँ थी ?

"उस कमरे में।"

"वहाँ और कोई सोया था ?"

"वह और बच्ची एक ही बिछौने पर सोई थी।"

"वह बिछौने से कब उठ गई?"

"यह तो बच्ची नहीं बता सकती। वह भोली-भाली कल की लड़की क्या जाने। वह बेखबर पड़ी सो रही थी। सबेरे उसकी नींद खुली। जाग उठने पर उसने उसे नहीं देखा।"

"घर का कोई दरवाजा सबेरे खुला हुआ मिला था?"

"हाँ, खिड़की के किवाड़ खुले पड़े थे।"

गोपाल देर तक सोच कर सूखे मुँह से बोला—"भाभी, जरूर वह पोखर में डूब मरी है। मैं मल्लाह को बुला लाता हूँ"—कह कर वह जूता पहनने लगा।

बड़ी बहू उसकी चपकन पकड़ कर बोली—ठहरो, ठहरो, अभी यह बखेड़ा मत करो। यदि डूबी ही होगी तो क्या अब मल्लाह को बुलाने और जाल फेंकवाने से उसे जीती-जागती निकाल लोगे? पानी में डूबने से क्या आदमी इतनी देर तक जीता रह सकता है? अगर ऐसा ही होगा तो आज दिन में ही उसकी लाश पानी के ऊपर दिखलाई देगी। यदि यह न होगा तो यही बात जाहिर कर दी जायगी कि कल रात को उसके बाप के घर से एक नौकरनी आई थी, बड़े तड़के वह उसे नैहर ले गई है।

भाभी की बात सुनने से गोपाल का शरीर थर्रा उठा। उसने समझा, भाभी के मन में कुछ और ही तरह का सन्देह है। पर ऐसा कभी नहीं हो सकता। असम्भव है—असम्भव है! उसने कहा—"भाभी, आप जो समझ रही हैं, वह कभी नहीं हो सकता। या तो वह ग्लानि से पानी में डूब मरी है या बाप के घर भाग गई है। यह आप सच मानें। मैं किसी से कुछ न कहूँगा। किन्तु एक दफे घर के पिछवाड़े वाले तालाब के चारों ओर देख तो आऊँ। यदि वह डूब कर मर गई होगी तो कोई

वह रुँधे हुए कण्ठ से बोला—क्या कहती हो, 'वह लापता है ? कहाँ गई !

"भगवान् जाने। तुम्हारे भाई उसको खोजने गये हैं।"

कुछ देर तक सोच कर गोपाल बोला—क्या कुछ लड़ाई-झगड़ा हुआ था ?

बड़ी बहू—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ।

गोपाल—तब ?

बड़ी बहू—कल साँझ को वह हाथ में चिराग लिये रसोई-घर में जा रही थी कि रास्ते में दीया हाथ से गिर पड़ा।

गोपाल—आपने इसके लिए उससे कुछ कहा भी ?

बड़ी बहू—मैंने सिर्फ यही कहा—छोटी बहू, दीये भर तेल तुमने बरबाद कर दिया। कहो तो इतना कहाँ से आवेगा ? गृहस्थी का खर्च न जाने कैसे चलता है। जरा सावधान होकर चलना चाहिए।'—बस, इतना ही कहा था।

"इसके बाद ?"

"इसके बाद और क्या ? वह देर तक मुँह फुलाये बैठी रही। रात में उसने अच्छी तरह खाया भी नहीं।"

गोपाल ने सोचा, भाभी घटना को जितने संक्षेप में साधारण रीति से कह गई हैं प्रायः उतने संक्षेप में वह हुई न होगी। जान पड़ता है, भाभी ने क्रोधवश उसे खूब कड़ी कड़ी बातें सुनाई होंगी। इसीसे मारे ग्लानि के बेचारी ने पानी में डूब कर अवश्य ही आत्म-हत्या कर डाली है। मानिनी स्त्री अपने मान के लिए जान को हथेली पर लिये रहती है। तत्पश्चात् भाभी से पूछा—कल रात को वह सोई कहाँ थी ?

"उस कमरे में।"

"वहाँ और कोई सोया था ?"

गोपाल ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। डबडबाई हुई आँखों से बालिका की ओर देख कर कहा—बेटी, तुम्हारी छोटी काकी को क्या हुआ ?

वह करुण स्वर में बोली—काका, यह मैं नहीं जानती। मालूम होता है, वह नैहर चली गई है।

गोपाल ने आग्रह के साथ कहा—हाँ, बेटी मैं भी यही समझता हूँ। वह अवश्य ही बाप के घर गई है। अच्छा, तुम दोनों जिस बिछौने पर सोई थीं, उस पर कोई चिट्ठी या कागज का टुकड़ा सवेरे उठ कर तुमने नहीं देखा ?

"नहीं काका, कोई कागज या चिट्ठी नहीं देखी।"

"वह बिछौना कहाँ है ?"

"उस घर में रक्खा है।"

"अच्छा चलो, बिछौने को एक बार अच्छी तरह झाड़ कर देखें। शायद कोई चिट्ठी निकल आवे।" गोपाल ने सुना था कि आत्महत्या करने या कहीं चुपचाप जाने के पूर्व कितने ही लोग चिट्ठी में कारण लिख कर रख जाते हैं।

दोनों वहाँ से उठे और उस घर में गये। बिछौने को पसार कर बड़ी देर तक व्यर्थ ढूँढते रहे। तकिये के खोल को भी उतार कर देखा, पर कहीं कुछ न मिला।

घर से निकल कर गोपाल नंगे पैर पागल की भाँति आँगन में घूमने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने उसके हृदय के भीतर आग लगा दी हो।

बड़ी बहू रसोई घर के द्वार पर बैठी तरकारी बना रही थी, टहलुनी उससे कुछ दूर बैठी छोटे बच्चे को दूध पिला रही थी। यह दृश्य मानों गोपाल को स्वप्नवत् दिखलाई देने लगा।

न कोई चिह्न देखने में अवश्य आवेगा"। यह कह कर गोपाल बाहर गया।

गोपाल ने पोखर के चारों ओर घूम-फिर कर सतर्क दृष्टि से देखा, किन्तु कहीं किसी तरह का कुछ सन्देहजनक चिह्न न मिला। तब उसने सोचा, यदि डूबी ही होगी तो इस छोटे से तालाब में डूब मरेगी यह कुछ बात नहीं। इसमें डूबने योग्य शायद पानी भी नहीं होगा। घर के समीप वाले जिस तालाब में सब लोग नहाते धोते हैं, वहीं खोज करनी चाहिए।

किन्तु उस तालाब पर ढूँढने जाकर एक नई विपद यह हुई कि क्रमश परिचित लोगों से भेंट होने लगी। सभी पूछने लगे—"गोपाल बाबू, कब आये ?—गोपाल चाचा, आप एकाएक किधर से आ गये ? कहो गोपाल भैया, अच्छे हो ?" पग पग पर इस प्रकार के प्रश्नों से गोपाल घबडा उठा। नहाने का समय था। कोई तेल लगा कर कन्धे पर अँगौछा रक्खे स्नान करने को जा रहा है, कोई स्नान करके लौटा आ रहा है। इसलिए, ऐसी अवस्था में, पोखर के चारों तरफ घूमना गोपाल के लिए असम्भव हो गया। इसी से वह सकल्प को पूरा किये बिना ही लौट कर टूटे हृदय से चारपाई पर लेट गया। कुछ ही देर में स्वर्णलता गोपाल के पास आकर बैठी और बडे स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरने लगी। चुपचाप सोचते सोचते गोपाल की आँखों में आँसू भर आये। यह उस बालिका से छिपा न रहा। वह क्या कह कर चाचा को ढाढस बँधावे ? उसे मालूम हो गया है कि चाचा को चिन्ता या दुख किस बात का है, किन्तु वह अबोध बालिका बात करना क्या जाने। वह समझाने की कोई बात न कह कर बोली—चाचा ! तम्बाकू भर लाऊँ ?

वसन्तपुर से आदमी आकर कुछ रात रहते ही पालकी करके उसे ले गये हैं।

गोपाल ने कहा—मालूम होता है, वह सचमुच वहीं गई है।

बड़ी बहू—किसके साथ?

"अकेली ही चली गई होगी। यह तो जानती ही हो कि पच्छिम जाने में यह बराबर उज्र किया करती थी, मैं बुलाने को आ रहा हूँ, इस दफे जरूर जाना पड़ेगा इस डर से भाग कर यह बाप के घर चली गई है।"

बड़ी बहू—तुम चाहे जो कहो। भला वह घर की पतोहू, रात में अकेली—यह तीन कोस का लम्बा रास्ता—पैदल कभी वसन्तपुर जा सकती है?

गोपाल—वह बड़ी हठीली है। आप तो जानती ही हैं।

बड़ी बहू जरा चिढ़ कर बोली—जानती क्यों नहीं। उस को बाल बाल पहचान गई हूँ। आठ-दस दिन में ही उसने मुझे हैरान कर छोड़ा है। अच्छा, मैं एक बात कहती हूँ। मेरे गोपाल बाबू की उम्र कम है, ये अभी संसार से उतने परिचित नहीं। आप की तो अब उम्र हुई, बहुत कुछ देख सुन चुके हो। क्या आप की भी यही धारणा है कि छोटी बहू अकेली बाप के घर भाग गई है?

शिवनाथ ने स्त्री की बात का समर्थन या प्रतिवाद नहीं किया। यही कहा—मान लो, अगर यही बात हो तो क्या यह कार्य अच्छा हुआ है? लोग सुन कर क्या कहेंगे? छि, छि—क्या गृहस्थ के घर की बहू बेटी को ऐसा करना चाहिए!

बड़ी बहू—वह न बाप के घर गई है और न डूब कर ही मरी है। सच तो यह है कि वह हमी लोगों को डुबा गई है।

गोपाल का भाई चुप हो कर बैठ रहा।

बरामदे में खडी होकर स्वर्ण ने पुकारा—"काका, तम्बाकू भर लाई हूँ।" चिलम को हाथ में लेकर वह आग फूकने लगी।

बालिका की सान्त्वना से भरी करुण कण्ठ-ध्वनि गोपाल के मन में, प्यासे को जल की भाँति, सुखद मालूम हुई। इस विपत्ति के समय घर का और कोई उसकी ओर घूम कर देखता भी नही। एक मात्र इसी लडकी ने उसके दु ख का कुछ हिस्सा बँटा लिया है।

गोपाल बरामदे में आया। वह नीचे, दीवार से टिक कर बैठ गया और हुक्का पीने लगा।

कुछ देर यों ही बीतने पर गोपाल का भाई चट्टी जूता फटर फटर करता घर लौट आया। वह गोपाल से दस वर्ष बडा था। मैलेरिया ज्वर के प्रकोप से उसका शरीर दुबला हो गया था, और आँखें धँस गई थी। देखने से मालूम होता था मानों वह और भी पाँच-सात वर्ष अधिक उम्र का है।

भाई को देखते ही गोपाल ने हुक्का रख कर उसे प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न के बाद हुक्का पीते पीते उसने गोपाल से पूछा—सब बातें सुन चुके हो न ?

"जी हाँ, कहीं कुछ पता लगा ?"

"कुछ नहीं। किसी से मुँह खोल कर कुछ पूछ भी तो नहीं सकता। बडी मुश्किल बात है।"

गोपाल की भौजाई वहाँ आकर खडी हुई। सब सुन कर बोली—अब उपाय क्या है ? गाँव में अभी सब लोग काना फूसी करने लगेंगे।

गोपाल के भाई ने कहा—मैं टोले-महल्ले में कहता आया हूँ कि छोटी बहू की माँ अचानक बीमार हो गई है, इसलिए

वसन्तपुर से आदमी आकर कुछ रात रहते ही पालकी करके उसे ले गये हैं।

गोपाल ने कहा—मालूम होता है, वह सचमुच वहीं गई है।

बड़ी बहू—किसके साथ?

"अकेली ही चली गई होगी। यह तो जानती ही हो कि पच्छिम जाने में वह बराबर उज्र किया करती थी, मैं बुलाने को आ रहा हूँ, इस दफे जरूर जाना पड़ेगा इस डर से भाग कर वह बाप के घर चली गई है।"

बड़ी बहू—तुम चाहे जो कहो। भला वह घर की पतोहू, रात में अकेली—यह तीन कोस का लम्बा रास्ता—पैदल कभी वसन्तपुर जा सकती है?

गोपाल—वह बड़ी हठीली है। आप तो जानती ही हैं।

बड़ी बहू जरा चिढ़ कर बोली—जानती क्यों नहीं। उस को बाल बाल पहचान गई हूँ। आठ-दस दिन में ही उसने मुझे हैरान कर छोड़ा है। अच्छा, मैं एक बात कहती हूँ। मेरे गोपाल बाबू की उम्र कम है, ये अभी संसार से उतने परिचित नहीं। आप की तो अब उम्र हुई, बहुत कुछ देख सुन चुके हो। क्या आप की भी यही धारणा है कि छोटी बहू अकेली बाप के घर भाग गई है?

शिवनाथ ने स्त्री की बात का समर्थन या प्रतिवाद नहीं किया। यही कहा—मान लो, अगर यही बात हो तो क्या यह कार्य अच्छा हुआ है? लोग सुन कर क्या कहेंगे? छि, छि—क्या गृहस्थ के घर की बहू-बेटी को ऐसा करना चाहिए!

बड़ी बहू—वह न बाप के घर गई है और न डूब कर ही मरी है। सच तो यह है कि वह हमी लोगों को डुबा गई है।

गोपाल का भाई चुप हो कर बैठ रहा।

बरामदे में खड़ी होकर स्वर्ण ने पुकारा—"काका, तम्बाकू भर लाई हूँ।" चिलम को हाथ में लेकर वह आग फूकने लगी।

बालिका की सान्त्वना से भरी करुण कण्ठ-ध्वनि गोपाल के मन में, प्यासे को जल की भाँति, सुखद मालूम हुई। इस विपत्ति के समय घर का और कोई उसकी ओर घूम कर देखता भी नही। एक मात्र इसी लड़की ने उसके दुःख का कुछ हिस्सा बँटा लिया है।

गोपाल बरामदे में आया। वह नीचे, दीवार से टिक कर बैठ गया और हुक्का पीने लगा।

कुछ देर यों ही बीतने पर गोपाल का भाई चट्टी जूता फटर फटर करता घर लौट आया। वह गोपाल से दस वर्ष बड़ा था। मैलेरिया ज्वर के प्रकोप से उसका शरीर दुबला हो गया था, और आँखें धँस गई थीं। देखने से मालूम होता था मानों वह और भी पाँच-सात वर्ष अधिक उम्र का है।

भाई को देखते ही गोपाल ने हुक्का रख कर उसे प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न के बाद हुक्का पीते पीते उसने गोपाल से पूछा—सब बातें सुन चुके हो न ?

"जी हाँ, कहीं कुछ पता लगा ?"

"कुछ नही। किसी से मुँह खोल कर कुछ पूछ भी तो नहीं सकता। बड़ी मुश्किल बात है।"

गोपाल की भौजाई वहाँ आकर खड़ी हुई। सब सुन कर बोली—अब उपाय क्या है ? गाँव में अभी सब लोग काना-फूसी करने लगेंगे।

गोपाल के भाई ने कहा—मैं टोले-महल्ले में कहता आया हूँ कि छोटी बहू की माँ अचानक बीमार हो गई है, इसलिए

कोई आध घंटे तक गोपाल इसी प्रकार बैठा रहा। उसे इस तरह चिन्ता में निमग्न देख कर बड़ी बहू ने कहा—छोटे बाबू, जो बसन्तपुर जाना हो तो शीघ्र स्नान-भोजन करके चले जाओ, बैठे बैठे सोचने से क्या होगा? दिन चढ़ आया। भोजन करने का समय हो गया।

ठण्डी साँस लेकर गोपाल उठ खड़ा हुआ। उसने पूछा—तेल कहाँ है?

"तेल की कटोरी इसी ताक पर रक्खी है।"—कह कर बड़ी बहू फिर रसोई घर में चली गई।

गोपाल ने बेग खोल कर अपनी धोती और अँगाछा निकाला। सिर में थोड़ा सा तेल लगा कर अँगोछा कन्धे पर रक्खा। आँगन में ज्यों ही पैर रक्खा त्यों ही सदर फाटक से किसी के पुकारने का शब्द सुन पड़ा—चौबे जी हैं?

गोपाल का भाई (शिवनाथ चौबे) आँगन में बेंत के मोढ़े पर बैठा तम्बाकू पी रहा था। उसने कहा—कौन है?

"मैं हूँ फकीरुद्दीन शेख।"

"क्या है?"

"दरवाजा खोलिए—एक जरूरी काम है।"

फ़क़ीरुद्दीन गाँव का चौकीदार है। उसका जरूरी काम क्या है? जानने के लिए घर के सभी लोग व्यग्र हो उठे। गोपाल ... हो रहा।

गोपाल ने कहा—खा-पी कर मैं वसन्तपुर जाऊँगा। देखूँ क्या मामला है।

बड़ी बहू ने झुँझला कर कहा—अच्छी बात है, जा कर देख आओ। किन्तु मैं एक बात कह रखती हूँ कि यदि वह वहाँ हो तो कभी उसे फिर यहाँ मत लाना। उसे वहीं से साथ कर के पच्छिम या जहाँ खुशी हो ले जाना। खबरदार, वह फिर इस घर में पैर न रखने पावे। हम गरीब घर की स्त्री हैं। ऐसी खोटी स्त्री को पतोहू की तरह हम अपने घर में न रख सकेंगी।

गोपाल सिर पर हाथ रक्खे बैठा रहा। कुछ बोला नहीं।

---

[२]

कोई आध घंटे तक गोपाल इसी प्रकार बैठा रहा। उसे इस तरह चिन्ता में निमग्न देख कर बड़ी बहू ने कहा—छोटे बाबू, जो वसन्तपुर जाना हो तो शीघ्र स्नान-भोजन करके चले जाओ, बैठे बैठे सोचने से क्या होगा? दिन चढ़ आया। भोजन करने का समय हो गया।

ठण्डी साँस लेकर गोपाल उठ खड़ा हुआ। उसने पूछा—तेल कहाँ है?

"तेल की कटोरी इसी ताक पर रक्खी है।"—कह कर बड़ी बहू फिर रसोई घर में चली गई।

गोपाल ने बेग खोल कर अपनी धोती और अँगोछा निकाला। सिर में थोड़ा सा तेल लगा कर अँगोछा कन्धे पर रक्खा। आँगन में ज्यों ही पैर रक्खा त्यों ही सदर फाटक से किसी के पुकारने का शब्द सुन पड़ा—चौबे जी हैं?

गोपाल का भाई (शिवनाथ चौबे) आँगन में बेंत के मोढ़े पर बैठा तम्बाकू पी रहा था। उसने कहा—कौन है?

"मैं हूँ फकीरुद्दीन शेख।"

"क्या है?"

"दरवाजा खोलिए—एक जरूरी काम है।"

फकीरुद्दीन गाँव का चौकीदार है। उसका जरूरी काम क्या है? जानने के लिए घर के सभी लोग व्यग्र हो उठे। गोपाल भी खड़ा हो रहा।

शिवनाथ ने दरवाजा खोल दिया और कहा—आओ, भाई, फकीरुद्दीन, आओ। कहो क्या हाल है?

हट्टा कट्टा लम्बा जवान फ़कीरुद्दीन सिर में नीले रङ्ग का मुरैठा बाँधे, हाथ में एक लम्बी लाठी लिये, आँगन में आ खड़ा हुआ। घर की स्त्रियाँ ओट में खड़ी होकर सावधानी से सुनने लगीं कि देखें यह क्या कहता है।

फकीरुद्दीन ने कहा—पण्डित जी, क्या आपने छोटी बहू को कल रात में नैहर भेज दिया है?

शिवनाथ—हाँ, क्यों?

"तब उस औरत ने ठीक ही कहा था। कल पहर भर रात रहते मैं गश्त देने के लिए निकला था। खूब चटकीली चाँदनी छिटकी थी। जब गाँव से निकल कर आध कोस पर बाहर गया,—शिवगज की सरहद के पास पहुँचा तब देखा, दो औरतें रास्ते से जा रही हैं। एक बेवा थी और एक सधवा—जो विधवा थी वह बूढ़ी थी। जो सधवा थी वह घूँघट में मुँह छिपाये थी। उसकी उम्र मालूम न हो सकी। इतनी रात को मैदान के रास्ते यह कौन जा रही है! साथ में कोई मर्द नहीं है। मेरे मन में सन्देह हुआ। मैंने ललकारा—इतनी रात को कौन जा रहा है? आवाज सुनते ही दोनों खड़ी हो रहीं। मैंने पास जा कर पूछा—तुम कौन हो? कहाँ जाती हो? जो बूढ़ी थी वह बोली—हम शिवगज जा रही हैं। मैंने पूछा—शिवगज में किसके घर जाओगी? वह बोली—उपध्याजी के घर। मैंने कहा—उपध्याजी के घर? शिवगज में तो उपध्या कोई नहीं है। बूढ़ी चुप हो रही। यह देख कर मेरे मन में सन्देह और भी बढ़ गया। मैंने फिर कड़क कर पूछा—तू कौन है, कहाँ जा रही है, सच बोल, नहीं तो पकड़ कर थाने में ले जाऊँगा। मेरा नाम

फ़कीरुद्दीन चौकीदार है। यह कह कर मैं छ-सात हाथ पीछे हटा और लाठी को चारों ओर घुमाने लगा। तब बुढ़िया डर कर काँपते काँपते बोली—दुहाई चौकीदार साहब की ! हमें मारो मत। हम चोर बदमाश नहीं हैं। मैं शकली की माँ हूँ। घर बसन्तपुर में है। बसन्तपुर में इस बहू के बाप का घर है न। कृष्णदास उपध्या इसके बाप हैं। बहू को इसके बाप के घर लिये जा रही हूँ।—मैंने कहा—पहले तू ने क्यों कहा कि शिवगंज के उपध्याजी के घर जाऊँगी। वह बोली—नहीं बेटा, भूल से वैसा कह दिया था। मदनपुर के चोबेजी के यहाँ से आती हूँ। यह उनकी छोटी बहू है।—यह सुन कर मैंने उन्हें छोड़ दिया। मगर मन का सन्देह किसी तरह नहीं गया। इसी से घर आ कर सोचा, जाऊँ एक बार चौबेजी से पूछ आऊँ। बूढ़ी औरत ने जो कहा सो ठीक है न ?"

शिव बाबू—हाँ, उसने ठीक कहा है।

"अच्छा, तो जाता हूँ। सलाम।"

चौकीदार चला गया। घर वालों के मन से एक भारी बोझ उतर गया। छोटी बहू नैहर गई है। भाग कर भी गई तो अपने बाप के घर गई है। जिस बात का डर था उससे सौगुना, सहस्रगुना, अच्छा है। शकली की माँ को इस घर वाले जानते हैं—पहले कई बार वह यहाँ आ चुकी है। अब कोई डर नहीं। लोग हँसेंगे, कुछ निन्दा करेंगे तो भले ही करें। जिस निन्दा की आशङ्का हुई थी उससे भगवान् ने रक्षा की। सभी ठण्डी साँस छोड़ कर निश्चिन्त हुए। सारी दुश्चिन्ता दूर हो जाने से गोपाल का मन प्रसन्न हो उठा।

किन्तु उसका भाई क्रोध करने लगा। बोला—छि, छि, कलङ्किनी है ! कुल-कलङ्किनी है ! देखो तो उसकी ऐसी

चाल! अगर नैहर ही जाना था तो हम लोगों से कह कर जाती। हम लोग इतनी देर से मारे चिन्ता के व्याकुल क्यों होते? और कुछ नहीं, छोटी बहू ने जरूर ही रो-कलप कर अपनी माँ को चिट्ठी लिखी होगी—'ये लोग मुझे जाने नहीं देंगे, तुम चुप चाप शकली की माँ को भेज दो। मैं उसके साथ छिप कर चली आऊँगी।' माना कि छोटी वहू अभी लड़की है—उसे बुद्धि नहीं। किन्तु उसकी माँ तो लडकी नहीं है, वह तो अब बूढ़ी हुई। उस को यह नही सूझा कि इस तरह मेरी लडकी रात में भाग कर यदि मेरे यहाँ आवेगी तो लोग क्या कहेंगे? छि, छि, वह भी वैसी ही है! धिक्कार है उसकी वुद्धि को!

गोपाल स्नान करने गया। तब प्राय दोपहर का समय था। सब लोग स्नान करके चले गये थे। घाट सूना पडा था। वह बडी देर तक नहाता रहा और मन ही मन विचार करता रहा।

चौकीदार के मुँह से वृत्तान्त सुन कर गोपाल के मन में जो आनन्द की तरङ्ग उठने लगी थी वह देर तक स्थिर नहीं रही। वह आनन्द उसके जीवित रहने की खबर का था। किन्तु जो सन्देह बडी वहू के मन में हुआ था, वह दु सह सन्देह साँप की तरह गोपाल के मन को भी डसने लगा। नैहर को जाने की बात सुनने से जीवनव्यापी लज्जा और अप मान के हाथ से छुटकारा पाने का कुछ आनन्द पहले हुआ था। अब स्नान करते करते फिर उसके मन में कुछ कुछ विषाद आने लगा। क्या यही धर्मपत्नी का लक्षण है! क्या यही स्त्री का स्नेह है! स्वामी के साथ विदेश जाना होगा, यह सुन कर भाग खडी हुई! आगे पीछे की कोई वात सोचे विना ही इस प्रकार चुपचाप अकेली घर से निकल भागी! ऐसी स्त्री लेकर क्या होगा? जवरदस्ती घर पकड कर ले जाने ही से क्या

होगा? ऐसी स्त्री से सासारिक सुख की आशा करना दुराशा मात्र है। एक बार मुझ से भेंट कर लेने के लिए भी न ठहरी, मेरे साथ न जाती तो न सही। इतने दिन बाद एक बार मुझ से भेंट तो कर लेती। भेंट करने में क्या हानि थी? क्रोध और अभिमान से गोपाल का दम फूलने लगा। जब वह किसी तरह दुःख के वेग को न सह सका तब अपने मन में कहने लगा कि जाने भी दो, अब ससुराल न जाऊँगा, उसके साथ अब कोई सम्पर्क न रक्खूँगा। मैं दूसरा ब्याह करूँगा।—इन बातों को सोचते विचारते स्नान करके गोपाल घर लौट आया।

खाने पीने के बाद बिछौने पर लेट कर गोपाल सोचने लगा, आज तो सुन्दरपुर लौटना नहीं है—कल दोपहर की गाड़ी से जाऊँगा। दूसरा विवाह करूँगा, इस सिद्धान्त को एक प्रकार से मन में स्थिर कर लेने पर सोचा कि फिर भी लीलावती के साथ एक बार आखिरी मुलाकात कर लेना चाहिए। आज बसन्तपुर जाकर उससे खुल कर बातें करूँगा। कहूँगा—जैसे अन्य स्त्रियाँ अपने पति के साथ रहती हैं, उसी तरह रहना यदि तुम स्वीकार करो तो मेरे साथ चलो। यदि उस तरह मेरे साथ रहना मंजूर न हो तो आज मुझ से साफ साफ कह दो—मैं दूसरा विवाह कर लूँ।

गोपाल ने घड़ी निकाल कर देखा, एक बज कर बीस मिनट हुए थे। उसने कपड़े पहने। सिर्फ छतरी और बेग ले कर वह पैदल ही ससुराल को रवाना हुआ।

जब वह फाटक से बाहर निकल रहा था तब स्वर्णलता न मालूम किधर से दौड़ कर आई और अपना छोटा हाथ उठा कर बोली—काका।

"क्या है स्वर्ण!"

"मेरी एक बात मानोगे ?"

गोपाल कुछ विस्मित हो कर बोला—कौन बात ? कहो बेटी, मानूँगा।

"काकी को बहुत न धमकाना। उससे झगड़ना मत।"

इस दु:ख के समय में भी गोपाल ने मुस्कुरा कर कहा—अच्छी बात है, बहुत न बकूँगा, झगड़ा भी न करूँगा।

यह सुन कर बालिका का मुँह प्रफुल्ल हो गया। वह स्नेह भरे स्वर में बोली—काका, कब लौटोगे ?

"बेटी, कल आऊँगा।"—कह कर गोपाल ने बड़े प्यार के साथ उसका चिबुक छू कर कहा—अच्छा तो मैं अब जाता हूँ।

गोपाल चल दिया।

वसन्तपुर गाँव छोटा होने पर भी धन जन से सम्पन्न था। बाबू शारदाचरण राय और उनके भाई इस गाँव के और आस पास के कई गाँवों के ठीकेदार थे—किन्तु गाँव वाले इन्हें जमींदार ही कहा करते थे। गोपाल के ससुर कृष्णदास उपाध्याय भी धनवान् थे और गाँव के ठीकेदार रायजी से उन की मित्रता थी।

उस दिन दोपहर के बाद कुछ आराम करके कृष्णदास दालान में आकर तख्त पर आ बैठे। चिट्ठीरसा एक हिन्दी समाचार-पत्र और दो चिट्ठियाँ दे गया। वे चिट्ठी पढ रहे थे, इसी समय पडोसी प्रभुनाथ पाठक ने, देशी कपडे का कोट पहिने, खडाऊँ खटखटाते हुए बरामदे में आकर पूछा—"समाचार-पत्र आया"? कृष्णदास ने कहा—"हाँ, आया है, आइए।" पाठकजी ने चौकी पर बैठते ही, समाचारपत्र को झट उठा लिया। कोट के पाकेट से चश्मा निकाला और धोती के छोर से उसे अच्छी तरह पोंछा। फिर चश्मा लगा कर कागज को खोल अत्यन्त मनोयोग के साथ पढना आरम्भ किया।

हिन्दी समाचार पत्र का ऐसा उत्साही पढने वाला इस प्रान्त में दूसरा नही है। प्रति शनिवार को, तीर्थ के कौवे की भाँति, ये कृष्णदास का समाचार-पत्र झपटने के लिए ध्यान लगाये बैठे रहते हैं। ये शनि और रवि इन्ही दो दिनों में विज्ञापनों सहित सारा समाचार-पत्र, एक एक अक्षर तक, पढ डालते हैं। स्मरण-शक्ति भी इनकी असाधारण है। ये बतला सकते हैं कि पाँच वर्ष

पूर्व कब किस शहर में आग लगकर कितने लाख की क्षति हो गई थी। बोअर-युद्ध का सवाद इन्हें अभ्यस्त सा हो गया था। प्रतिसप्ताह का युद्ध-वृत्तान्त आइने की तरह इनकी आँखों के सामने झलक रहा था। इतना ही नहीं, किन्तु युद्धकौशल के ये एक निर्भीक समालोचक थे। पढते समय ये दोनों दलों के युद्ध-सम्बन्धी स्थानों को कागज़ पर पेन्सिल से चिह्नित कर देते थे। एक दल जब दूसरे दल से पराजित होता तब ये सूक्ष्म कारण बतला देते थे कि किस भूल से हार हुई है। कागज पर अङ्कित कर कहते थे—अफसोस ! यदि अमुक जेनरल (सेनापति) ऐसा न करके इस तरह काम लेता तो क्या इस युद्ध में उसकी हार होती ? हाय ! उसने कैसी भूल की। उसको इतनी भी समझ नहीं—इसी समझ पर वह मूर्ख सेनापतित्व करने गया था।

कोई आध घटे तक मन ही मन पढने के अनन्तर पाठक महाशय ने कहा—युद्ध सवाद अभी पढ़ूँ या नहीं ?

कृष्णदास स्वय युद्ध की खबरें पढ कर सब बातें अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे। इसी से प्रति शनिवार को उन को समझाने का भार पाठक जी ने अपने ऊपर लिया था।

कृष्णदास ने कहा—पढिए।

पाठक जी तब बहुत धीरे धीरे युद्ध-समाचार पढने लगे। बीच बीच में कागज को नीचे रख कर टीका टिप्पणी कर के कृष्णदास को भली भाँति समाचारों का तत्त्व समझाने लगे। इसी समय हाथ में बेग लिये हुए गोपाल उनके सामने आकर खडा हुआ। उसका चेहरा उतर गया था, पैरों पर धूल चढी हुई थी और बदन पसीने से तर-बतर था।

जमाई को एकाएक इस अवस्था में देख कर कृष्णदास

बाबू कुछ आश्चर्य के साथ बोले—आइए, आइए, बैठिए। घर पर तो सब कुशल-मङ्गल है ?

"जी हाँ" कह कर गोपाल ने बेग और छतरी को नीचे रक्खा और ससुर को प्रणाम किया।

कृष्णदास ने आशीर्वाद देकर कहा—बैठो, बैठो, जूते उतार दो। फिर नोकर को पुकार कर कहा—"पैर धोने के लिए पानी ले आ"। ओफ! बड़ा कष्ट उठाया। पैदल ही चले आये ?

"जी हाँ।"

"सुन्दरपुर से कब आये ?"

"आज सबेरे ही।"

"अरे कोई है ? भीतर खबर दे आ, जमाई बाबू आये हैं। आगये सो अच्छा ही किया। भेट हो गई। लीला को सुन्दरपुर से जाने का मुहूर्त तो आज ही था ?"

"जी हाँ।"

"तो आज नहीं गये ?"

"जी नहीं, कल जाऊँगा।"

"अच्छी बात है। यदि हम लोगों से भेट करने ही के लिए आये थे तो लीला को भी अपने साथ लिये आते! उसकी माँ आज भी रोती थी। कहती थी, अहा! बेटी आज पश्चिम जायगी। फिर न जाने कब आवेगी। जाते समय बेटी को एक बार देख भी न सकी।"

यह सुनते ही गोपाल के सिर पर वज्र सा टूट पड़ा। उस के आँख कान से मानो आग की चिनगारियाँ झड़ने लगीं। सिर घूमने लगा। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। तब वह मूर्च्छित हो कर चोकी पर से धम से नीचे गिर पड़ा।

"क्या हुआ ? क्या हुआ ?" कह कर उसके ससुर चिल्ला

उठे। एक आदमी ने दौड कर भीतर खबर कर दी। घर के भीतर से लोग दौड आये। जो जहाँ था वहीं से उठ धाया। "पानी लाओ", "पखा लाओ" की पुकार मच गई। इस आकस्मिक घटना से भारी हल्ला मच गया। एक आदमी गोपाल के कोट के बटन खोलने लगा। एक आदमी उसके सिर पर ठडा पानी छिडकने लगा। एक आदमी पाठक जी के हाथ से समाचार-पत्र लेकर उसी से गोपाल के मुँह पर हवा करने लगा। गोपाल की सास हवेली के सदर फाटक के पास आ खडी हुई। कृष्णदास की माँ दालान के भीतर आकर गोपाल के सिरहाने जा बैठी। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। गोपाल के मुँह की ओर देख कर वह कम्पित स्वर से बोली—हे मधुसूदन! हे दीनबन्धु! हे हरि! दया करो। हमारे बच्चे को अच्छा कर दो। दुहाई महादेव बाबा की!

डाक्टर पडोस ही में रहता था। एक आदमी उसे खबर देने दौड गया। डाक्टर बाबू ने झटपट आकर पूछा, क्या हुआ है?

कृष्णदास ने सक्षेप में सब कह सुनाया।

डाक्टर बाबू तब गोपाल को होश में लाने का यत्न करने लगे। फल शीघ्र देखने में आया।

गोपाल आँखें मल कर चकित दृष्टि से चारों ओर देखने लगा।

कृष्णदास ने कहा—बाबू अब कैसे हो? अब तबीअत कुछ अच्छी मालूम होती है?

गोपाल खिन्न स्वर में बोला—क्या हुआ है?

कृष्णदास ने फिर पूछा—कैसे हो?

"अच्छा हूँ।"

"बैठ सकोगे? उठ कर बैठो।"

गोपाल ने बैठने की चेष्टा की किन्तु बैठ न सका। उस का शरीर छ महीने के रोगी के भाँति दुर्बल हो गया है। दो आदमियों ने उसे उठा कर चौकी पर लिटा दिया।

उसका कोट भीग गया था। एक आदमी पास बैठ कर पखा झलने लगा।

कुछ देर बाद गोपाल ने कहा—ठण्ड लगती है, पखा झलना बन्द कर दो।

कृष्णदास ने कहा—इस धूप में, इतनी दूर पैदल आने से सरदी-गरमी हो गई है।

कृष्णदास की माँ बोली—अरे दादा! ऐसा काम क्यों किया। किराये की बैलगाडी कर लेते! सुकुमार शरीर—पैदल चलने का बिलकुल अभ्यास नही, बरदाश्त कैसे हो।

पाठक महाशय ने कहा—"इन को अब यहाँ क्यों लिटा रक्खा है? भीतर ले जाओ। कोट उतार कर चारपाई पर लिटा दो।" बोअर-युद्ध के बीच ऐसी अभावनीय बाधा उपस्थित होने से पाठक जी बहुत ही अधीर हो गये थे। धैर्य धारण करना उन के लिए कठिन हो गया था।

डाकृर बाबू भी यही सलाह देकर चले गये।

गोपाल कुछ कुछ होश में आया था। दो आदमी दोनों ओर से पकड कर उसे भीतर ले गये। कृष्णदास भी उसके साथ अन्दर गये।

पाठक जी तब अकेले बैठ कर ध्यानपूर्वक युद्ध-समाचार पढने लगे। दो-चार सतरें पढते ही पैरों की आहट पाकर उन्होंने बाहर की ओर देखा—रामजीवन राय आ रहे थे। ये जमींदार के प्रधान कर्मचारी थे—दूर का कोई नाता भी था।

रामजीवन ने आकर [illegible]

"अभी भीतर गये हैं। जमाई आये थे। आते ही उनका मिजाज खराब हो गया"—कह कर सब वृत्तान्त सुना दिया।

कुछ देर में कृष्णदास भी बाहर आये। 'गोपाल अब कैसे हैं'? दोनों के एक साथ पूछने पर आपने कहा—देह धीरे धीरे गरम होती जा रही है। मालूम होता है बुखार चढ़ेगा।

दो-एक बातें होने के बाद कृष्णदास बोले—हाँ, यह तो कहिए, नवीन की कोई खबर मिली?

नवीनचन्द्र गाँव के जमींदार (ठीकेदार) का छोटा भाई है। कल रात से वह एकाएक ला-पता हो गया है। चारों ओर उसकी खोज हो रही है।

रामजीवन ने कहा—किसी को मालूम नहीं कि वे कहाँ गये हैं। हम लोगों को कुछ पता मिला है। कल आधी रात के बाद उन को और शकली की माँ दुलरिया को शिवगंज की हाट के पास से होकर जाते एक शख्स ने देखा है। यह सुन कर हमने शकली की माँ को बुला कर पूछा। किन्तु वह छोटे बाबू के साथ जाने की बात कबूल नहीं करती। कहती है कि करीमगंज में उसकी एक बहन है। उसकी सख्त बीमारी का हाल सुन कर कल रात में उसे देखने गई थी। आज सवेरे वहाँ से लौट आई है। करीमगंज का रास्ता शिवगंज के पास होकर गया है, यह ठीक है। जो हो, चारों ओर उनकी खोज में आदमी भेजे गये हैं। देखें उनका ठीक पता मिलता है या नहीं। उनकी बूढ़ी दादी ने जब से पोते के गायब होने की बात सुनी है तब से वे बहुत रोती हैं। हवेली में बड़ा कुहराम मच गया है।

कृष्णदास बोले—वे तो रोवेंगी ही। हमारे घर के सब लोग यह सुन कर हाय हाय कर रहे हैं। कुशल-समाचार पाते ही सवा रुपया का रोट देवनाथ ब्रह्मदेव को चढ़ाने की मन्नत

[५]

दिन भर वादल घिरे रहे। साँझ होने के पहले ही वृष्टि होने लगी। सुन्दरपुर की उसी पिंजरे के सदृश छोटी कोठरी में गोपाल मैले विछौने पर वैठा, गाल पर हाथ रक्खे, सोच रहा है। खुली हुई खिडकी की राह जल के छींटे आकर विछौने के एक प्रान्त को भिगो रहे हैं। किन्तु इस ओर उसका जरा भी ध्यान नहीं।

गोपाल का जो सर्वनाश हुआ है—वह क्या खुलासा कहना होगा? उस दारुण दु.ख पर एक और नया दारुण दु ख हुआ। ससुराल पहुँचने के साथ गोपाल को ज्वर चढ आया। पाँचवें दिन उसका वुखार उतरा। इतने दिनों में उसे सब वातें मालूम हो गईं। ससुराल से अपने गाँव में लौट कर देखा, वहाँ भी वात फैल गई है। सिर्फ एक दिन घर पर रह कर वह सुन्दरपुर लौट आया। आते ही सुना कि इस दरमियान में इन्सपेक्टर साहव आये थे। वीमारी का वहाना करके उसके चले जाने की वात उन्हें किसी तरह मालूम हो गई। हेड आफिस से हुक्म आया है, एक महीने की नोटिस देकर गोपाल नौकरी से वरखास्त किया गया।

नोटिस का एक महीना पूरा हो चला, सिर्फ दो दिन वाकी रह गये हैं। महीने भर पहले गोपाल को जिन्होंने देखा है वे आज देखने से सहसा उसे नहीं पहचान सकेंगे। इस एक महीने की चिन्ता से उसकी देह सूख कर काँटा हो गई है, आँखों के नीचे स्याही छा गई है। चेहरा विलकुल वदल गया है।

घर में मामूली असवाव था। एक खाट थी, जिस पर

गोपाल बैठा था। दीवाल से सटा हुआ एक काठ का पेकिंग-बक्स था। उसके ऊपर एक पीले रङ्ग की पेटी थी। उसके ऊपर छोटा सा टीन का बक्स रक्खा था। उस पर दो जासूसी उपन्यास रक्खे हुए थे। काठ के बक्स में कुछ कॉसे पीतल के बर्तन थे। कोठरी के कोने में एक लकडी का स्टूल था। उस पर E I R अक्षर खुदे हुए थे। उस स्टूल पर एक सुराही रक्खी थी। दूसरे कोने में अरगनी पर कुछ कपडे लटक रहे थे। सिगरेट-बक्स के कुछ चित्र दीवाल पर चिपकाये गये थे, जो गृहस्वामी की शिल्परुचि का परिचय दे रहे थे।

पानी खूब झमक कर बरसने लगा। दिन का प्रकाश भी कुछ मन्द हो गया। दिन रहते ऐसा मालूम होने लगा मानों साँझ हो गई हो। बीच बीच में सनसनाती हुई हवा की झोंक से बूँदें गिरने की आवाज बढती जा रही है। गोपाल बैठा बैठा चिन्ता-समुद्र में गोते लगाने लगा। उसकी नौकरी के अब दो ही दिन और रह गये हैं। इन दो दिनों के बाद वह कहाँ जायगा, क्या करेगा, क्या खायगा,—यही उसकी चिन्ता का प्रधान विषय है। ऐसी हालत में लोग अपने घर जाते हैं, अपने आत्मीय जनों का आश्रय ग्रहण करते हैं। किन्तु उसके लिए वह रास्ता भी बन्द हो चुका है। ऐसा भारी कलङ्क लगने से देश में जाकर वह लोगों को मुँह कैसे दिखावेगा? तो भी वह नीची नजर करके जाता—किन्तु यहाँ आने के पूर्व घर पर भाभी ने जो व्यवहार किया था उसका स्मरण करके देश आने की कल्पना भी उसे असह्य हो उठी। इतने बडे दुःख में उसे भाभी से रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं मिली। ससुराल से लौट कर एक दिन वह अपने घर रहा था। उसी थोडे समय में बडी बहू ने उसे बहुतेरी जली कटी बातें सुना दीं। उसने कहा—'अगर तुम इस

आफत को मेरे घर लाकर नहीं रखते तो यह कलङ्क हम लोगों के माथे न मढा जाता। अब तुम तो निर्द्वन्द्व होकर पच्छिम चले जाओगे, अपना रोजगार करोगे, रुपया जमा करोगे, फिर दूसरा व्याह करोगे, सुख-स्वच्छन्द से रहोगे, किन्तु हमारे घर की जो यह वदनामी फैल गई है, उसका क्या होगा। अब हमारे बाल-बच्चों का शादी-व्याह कैसे होगा? सब आफत हमी लोगो के सिर आ पडी। तुम्हारा क्या विगडेगा?" इससे घर जाकर भाई का गलग्रह होना और भौजाई की झिडकियाँ खाना गोपाल ने किसी तरह पसन्द नहीं किया। उसके और कोई आत्मीय भी न था। दो दिन के बाद वह कहाँ जायगा? उसने पहले कलकत्ते जाने की सोची। वहाँ किसी धर्मशाला में ठहर कर नौकरी की तलाश करेगा। वैसा लिखा-पढा भी तो नही है, जो जाते ही कोई नौकरी मिल जायगी। मिलेगी, इसी का क्या भरोसा? जितने दिन नौकरी न मिलेगी उतने दिन का खर्च कैसे चलेगा? डाकघर में उसका कुछ रुपया जमा है—उससे बाजार का कर्ज चुकाने पर थोडी रकम बचेगी। रेल के प्रौविडेन्ट फन्ड में उसके कुछ रुपये हैं परन्तु वरखास्त हो जाने के कारण आधे से भी ऊपर रुपया कट जायगा। जो कुछ बच रहेगा, उसके मिलने में भी तीन चार महीने लगेंगे। ये तीन चार महीने कैसे कटेंगे? आखिर क्या भूखों मरना होगा? गोपाल को अपना जीवन उस मेघाच्छन्न सन्ध्या समय की भाँति अन्धकारमय प्रतीत होने लगा।

जब से वह सुन्दरपुर आया है तब से बराबर इसी चिन्ता में रहता है। आज भी उसी चिन्ता-समुद्र में निमग्न होकर कोई किनारा उसे नहीं सूझता। जीवन उसे भार सा मालूम होने लगा है। किसी किसी समय नैराश्य की प्रबलता से वह कहने लगता है—जाने दो, ससार-धर्म से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। मैं

संन्यासी हो जाऊँगा। सन्यासी होकर काशी के दशाश्वमेध घाट पर चुपचाप बैठा रहूँगा। भोजन किसी तरह मिल ही जायगा। कुछ दिन पूर्व स्टेशन-मास्टर ने उससे पूछा था—"हेड आफ़िस से पत्र आया है, किस स्टेशन तक का आपको 'पास' चाहिए ?" उस समय गोपाल के मन में उल्लिखित भाव ही प्रबल था, इसलिए उसने काशी का ही 'पास' माँगा था। पर अभी इस विषय में उसका दृढ-निश्चय नहीं हुआ।

वृष्टि कुछ थम गई। स्टेशन में छ का घंटा बजा। पानी-पाँड़े ने गोपाल से दिया सलाई लेकर बत्ती जलाई, खिड़की बन्द कर दी और कहा—बाबू, आटा दाल निकाल दीजिए।

गोपाल का जी ठिकाने न था। इससे उसने कहा—रहने दो मैं आज रात में कुछ न खाऊँगा।

पाँड़े ने कहा—कुछ भी न खाइएगा ?

गोपाल—भूख नहीं है। अगर खाने की इच्छा होगी तो स्टेशन पर ही दो-चार पैसे की पूरी लेकर खालूँगा।

माँ नहीं, स्त्री नहीं, और बहन भी नहीं जो खाने के लिए उससे बार बार आग्रह करे। "अच्छा बाबू" कह कर पाँड़े प्रसन्नता पूर्वक चल दिया। इस पानी-बूँद की रात में उसे एक भारी झंझट से छुटकारा मिल गया।

साँझ के छ बजे से छ बजे भोर तक सारी रात गोपाल को स्टेशन का काम करना पड़ता था। तार देना, टिकट बाँटना, गाड़ी पास करना—सारा काम वही अकेला करता था। आराम कुछ था तो यही कि, आधी रात के बाद कुछ विशेष काम न रहता था। रात के बारह बजे आखिरी पैसिंजर गाड़ी आती थी। इसके बाद गोपाल को कुछ देर सोने के लिए समय मिल जाता

था। वह टेलीग्राफ की कल में घटी लगा, बैटरी-बक्स के ऊपर बिछौना बिछाकर बारह बजे के बाद सो रहता था।

साढे छः बजे गोपाल ठण्डी साँस लेकर धीरे धीरे उठा। उस के आफिस की पोशाक थी सफ़ेद पतलून और काला कोट। उसे कन्धे पर रख कर बगल में छतरी दबाई, हाथ में सरकारी लालटेन ली और बाहर निकल कर घर का द्वार बन्द किया। ताले को अच्छी तरह हिला कर देख लिया। फिर धीरे धीरे स्टेशन को गया।

बड़े बाबू तब घर से जलपान करके आ गये थे। पान चाबते चाबते हुक्का पी रहे थे। जरा विश्राम करके आफ़िस की चिट्ठी-पत्री लिखेंगे। रात के आठ बजे के भीतर चिट्ठी-पत्री लिख कर वे अपने क्वार्टर को चले जाते थे। आज गोपाल को देखते ही "बाबू तुम्हारा पास आ गया है—यह लो।" कह कर गोपाल को 'पास' निकाल कर दे दिया और कहा—क्या अब आप काशी ही जा कर रहेंगे ?

"हाँ, कुछ दिन तक वहीं रहूँगा।"

"घर कब तक जायँगे ?"

"अभी कुछ निश्चय नहीं किया" कह कर गोपाल चुपचाप अपना निर्दिष्ट काम करने बैठ गया।



[६]

रात के बारह बजे की पैसिञ्जर गाडी आने को है। सिगनल-मैन ने घटी बजा कर पुकारा—"चलो मुसाफिर पूरब के जाने वाले टिकट लो!" टिकट की खिडकी खोल कर गोपाल ने मुसाफिरों को टिकट दिया। इस असमय की वृष्टि में, इतनी रात को, रेल यात्री अधिक न थे।

टिकट बॉट करके गोपाल ने पतलून और काला कोट पहन कर मखमल की टोपी सिर पर रक्खी। फिर वह लालटेन लेकर गाडी पास करने के लिए बाहर निकला।

तब भी बादल छाये हुए थे। उत्तर और पश्चिम के कोने में बारबार बिजली चमक रही थी। प्लैटफार्म के ऊपर कुछ लैम्प जल रहे थे किन्तु उतने थोडे प्रकाश से गहरा अन्धकार किसी तरह दूर नही हो सकता था।

देखते देखते तीन ऑखों वाले विपुलकाय निशाचर की भॉति घोर गर्जन करती हुई पैसिञ्जर गाडी स्टेशन पर आ खडी हुई। आज वर्षा के कारण पान सिगरेट बेचने वाला नही आया। पूडी-मिठाई वाला भी अपनी छोटी सी दूकान में आनन्द की नींद ले रहा था। गोपाल और सिगनल मैन के सिवा चार पॉच खलासी वहॉ मौजूद थे।

स्टेशन में ट्रेन के ठहरते ही डेवढ़े दरजे की गाडी में बडा कोलाहल होने लगा। कितने ही लोग गाडी से उतर कर बडी घबराहट के साथ "बाबू, बाबू, गार्ड बाबू" कह कर चिल्लाने लगे।

हल्ला सुन कर लालटेन हाथ में लिये गोपाल ने वहाँ जाकर पूछा—"क्या है, क्यों इतना चिल्ला रहे हो।" तीन चार आदमी एक साथ बोल उठे—बाबू, गाडी में एक मुसाफिर मर गया है।

"कहाँ, कहाँ ?" कहता हुआ गोपाल गाडी के नज़दीक गया।

"देखिए न" कह कर उन लोगों ने गाडी दिखा दी।

गोपाल ने प्लेटफार्म पर से ही गाडी के खुले दर्वाज़े की राह झाँक कर भीतर देखा। दोनों बेञ्चों के बीच में फर्श पर एक संन्यासी-वेषधारी पुरुष की लाश पडी है। गाडी के भीतर प्रवेश करने का साहस उसे न हुआ। गाडी के अन्यान्य डिब्बों से भी लोग उतर आये। वहाँ लोगों की खासी भीड लग गई।

गोपाल ने पूछा—यह कैसे मर गया ?

उस गाडी के मुसाफिरों ने कहा—फतुहा स्टेशन तक बाबा जी मजे में थे। हम लोगों के साथ खूब गपशप की थी। जब गाडी फतुहा से रवाना हुई तब गाँजा पीने की इच्छा से उन्होंने चिलम निकाली। झोली से गाँजा निकालते समय उनका शरीर काँपने लगा। क्रमशः कम्प बहुत बढ गया। बडे जोर से हाथ-पैर पटकने लगे। दो आदमी उनको सँभाल कर बिठाने गये, पर वे किसी तरह उन्हें सँभाल कर नहीं बिठा सके। इस के बाद बाबा जी बेञ्च से नीचे गिर पडे। उनके मुँह से फेन निकलने लगा। बडी देर तक वे छटपटाते रहे। फिर एकदम ठण्डे हो गये। हम लोगों ने नाक के सामने हाथ रख कर देखा तो साँस नदारद थी।

गोपाल—इस प्रकार निश्चेष्ट हुए कितनी देर हुई ?

"दस मिनट या इससे कुछ अधिक हुआ होगा।"

इतने में गार्ड साहब आ पहुँचे। सब माजरा सुन कर उन्होंने गोपाल से कहा—लाश उतार लो।

गोपाल—यहाँ लाश उतारने से क्या होगा ? यहाँ न डाक्टर है, न पुलिस।

गार्ड—यह न होगा। गाडी में मुर्दा रखने का नियम नहीं। पुलिस और डाक्टर को एक्सीडेन्ट होने की खबर दो, वे तुरन्त आ पहुँचेंगे।

तब गोपाल लाचार होकर लाश उतरवाने को बाध्य हुआ। चार खलासियों ने गाडी के भीतर पैठ कर सन्यासी की लाश को नीचे उतार दिया। गार्ड ने यात्रियों से पूछा—गाडी में इस का क्या माल असबाब है ?

उस क्लास के मुसाफिरों ने एक ट्रंक, एक कमण्डल, और एक कम्बल दिखा दिया।

असबाब उतरवा कर उसकी दो फेहरिस्ते बनाईं। एक पर गोपाल की सही करा कर गार्ड ने अपने पास रख ली और एक पर अपनी सही करके गोपाल को दे दी। यह सब करते-करते गाडी रवाना होने में कोई पन्द्रह मिनट का विलम्ब हो गया। उस इन्टरमिडियेट क्लास के मुसाफिर उतर कर अन्य गाडियों में जा बैठे।

गाडी सीटी देकर रवाना हुई। अगले स्टेशन को गाडी रवाना होने की खबर देकर गोपाल बाहर प्लैटफार्म पर आया। सिगनल मैन से पूछा—लाश कहाँ रक्खी जायगी ? क्योंकि प्लैटफार्म पर रख छोडना ठीक नहीं। शायद कुत्ते या गीदड खींच ले जाँय।

सिगनलमेन ने कहा—पार्सल-गोदाम में रखवा दीजिए।

"हाँ ठीक है" कह कर गोपाल ने कुंजी ला कर पार्सल-गोदाम खोला और उसी में सन्यासी की लाश रखवा दी। उसका

असबाब भी वहीं रखवा कर गोदाम बन्द कर दिया। आफिस में लौट कर वह इस आकस्मिक घटना की खबर लिखने बैठा।

खलासियों ने कहा—बाबू, मुर्दा छुआ है, घर जाकर स्नान कर ले और कपडे बदल आवे।

गोपाल ने कहा—जाओ।

सिगनलमैन ने कहा—बाबू, अब तो कोई मालगाडी आने को नहीं है?

गोपाल ने दोनों ओर के स्टेशनो से पूछ कर मालूम किया, कोई गाडी अभी नहीं आवेगी। यह सुन कर सिगनलमैन ने कहा—हुक्म हो तो एक दफे डेरे पर हो आऊँ। मेरी स्त्री बीमार है। दो बजे हाजिर हो जाऊँगा।

गोपाल—जाओ।

ऐक्सीडेन्टल मेसेज (आकस्मिक दुर्घटना का संवाद) देकर गोपाल ने टेलीग्राफ की कल में घंटी लगादी और आप लेट रहा।

रह रह कर मेघ गरजता था। गोपाल को नींद नहीं आई। वह एक बार अपनी और एक बार मृत सन्यासी की बात सोचने लगा। सोचा—यह सन्यासी कौन है? पूरब का रहने वाला है या पच्छिम का? बंगाली तो नहीं मालूम होता। इसकी सूरत शकल तो पछाँहीं जवान की सी है। कौन जाने कहाँ जा रहा था? वैद्यनाथ या जगन्नाथपुरी। सवेरे की गाडी से जब मुकामा से पुलिस आवेगी, तलाशी लेगी, तब उसका टिकट देखने से मालूम हो जावेगा।

अपनी बात सोची—काशी का 'पास' लेकर मैंने क्या किया? वहाँ मैं क्या करूँगा? सन्यासी हूँगा? सन्यासी होना बडा कठिन है। सन्यासी को बडे कष्ट से जीवन बिताना पडता है। यही तो एक सन्यासी, गाडी में, अनाथ की तरह मर गया। इसके कोई

ऐसा नहीं जो इसकी मृत्यु पर दो बूँद आँसू गिरावे। मेरे ही कौन है जो मेरे मरने पर रोवेगा? मैं तो अभी सन्यासी न होने पर भी सन्यासी हूँ—फ़क़ीर—बिलकुल ही फ़क़ीर। कोई उपाय नहीं, महीने भर बेकार रहने पर क्या खाऊँगा। तो काशी जाना ही ठीक है। वहीं जाऊँगा। वहाँ माँ अन्नपूर्णा है। सुना है, वहाँ कोई भूखों नहीं मरता। अन्नपूर्णा सब को भोजन देती है। अन्त में क्या मेरे भाग्य में यही लिखा था?

फिर सन्यासी की बात सोचने लगा—यह सन्यासी भी क्या मेरी ही भाँति अभागा है? मेरे ही ऐसा दरिद्र है? लक्षण से तो ऐसा नहीं जान पड़ता। वह तीसरे दर्जे में नहीं, इन्टर क्लास की गाड़ी में जा रहा था। पच्छिम का आदमी कुछ विशेष सम्पन्न हुए बिना डेवढ़े दरजे का टिकट नहीं लेता। सुना है, कोई कोई सन्यासी भी बड़े धनाढ्य हैं। लखपती करोड़पती तक हैं। सन्यासी होने ही से सब फ़क़ीर नहीं होते। अच्छा, अगर इसके इस बक्स में रुपये हों? और यदि हैं तो कितने! सौ, दो सौ, हजार या उससे भी अधिक? कल पुलिस आकर बक्स खोलेगी, तब मालूम होगा। कुछ रुपये तो पुलिस हजम कर जायगी—कुछ सरकार में जमा होंगे।

इसी समय, एकाएक गोपाल को एक बात सूझी। उसके हृदय का अधिदेवता 'खबरदार' कह कर गरज उठा। वह शब्द सुन कर गोपाल भय से काँप उठा।

कुछ देर तक फिर वह अपनी आसन्न अवस्था की बात सोचता रहा। वह गोपनीय बात बार बार उसके मन में अनेक छिद्रों की राह झाँकने लगी। सोचा—अगर इस सन्यासी के बक्स में बहुत रुपये पैसे हों तो वे मैं ही क्यों न ले लूँ? पुलिस क्यों खाय? सरकार के अक्षय्य भाण्डार में ही वह क्यों जाय?

यह क्या ? इस दफे तो अन्तर्यामी देवता क्रोध से नहीं गरजा ?

गोपाल मन ही मन तर्क करने लगा। अगर ले लूँ तो इसमें क्या दोष है ? जिसका रुपया है वह तो अब उसे भोग नहीं सकेगा। किसी का गला तो मैं काटता नहीं। किसी का अश भी मैं हरण नहीं करता। अगर मैं पहाड पर घूमने जाऊँ और वहाँ एक बडा सा हीरा मिल जाय तो उसे न लूँगा ? क्यो न लूँगा ? सुयोग भी अच्छा मिल गया है। स्टेशन पर अभी कोई है भी नहीं। जाता हूँ, पार्सल-गोदाम खोल कर सन्यासी की तलाशी लेता हूँ। जरूर ही बाक्स की चाबी मिल जायगी।

इस समय फिर पानी बरसने लगा। स्टेशन की टीन की छत पर बडी बडी बूँदें पडने से टन् टन् शब्द होने लगा।

गोपाल धीरे धीरे उठा। जूते पहन लिये। चाबी और लालटेन हाथ में लेकर वह आफिस से बाहर सारे बरामदे में दो एक बार सावधानी से घूमा। चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। ऐसा घोर अन्धकार, ऐसी झडी ! चोर के लिए ऐसा उत्तम सुयोग फिर कब हो सकता है ? गोपाल तब पैरों की आहट बचा कर धीरे धीरे पार्सल-गोदाम के फाटक पर जा पहुँचा। लालटेन नीचे रख कर ताला खोलने के लिए बायें हाथ से उसे पकडा। किन्तु उसका हाथ थर थर काँपने लगा। दहने हाथ से चाबी का गुच्छा नीचे गिर कर झनक उठा।

गोपाल खडा होकर सोचने लगा। द्वार तो खोलूँगा, किन्तु अगर सन्यासी भूत हो गया हो ? मुझे देख कर अगर वह खिल-खिला कर हँसने लगे ? डर से गोपाल की छाती धडकने लगी। तब वह चाबी और लालटेन उठा कर काँपते हुए पैरों से फिर अपने दफ़र में लौट आया।



दूर से लालटेन की रोशनी मृत संन्यासी के मुँह पर डाल कर
गोपाल कुछ देर तक उसकी तरफ देखता रहा—पृ० २६

कुरसी पर बैठ कर उसने कई मिनटों तक सोचा। अपनी दुर्बलता पर लज्जित होकर मन ही मन कहा—क्या मैं लडका हूँ या स्त्री ? मैं मूर्ख हूँ या देहात का रहने वाला किसान जो भूत के डर से इस तरह भाग आया ? जो मर गया है वह चैतन्य होकर कैसे उठ बैठेगा ? मेरे लिए यह एक सुयोग उपस्थित हुआ है—क्या मैं ऐसी नादानी करके उसे खो दूँ ? नहीं, यह कभी न होगा। मैं जाऊँगा, देखूँगा—मेरे भाग्य में क्या है ?

घडी की ओर देखा, दो बजने के लिए २० मिनट बाकी हैं। अब अधिक समय नहीं—दो बजे सिगनलमैन आ पहुँचेगा। तब सारी बनी बनाई बात बिगड जायगी।

गोपाल तब हिम्मत बाँध कर चाबी और लालटेन को मजबूती से पकड कर फिर पासल-गोदाम के द्वार पर पहुँचा। ताला खोल कर झटपट भीतर गया और अन्दर से किवाड बन्द कर दिये।

चारों ओर छोटे बडे कितने ही पार्सल पडे हैं। फलों की टोकरियाँ, टीन के पीपे और भी कितनी ही चीजें इधर उधर पडी हैं। बीच में गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी की लाश पडी है। दूर से लालटेन की रोशनी मृत-सन्यासी के मुँह के ऊपर डाल कर गोपाल कुछ देर तक उसकी तरफ देखता रहा।

जब देखा कि वह जरा भी हिलता डुलता नहीं तब गोपाल जूते उतार कर आगे बढा।

पास खडे होकर फिर उसने सन्यासी के मुँह की ओर ध्यान से देखा। उसकी उम्र, करीब तीस वर्ष के जान पडी। रङ्ग साँवला है, चेहरा खूबसूरत है, सिर में बडे बडे बाल जटा के रूप में परिणत हो गये हैं। मूँछ-दाढी भी है पर बहुत बडी नहीं। दोनों आँखें उलट गई हैं। वह भूमि-लुण्ठित जटाओं, निमेष-रहित दृष्टि लालटेन की रोशनी में देखते देखते

के मन में फिर भय का सञ्चार हुआ। किन्तु इस दफे वह अपने जी को कडा करके घुटने केवल बैठ गया। लाश पर से वस्त्र हटा कर चाबी खोजने के लिए वह कमर टटोलने लगा। देखा, सन्यासी की कमर में एक रेशमी बटुआ बँधा है। बटुए की डोरी ढीली करके देखा तो उसमें दो कुञ्जियाँ, एक टिकट और कुछ रुपये और रेजगारी निकली।

बटुए से दोनों चाबियाँ निकाल कर एक से गोपाल ने ट्रंक खोल डाला। उसके भीतर से भाँति भाँति की विचित्र वस्तुएँ निकलने लगीं। एक जोडा लाल रेशमी वस्त्र, मसहरी, गोल आइना, सोने की चेन सहित जेबी घडी, एक जोडा गेरुए रङ्ग की ऊनी चादर, एक बंडिल मोमबत्ती, दो डिबियाँ दियासलाई एक चाँदी का गिलास, एक हिन्दी भागवत तथा एक रामायण की पोथी उस में थी। सब के नीचे एक बडी थैली थी जो खूब भारी थी और एक कागजों का पुलिन्दा था जो रेशमी कपडे में सूत की डोरी से कस कर बाँधा गया था।

थैली और कागज के पुलिन्दे को बाहर निकाल कर, बाकी सब चीजों को गोपाल ने फिर बक्स में भर दिया। थैली तो गोपाल के मतलब की चीज थी। खूब झनझना रही है। सोचा, कौन जाने इसमें सब रुपये ही रुपये हैं, या कुछ अशर्फियाँ भी हैं। दबाने से मालूम होता है, पुलिन्दे में कागज हैं। नोट भी तो हो सकते हैं। अगर नोट ही हों, सभी नोट हो तो न मालूम कै हजार रुपये के होंगे। बाक्स बन्द करके बटुए में दोनों कुञ्जियाँ रख गोपाल ने अब टिकट की जाँच की। सन्यासी सिराथू से सवार हो कर हावडा जा रहा था। बटुए में टिकट रख कर और उसका मुँह बन्द करके लाश को पूर्ववत् कपडे से ढक दिया। बगल में पुलिन्दा दबा कर और बायें हाथ में थैली ले

कर गोपाल उठ खड़ा हुआ। लालटेन फिर मृतक के चेहरे की ओर करके वह भयचकित दृष्टि से कुछ देर तक देखता रहा। किन्तु यह क्या ? सर्वनाश हो गया। सन्यासी हँस रहा है! पहले तो उस के दोनों होंठ मिले थे, वे अलग हो गये हैं। मुँह खुला हुआ है। दोनों पंक्तियों के दाँत स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। गोपाल तीर की तरह दरवाजे की ओर लपका। किवाड़ खोल कर झट-पट जूते पहन लिये। फिर काँपते हुए हाथ से फट से किवाड़ बन्द कर दिये। काँपते हुए हाथ से किसी तरह ताला बन्द करके वह थरथराते हुए पैरों दफ़्तर में पहुँचा। एक दराज खोल कर उसमें थैली और पुलिन्दे को छिपा दिया। इसके बाद सुराही से दो गिलास पानी ढाल कर गोपाल घट् घट् कर पी गया।

उसके बदन से पसीना चूने लगा। आफिस का कमरा उसे उस जाड़े की रात में बहुत गरम मालूम होने लगा। परन्तु बाहर जा कर जरा घूमने का भी उसे साहस न हुआ। बाहर अन्धकार, घोर अन्धकार था। अगर वह (भूत) बाहर खड़ा हो जो मुँह फैला कर हँस रहा था—अगर आवे, और कहे—मेरी रुपये की थैली दो, मेरा नोटों का पुलिन्दा दो, तब क्या होगा? नहीं, नहीं, वह क्या आ सकता है ? दरवाजा बन्द है, ताला लगा है। किन्तु—भूत क्या बन्द दरवाजे को मानता है ?

एकाएक बाहर किसी के आने की आहट मिली।

कौन आता है ? डर से गोपाल का मुँह सूख गया। वह आँखें फाड़ कर सभय दृष्टि से खुले दरवाजे की ओर देखने लगा। मृत सन्यासी नहीं, भूत नहीं, वही उसका पूर्वपरिचित सिग-नलमेन महावीरसिंह था।

उसे देखने से गोपाल के निश्चेष्ट शरीर में मानों प्राण पलट आये। उसने कहा—महावीरसिंह—इतनी देर करके आये?

महावीरसिंह ने घडी की ओर देख कर कहा—नहीं बाबू, यही तो दो बजे हैं। आपने तो दो बजे तक की छुट्टी दी थी।

गोपाल ने टूटे स्वर में कहा—हाँ, छुट्टी तो दी थी। किन्तु गोदाम में एक मुर्दा पड़ा है। आफिस में मैं अकेला हूँ, तुमको कुछ पहले ही आ जाना चाहिए था।

महावीरसिंह जोर से हँस कर बोला—बाबू, आप डर गये! डर क्या है? जीता हुआ आदमी क्या मुर्दे से डरेगा? कुछ डर नहीं बाबू। आप आराम कीजिए।

गोपाल के अनुरोध से रात को सिगनलमैन दफ़्तर में ही सोया।

---

[७]

सिगनलमैन तो दस मिनट के भीतर ही नाक बजाने लगा —किन्तु गोपाल की ऑंखो से मानो आग निकलने लगी। बैटरी बाक्स के ऊपर अपने बिछौने पर लेट कर वह कुछ देर तक निश्चेष्ट पडा रहा। जिस दराज में उसने थैली और पुलिन्दा रक्खा था उसमें ताला न लगा था। सहसा गोपाल के मन में यह सन्देह हुआ कि क्या जाने जो महावीरसिंह (सिगनलमैन) रात में उठ कर इस दराज को खोल कर देखे! उसकी चाबी भी पास न थी जो दराज को बन्द करके निश्चिन्त होजाता। इन दोनों वस्तुओं को चुपचाप घर रख आने ही में कुशल है, किन्तु दराज खोलने की आवाज से यदि यह आदमी जाग उठे और थैली निकालते देख ले या उसके हिलने-डोलने से "झन झन" शब्द सुन पावे तो उसके मन में जरूर शक होगा। तब कौन जाने क्या बखेडा खडा हो जाय। गोपाल जिस जगह सिर रख कर लेटा था वहाँ से दराज देख भी न पडता था। इसने वह पैताने की ओर तकिया रख कर घूम कर लेट गया और टकटकी लगा कर दराज की ओर देखता रहा।

गोपाल सोचने लगा—कौन जाने, कुल कितने रुपये हैं! थैली वजन में पॉच छ सेर से कम न होगी—यदि सब रुपये ही हों तो पॉच सो के लगभग होंगे। अगर उसमें कुछ अशर्फियॉ हों—कौन जाने, सोने के सिक्के अगर उसमें हैं तो कितने हैं? अगर सब अशर्फियॉ हों। यद्यपि यह असम्भव है तथापि हिसाब करके देखने में क्या क्षति है। पॉच सौ अशर्फियों का मूल्य कम

से कम अभी रुपये से बीसगुना तो अवश्य होगा। भुना डालने से दस हजार रुपये बेखटके मिल जॉयगे। और इस कपडे में बँधे हुए पुलिन्दे में नोट हैं या और तरह के कागजात? यदि नोट ही हों—कौन जाने, कितने रुपये के नोट होंगे? अगर सब नोट ही हो तो लाख रुपया होने में क्या कसर है। गोपाल इसी तरह अनेक प्रकार की बातें सोचने लगा। उस का लोहू क्रमश गरम होते होते यहाँ तक गरम हुआ कि उसके दिमाग में आग सी लग गई।

इसी तरह आधा पहर बीता। घडी में तब साढे तीन बज गये थे। पानी बरसना बन्द हो गया था। हवा की सनसनाहट भी अब सुनाई न देती थी। गरम ज्यादा मालूम होने से गोपाल ने उठ कर सामने का दरवाजा खोल दिया। मुँह पर ठढी हवा लगने से उसके दिमाग की गरमी कुछ शान्त हुई। आराम पा कर वह दरवाजे के पास आ खडा हुआ। कुछ देर बाद बाहर जा कर आकाश की ओर देखा—बादल हट जाने से तारे निकल आये हैं, परन्तु चौथा पहर होने के कारण उनकी ज्योति कुछ मन्द हो गई है। यही कुछ दूर, जहाँ खूब गाढा अन्धकार है वहाँ, दो बडे बडे आम के पेड हैं। उन्हीं की आड मे गोपाल का घर है। रात के पिछले पहर की शीतल मन्द वायु गोपाल के सारे शरीर के उत्ताप को मानो उडा ले गई, वह धीरे धीरे प्रकृतिस्थ हुआ। लाख रुपये का स्वप्न तब उसे उन्मादरोगी की कोरी कल्पना के सदृश मालूम होने लगा। उसने पिछली बातों को भूल कर मन में कहा—चार पॉच सो रुपया है—जब तक जीविका का कुछ प्रबन्ध न होगा तब तक इस रुपये से किसी तरह निर्वाह कर सकूँगा।

इसी समय टेलीग्राफ की घटी टन् टन् कर बजने लगी। गोपाल ने जाकर कल पर हाथ रक्खा। कुछ ही देर बाद पुकार

कर कहा,—महावीरसिंह—ओ महावीरसिंह—उठो, उठो—फतुहा से मालगाडी आ रही है।

महावीरसिंह उठ बैठा। अँगडाई लेने के साथ वह उँगलियाँ चटका कर बोला—सीताराम, सीताराम, कौन नम्बर बाबू?

"छब्बीस नम्बर।"

"गाडी तो नहीं रुकेगी?"

"नहीं।"

दूसरी बार फिर अँगडाई और जम्हाई लेकर मुरैठा बाँधते बाँधते महावीरसिंह सिगनल ठीक करने के लिए बाहर गया। गोपाल इसी सुयोग की प्रतीक्षा में था। उसके बाहर होते ही गोपाल ने दराज खोल झट थैली और पुलिन्दा निकाल लिया। अलवान के भीतर उसे छिपा कर वह बडे वेग से अपनी कोठरी में चला गया। जिस कोठरी में सोता था उसका ताला खोल कर बत्ती जलाई, फिर थैली का मुँह ढीला करके बिछौने पर उलट दी। उसमें से जो निकले सभी उजले थे—एक भी पीले रङ्ग वाला नहीं था। ठढी हवा पाकर गोपाल कितना ही स्वस्थ क्यों न हो गया हो—पर नैराश्य की ठण्ढी साँस उसे लेनी ही पडी।

इसके बाद वह बिछौने पर बैठ कर पुलिन्दे का बन्धन खोलने लगा। वह बन्धन क्या सहज ही खुलने वाला था,। एक के खुलते ही फिर दूसरी गाँठ निकल आती थी। जो हो, बडे कष्ट से गोपाल ने उस खारूआ कपडे के आवरण को अलग किया। उसमें से निकले केवल हाथ के लिखे कागज ही कागज—कहाँ नोट और कहाँ खरे रुपये! कितनी ही नई पुरानी चिट्ठियाँ थीं, कितने ही चुने चुने समाचारपत्रों के कटे हुए टुकडे थे। और मोटी मोटी दो किताबें थीं। गोपाल ने देखा, किताब में देवनागरी अक्षर हैं,

कटे हुए समाचारपत्र की भी हिन्दी भाषा है।—एक लिफाफे पर ऑंगरेजी में यह पता लिखा था—

श्री श्री महन्त भजनानन्द गिरी,
तिनताडिया मठ, महादेवपुर,
वाया सिराथू, ई० आई० आर०।

गोपाल ने तब धीमे स्वर में कहा—देखता हूँ, स्वामीजी गौड ब्राह्मण है। मैंने पहले गलत समझा था। दोनों पोथियों को उलट पलट कर देखा—वे पुस्तकाकार लिखी हुई थी। गोपाल कुछ परिहास के साथ फिर अस्पष्ट स्वर में बोला—"अरे बाबा! सन्यासी जी साधारण पुरुष नहीं—हिन्दी के ग्रन्थकार थे! पुस्तक छपवाने के लिए तो कलकत्ते न जा रहे थे?"—यों कहते कहते उसने एक किताब का पहला पृष्ठ खोल कर देखा। उसमें लिखा था—"आत्मजीवनचरित—पहला भाग—गार्हस्थ्य जीवन।" दूसरी पोथी के प्रथम पृष्ठ पर लिखा हुआ था—"दूसरा भाग—संन्यास-जीवन"।

इसी समय स्टेशन पर छब्बीस नम्बर की गाडी की दूसरी घंटी बजी। अब सिगनलमैन को हरे रँग की झंडी दिखाने के लिए हुक्म दरकार होगा। इसलिए गोपाल ने झटपट थैली में रुपये भरकर, किताबों को जैसे तैसे लपेट लपाट कर, बक्स के भीतर डाला और ताला लगा दिया। कोठरी के दरवाजे में ताला लगा कर वह बडी तेजी से स्टेशन पर जा पहुँचा।

सवेरा हुआ। बख्तियारपुर से पैसिञ्जर गाडी चली। इसी ट्रेन से मोकामा की पुलिस आवेगी। गोपाल ने खलासी को भेज कर बडे बाबू को बुला लिया।

रात को गाडी से मुर्दा उतारे जाने की बात इतने में चारों

ओर फैल गई थी। उसे देखने के लिए बाजार के कितने ही लोग स्टेशन पर आये थे। ट्रेन के जाते ही वे सब प्लेटफार्म पर जा खडे हुए। खलासियो ने बीच बीच में 'हट जाओ—हटो, जाओ' कह कर लोगों को हटाना चाहा परन्तु सुनता कौन है।

पार्सल का गोदाम खोल कर लाश निकाली गई। वेटिंग रूम से कुछ कुरसियाँ खलासी ने लाश के पास ला रक्खी। दारोगा और स्टेशन के बाबू लोग उन पर आ बैठे। पुलिस के अनुरोध से डाक्टर बाबू लाश की जॉच करने लगे। कहीं किसी चोट का चिह्न न मिला। डाक्टर ने स्वाभाविक मृत्यु बतलाई।

दारोगा ने कहा—कुछ सन्देहजनक तो नहीं?

डाक्टर—नहीं, सन्देह की कोई बात नहीं देख पडती।

"तो सार्टिफिकेट लिख दीजिए।"

डाक्टर बाबू ने कागज कलम मॅगा कर यथारीति सार्टिफिकेट लिख दिया कि स्वाभाविक कारण से मृत्यु हुई है।

इसके बाद दारोगा की आज्ञा से एक कान्स्टेबल ने सन्यासी की कमर से चाबी निकाल कर बक्स खोला। सारी चीजों में बहुत खोजने पर भी सन्यासी के नाम-गॉव का कुछ पता न मिला। सिर्फ बटुए में जो टिकट मिला उससे इतना ही प्रकट हुआ कि सन्यासी सिराथू स्टेशन से कलकत्ते जा रहा था। बटुए से टिकट के सिवा दस रुपये नकद और कुछ रेजगारी भी निकली। दारोगा ने कहा—अच्छा ही हुआ, इससे सन्यासी का समाधिकार्य सम्पन्न होगा। नहीं तो सरकार को ही खर्च देना पडता।

मृतक का सत्कार आदि कौन करेगा? दारोगा ने लोगों से पूछा—यह बाबा जी किस देश का आदमी मालूम होता है?

गोपाल भट्ट—"बङ्गाल का सा", कह कर मन में पछताने लगा—क्यों कहा, यह कहना ठीक नहीं हुआ।

दारोगा ने पूछा—कैसे जाना कि बंगाली है ?

गोपाल ने कुछ हिचकिचा कर कहा—सिर्फ चेहरा देख कर समझा था, शायद बंगाली होगा। चेहरा बंगाली के ऐसा जान पड़ता है।

यह सुनते ही वहाँ जितने लोग मौजूद थे सभी ने बड़े गौर के साथ लाश के चेहरे की ओर देखा। बाजार का एक महाजन रामगुलाम चौधरी एकाएक बोल उठा—यह सन्यासी हमारे छोटे बाबू का भाई तो नहीं है ? दोनों का चेहरा बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

फिर सभी एक बार छोटे बाबू के मुँह की ओर देख कर सन्यासी का मुँह देखने लगे। दूसरा महाजन बोला—चौधरी जी ने ठीक कहा। सिर पर जटा और दाढ़ी में बाल न हों तो यह हमारे छोटे बाबू के ऐसा दीखने लगे।

बड़े बाबू ने कहा—दोनों की उम्र और शरीर का रङ्ग भी प्राय एक ही सा है। चेहरा भी बहुत मिलता है।

डाक्टर बाबू बोले—हाँ, मिलता तो है। कपार, भौंहें और नाक, दोनो की एक ही तरह की हैं। केवल गोपाल बाबू का गला सन्यासी की अपेक्षा कुछ पतला है। दाढ़ी और कनपटी में भी कुछ फर्क नहीं।

दारोगा हँसकर बोले—छोटे बाबू, अगर सन्यासी आप का भाई ही हैं तो आप ही इसके प्रेतकर्म्म का भार लीजिए। इसके लिए मैं अब कहाँ आदमी ढूँढता फिरूँगा।

दारोगा की बात सुनकर कितने ही लोग ठट्ठा कर हँस उठे। "नहीं—नहीं"-कह कर गोपाल सलज्ज भाव से सिर हिलाता हुआ वहाँ से चलता हुआ।

दोपहर को, जब पानी-पाँडे और नौकर चले गये तब, गोपाल ने भीतर से दरवाजा बन्द करके और अपने सोने की कोठरी की खिड़की बन्द करके बक्स खोला और सन्यासी की थैली निकाली। उसने आहट बचा कर सावधानी के साथ थैली से रुपये बाहर निकाले और बिछौने पर बैठ कर गिनने लगा। बीस बीस रुपये के पचीस थाक हुए। पूरे पाँच सौ रुपये निकले।

गोपाल का मन आज बहुत दिनों बाद प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—यह पाँच सौ रुपये और पोस्ट आफिस में जो जमा है तथा प्रौविडेन्ट फंड से जो मिलेगा—इस कुल रकम से तीन चार वर्ष तक मेरी गुजर मजे में होगी, किसी का गलग्रह होना न पड़ेगा। काशी के दशाश्वमेध घाट पर सन्यासी का रूप धारण कर भिक्षा माँगना भी न पड़ेगा। क्या तीन चार साल में ईश्वर कोई नोकरी-चाकरी का प्रबन्ध न कर देगा? अवश्य ही कर देगा। अथवा इसी पूँजी से कोई छोटी सी दूकान खोल दूँ तो भी गुजारा हो सकता है। दूकानदारी करने में अगर मूल धन भी नष्ट हो जाय, दूकान न चले, तब क्या करूँगा? दूकान न सही, और ही किसी तरह की तिजारत—"व्यापारे वसते लक्ष्मी"—दलाली का कारबार करूँगा। इसी सुन्दरपुर में बहुत उत्तम घी इफरात से मिलता है। हजार रुपये का घी लेकर अगर कलकत्ते भेजा जाय तो क्या सब खर्च काट कर दो सौ रुपये भी मुनाफा न होगा? मुनाफा इससे कुछ कम भी हो सकता है परन्तु पूँजी कभी न डूबेगी। यह भी नहीं तो कोयले की खान में ठीकेदारी की जा सकती है। किंवा कलकत्ते से

सिले-सिलाये तरह तरह के कोट कमीज, कुर्ते आदि और हिन्दुओं को पसन्दलायक कोरदार धोती, साडी तथा चद्दरे लाकर—लाइन के प्रत्येक स्टेशन में उतर कर—दो एक दिन ठहर कर बेचूँ तो इससे भी अच्छा लाभ हो सकता है। रेल के छोटे छोटे स्टेशनों में जो हिन्दू कर्मचारी रहते हैं उन्हें पोशाक के कपडों का अभाव सदा बना रहता है। देहात की दूकान में पसन्द की चीज मिलती नहीं। विज्ञापन देख कर कलकत्ते से कोई कपडा मँगाने में भी सुभीता नहीं। अपनी आँख से चीज देख कर पसन्द करने का उपाय नही रहता। गोपाल सोचने लगा—यही करूँगा। अब नौकरी नही करूँगा। नौकरी करके कौन कब बडा आदमी हुआ है? व्यवसाय ही ऐसा है जिसके द्वारा कितने ही लोग लखपती-करोडपती-तक हो गये हैं।

रुपयों को फिर थैली में भर कर बक्स में रख दिया। आप रात भर का जगा था इसलिए कुछ देर सो रहने की इच्छा से चारपाई पर लेट रहा। किन्तु उसने आँख मूँद कर केवल कल्पना के द्वारा अपने व्यवसाय की उन्नति और साथ ही साथ जमींदारी खरीदने, बाग लगाने तथा दोमजिले-तिमजिले कोठे बनाने आदि मनोभिलषित कामों में एक घंटा बिता दिया। उसका दिमाग फिर गरम हो गया। शीघ्र नींद आने की आशा न रही।

तब अपने पागलपन पर आप ही लज्जित होकर गोपाल उठ बैठा। सुराही से पानी ढाल कर माथा, आँख, कान और मुँह को अच्छी तरह धो डाला। एक सिगरेट मुँह में दबा कर सोचा—कोई किताब पढ़ूँ तो शायद पढते पढते नींद आ जाय एक जासूसी उपन्यास हाथ में लेकर कहा—यह किताब पढी हुई है, फिर पढने में क्या जी लगेगा। इससे तो अच्छा यह है

कि सन्यासी बाबा का आत्मजीवन-चरित पढ़ूँ। देखूँ वह कौन था, किस प्रकृति का मनुष्य था। यह सोच कर बक्स से खारुए में लपेटा हुआ पुलिन्दा निकाल कर बिछौने पर लेटे ही लेटे गोपाल ने उसे खोला।

पहले लिफाफे से निकाल कर चिट्ठियों को देखा—सभी फारसी हरूफों में थीं अतएव वह एक भी चिट्ठी नहीं पढ़ सका।

समाचार-पत्र का कटा हुआ अंश हाथ में लेकर देखने लगा। सहसा चारों ओर लाल रोशनाई की लकीर खिंचे हुए एक अंश पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह अंश समाचार-संग्रह के अन्तर्गत था। गोपाल ने पढ़ा—

"नदिया—वासुदेवपुर। गत ज्येष्ठ कृष्ण १२ को यहाँ के प्रसिद्ध जमींदार बाबू नगेन्द्रनाथ चक्रवर्ती का श्राद्धकर्म बड़े समारोह से हो गया। चक्रवर्ती महाशय के ज्येष्ठ पुत्र कई वर्षों से ला-पता है। इस कारण उनके छोटे पुत्र श्रीमान् बाबू देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती श्राद्ध करने के अधिकारी हुए। वृषोत्सर्ग आदि वैदिक प्रक्रिया सब विधिवत् हुई। ब्राह्मण-भोजन का प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम था। सहस्र सहस्र ब्राह्मण एक साथ भोजन करने को बैठते थे और सभी यथेच्छ षड्रस भोजन से तृप्त हो कर और दक्षिणा लेकर घर जाते थे। यों कई दिनों तक ब्रह्म-भोज होता रहा। दो हजार से ऊपर कंगालों को भोजन और वस्त्र दिये गये। नवद्वीप, भट्टग्राम, विक्रमपुर, रङ्गपुर आदि स्थानों के बड़े बड़े विद्वान् अध्यापक निमन्त्रण में आये थे। उनका पूर्ण सत्कार किया गया।"

गोपाल ने इस खबर के छपने की तारीख देखी तो मालूम हुआ कि इसको छपे कोई दो वर्ष हो गये हैं।

गोपाल ने एक और अखबार के टुकड़े (कटिंग) को पढ़ा। विज्ञापनों में निम्नलिखित विज्ञापन लाल रोशनाई की लकीर से घिरा हुआ था। उसमें लिखा था—

१००) रुपये का पुरस्कार

गत बृहस्पतिवार पूस सुदी ४ को मेरा ज्येष्ट पुत्र श्रीमान् भवेन्द्रनाथ चक्रवर्त्ती घर से एकाएक लापता हो गया है। उम्र चौदह वर्ष की है। रङ्ग साँवला, बदन एकहरा और सिर में वडे वडे वाल हैं। काले सर्ज का कोट, नारङ्गी रङ्ग का दुशाला, लाल किनार की देशी धोती, और चाइना स्प्रिङ्गदार जूता पहने है। यदि कोई उक्त वालक का पता वता दे तो उसे ऊपर लिखा पुरस्कार मिलेगा।

नगेन्द्रनाथ चक्रवर्त्ती,
जमींदार, वासुदेवपुर,
पो० टीवानगज, जि० नदिया।

गोपाल ने हिसाव लगा कर देखा, १६ वर्ष पूर्व यह विज्ञापन हिन्दी वङ्गवासी में प्रकाशित हुआ था। उसने मन में कहा— मालूम होता है, वावा जी लडकपन में ही घर से भाग कर सन्यासी हुआ था। वडे आदमी का लडका था। इतने दिन वाद शायद घर जा रहा था। क्यों? अपनी जमींदारी पर कब्जा करने के लिए तो नही? यह उसका जीवन चरित्र पढने ही से जाना जा सकता है।

गोपाल तव अलसाता हुआ जीवन-चरित के पन्ने उलटने लगा। देखा, पहला भाग कहानी के ढङ्ग पर और दूसरा भाग डायरी के रूप में है। फर्क इतना ही है कि हरेक तारीख का उल्लेख नही है, वीच वीच में पन्ने के पन्ने खाली पडे हैं। पन्ना उलटते-पुलटते गोपाल वोला—वावा! यह तो एक दूसरा महाभारत ही है। कम नहीं लिखा० है। इतना कौन पढे? अन्त में थोडा सा पढ देखता हूँ—किस उद्देश से वावा जी कलकत्ते जा रहे थे? दूसरे भाग का अन्तिम अंश पढ़ते गोपाल ने

देखा, एक महीने पहले की तारीख डाल कर निम्नलिखित कई सतरें लिखी हुई हैं—

"निश्चय किया है, यह व्यर्थ सन्यास छोड़ कर फिर गृहस्थाश्रम में लौट जाना अच्छा है। किन्तु कुछ देख-सुन कर जाऊँगा। देखने का प्रधान विषय यही कि मेरी स्त्री जीती है या नहीं। अगर जीती है तो वह किस अवस्था में है। जब मैंने घर छोड़ा था तब वह आठ वर्ष की बालिका थी—अब वह चौबीस वर्ष की पूर्ण युवती होगी। इस जवानी के आलम में वह अपने चरित्र को पवित्र रख सकी होगी, इस पर तो सहसा विश्वास नहीं होता। इसलिए पहले इसकी जाँच कर लेना बहुत जरूरी है। मैं घर जाऊँगा, कुछ दिन इसी छद्म वेश में रहूँगा और गाँव में घूम फिर कर सब सच्ची बातें मालूम कर लूँगा। मठ का क्या बन्दोबस्त करूँ, यही सोच रहा हूँ।"

इन सतरों को पढकर गोपाल कुछ देर चुप हो रहा। वह बिछौने पर लेटा हुआ तकिये के ऊपर बाँये हाथ का भार रक्खे, कुछ ऊँचा होकर, गहरी चिन्ता में निमग्न हो गया।

कुछ देर यों ही बीतने पर गोपाल लम्बी साँस लेकर चित हो गया। दूसरे भाग की कोई एक जगह खोल कर नीचे लिखी हुई बातें पढीं—

"आज बङ्गवासी में देखा, गृहस्थाश्रम में जो मेरे पिता थे वे स्वर्ग को पयान कर गये। बडे समारोह से उनका क्रिया-कर्म हो गया है। यह खबर पढ कर आज मेरे हृदय में दारुण दुःख हुआ है। एक एक कर सभी पुरानी बातों की याद आती है। मैंने कई बार सोचा है कि गृहस्थाश्रम त्याग कर मैंने क्या अच्छा किया? मैंने अपने आध्यात्मिक जीवन को जिस परिणाम में पहुँचाने की आशा की थी वह कुछ [illegible]। सच्चा [illegible]

होने की बात दूर रही, इधर में पूर्ण रूप से संसारी हो गया हूँ। मठ की सम्पत्ति की देख-रेख करने ही में अधिक समय चला जाता है। अपने चरित्र को भी निष्कलङ्क रखने में सफलता नहीं हुई। तब क्यों यह भृत का बोझा ढोता रहूँ? किसी भी शत्रु को दबाने में कृतकार्य नहीं हुआ। उस दिन नौकर ने तम्बाकू भर कर लाने में विलम्ब किया था, इस कारण क्रोध से अन्ध होकर मैंने उसे खड़ाऊँ फेंक कर मारी थी। गत वर्ष मठ की जमींदारी का तहसीलदार जब एक हजार रुपया लेकर भाग गया था तब उस रुपये के शोच से दो तीन दिन तक मुझे अच्छी तरह नींद नहीं आई। भोजन की रुचि भी जाती रही। बढ़िया पुराना बासमती चावल और गाय के सुगन्धित घृत के बिना मेरा भोजन बनता ही नहीं। तीन सेर दूध जब औटाते औटाते सेर भर रहता है और दिन भर चूल्हे पर चढ़े रहने से उस पर जो मलाई जमती है, उस मलाई में मिसरी मिलाकर मैं शाम को भोग लगाता हूँ। मैं मोह के दलदल में फँसा हूँ। लोग परोक्ष में भजनानन्द की जगह मुझे भोजनानन्द कह कर हँसी उड़ाया करते हैं। यह खबर पाकर मैंने कई बार क्रोध भी किया है। किन्तु बात बिलकुल झूठ नहीं है। अदालत में झूठी गवाही दी है। मुकदमा जीतने के लिए जाली दस्तावेज तक अपने सामने तैयार कराया है। कौन ऐसा पाप है, जो नहीं किया? मेरे जीवन को धिक्कार है।"

इसके उपरान्त गोपाल आगे पढ़ने लगा। पढ़ते पढ़ते देखा, मठस्थ सन्यासी जीवन के प्रति भजनानन्द का धिक्कार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। लेख समाप्त होने के कुछ पूर्व पढ़ा—

"आज बङ्गवासी आया है। खोलकर अभ्यासवश पहले मुफस्सिल समाचार का कालम ढूँढ़ा। वासुदेवपुर की कोई खबर

है या नहीं? देखा, है—हृदय-विदारक शोक-संवाद है। मेरा छोटा भाई देवेन्द्र अब इस संसार में नहीं। जब मैंने घर छोड़ा था तब वह एक वर्ष का बच्चा था। मैं सोचता था, मैं चला आया हूँ तो क्या हुआ, वह तो है। उसी के द्वारा पिता की वंश-रक्षा होगी, धन संपत्ति की रक्षा होगी। हाय! वह भी न रहा—अब मेरी बूढ़ी माँ को कौन सान्त्वना देगा? कौन उसे धीरज धरावेगा? कौन जमींदारी की देख-भाल करेगा? मेरी मौरूसी जायदाद की सालाना आमदनी लाख रुपये से ऊपर है। इसको कौन भोगेगा? क्या मैं सारी उम्र इसी मठ में बैठ कर अपने मानव जन्म को वृथा गँवा दूँगा? कहाँ का साधन, कहाँ का भजन, कहाँ का ज्ञान और कहाँ का वैराग्य? केवल दुनियादारी—रुपया पैसा, जमीन-जायदाद का लोभ और रसना की सेवा है, इस मिट्टी के कलेवर की हजार प्रकार से परिचर्य्या और धूर्तता,—ठग कर लोगों से किसी तरह पुजाना—बस यही तो करता हूँ। यदि धन-सम्पत्ति की चिन्ता में ही जीवन बिताना है, तो मेरी पैतृक सम्पत्ति ने—जो इस मठ की अपेक्षा बीस गुना अधिक है उसने, क्या अपराध किया है? क्या करूँगा, कुछ समझ में नहीं आता। यह सब छोड़ छाड़ कर घर जाऊँगा या यों ही सन्यासी के भेष में जीवन बिताऊँगा? आज दिन भर यही सोचता रहा, किन्तु कुछ भी निश्चय नहीं कर सका।"

यह दो महीने पहले का लिखा था। दो तीन पृष्ठ बाद ही लेख समाप्त हो गया है। सन्यासी का इरादा अपनी स्त्री का चरित्र जाँचने की इच्छा से गाँव में जाकर कुछ दिन घूमने-फिरने का था, यह पहले डायरी में लिखा हुआ देख ही लिया। अब यहाँ भी वही बात लिखी मिली।

गोपाल किताब बन्द करके बिछौने से उठा। उस छोटी सी

कोठरी के भीतर टहलते टहलते बड़ी देर तक सोच विचार किया। कई दफ़े वह खुली खिड़की के पास खड़ा होकर बाहर की ओर देखता था—किन्तु उसका चित्त चिन्ता में निमग्न रहने के कारण बाहर की कोई चीज उसे नहीं सूझती थी। कभी तो उसके मुँह पर विषाद की काली घटा छा जाती थी—कभी भय का चिह्न दिखाई देता था। फिर तुरन्त ही कुछ प्रसन्नता की झलक भी देख पड़ती थी। मानों उसके मुँह पर एक कपट-पूर्ण हँसी अनेक भाव धारण कर भाँति भाँति की मुद्रायें दिखा रही थी।

इसी सोच विचार में कोई एक घंटा बीत गया। गोपाल फिर चारपाई पर जा बैठा। अपने झुके हुए मस्तक को दोनों हाथों से दबाकर मन ही मन बोला—

"मैं जाऊँगा—इस प्रबल लोभ को मैं रोक नहीं सकता। लाख रुपये से ऊपर आमदनी की जमींदारी—युवती स्त्री—मैं एक झूठी बात कहने से ही प्राप्त कर सकता हूँ। जिसकी देह अब मिट्टी में मिल गई होगी उस सन्यासी की उम्र, उसके शरीर का रङ्ग, उसका चेहरा सब मेरे ही सदृश था। सोलह वर्ष तक गायब रहने के बाद किसका सामर्थ्य है जो इस जालसाजी को पकड़े? उसका जीवन-चरित मेरे पास है। उसमें उसकी भली बुरी सभी बातें लिखी हुई हैं। इन बातों को याद कर लेने से, क्या मजाल जो कोई मुझ पर सन्देह कर सके"। गोपाल! तुम मर जाओ, मर कर भवेन्द्र के रूप में जन्म-ग्रहण करलो।

दूसरा भाग

[१]

चैत महीने का पहला सप्ताह है। अभी से इस बार खूब गरमी पड़ने लग गई।

दस भी नहीं बजे—अभी से सूर्य की किरणें अपनी प्रचण्डता दिखा कर लोगों को ठंडी जगह में छिप कर रहने की सूचना दे रही है। इसी समय, कलकत्ते के उत्तरी अंश के किसी रास्ते से होकर रेशमी छतरी लगाये, एक युवक धीरे धीरे जा रहा था। देखने में वह बड़ा ही सुन्दर था। मुँह की शोभा दर्शनीय थी। आँख, कान, नाक, आदि सभी अवयव मानों विधाता ने अपने हाथ से खूब सवाँर कर बनाये थे। वेश विन्यास भी उसका बढ़िया था। उसके सिर पर घुँघरवाले बाल थे। वह सुन्दर पारसी कोट और पैरों में उलटी नोक वाले जरीदार जूते पहने था। इस प्रकार उसके अङ्ग की शोभा के साथ साथ वेश विन्यास की भी शोभा कम न थी। उम्र बत्तीस या तेतीस वर्ष की होगी।

युवक का नाम था भूपेन्द्रनाथ त्रिपाठी। पिता इसके कलकत्ते के एक प्रसिद्ध रईस थे। धन की कमी न थी। उनकी मृत्यु होते ही भूपेन्द्र, थोड़ी ही उम्र में उनकी विपुल सम्पत्ति का अधिकारी हुआ। किन्तु वह सब धन उसके हाथ से जाता रहा। अब बड़े कष्ट से उसका समय कटता है। लाख रुपये लगा करके उसने एक थियेटर खोला था—वह थियेटर चैन

करना पड़ेगा, जाल फरेब भी न करना होगा, चोरी भी न करनी पड़ेगी—फिर तुम्हारे ऊपर विपत्ति क्यों आवेगी ? तुम उससे उसके हित की बात कहना। मेरा भाग्य यदि नितान्त मन्द होगा तो वह तुम पर असन्तुष्ट होकर तुम्हें विदा कर देगी। तुम अपने घर लौट आना। बस, और क्या होगा ?

कनकलता बैठ कर सोचने लगी। भूपेन्द्र ने सिगरेट-केस खोल कर एक सिगरेट कनक को दिया, और एक आप लिया। दो तीन मिनट तक दोनों चुप रहे। तब कनक ने पूछा—अच्छा उसकी उम्र क्या है, आपने तो सुना होगा ?

"हाँ हाँ, तेईस-चौबीस वर्ष की होगी।"

"विधवा कब हुई थी ?"

"उसे जन्म की ही विधवा समझो। जब वह आठ वर्ष की थी तब उसका ब्याह हुआ था। ब्याह के दो ही तीन महीने बाद उसका अल्पवयस्क पति लापता हो गया। इसके बाद चौदह वर्ष तक वह सधवा के ही वेष में थी। उसके ससुर को मरे दो वर्ष हुए। श्राद्ध में बड़े बड़े विद्वान् आये थे, उन्होंने व्यवस्था दी कि जो व्यक्ति चौदह वर्ष से गायब है, वह मरा ही समझा जायगा। कुश-पुत्तलिका जला कर उसका श्राद्ध करना आवश्यक है। यही हुआ। तब से, अर्थात् दो वर्ष से, बहू जी ने विधवा का वेष धारण किया है।"

"घर में और कौन कौन है ?"

"एक बूढ़ी सास है। एक देवर था सो वह भी मर गया, और कोई नहीं। वह अकेली नहीं रह सकती, इसी से पत्र में यह विज्ञापन दिया गया है।"

कनकलता ने संवाद-पत्र उठा कर फिर विज्ञापन पढ़ा। कहा—अच्छा, मान लीजिए, मैं नैष्ठिक हिन्दू विधवा बन कर ही

दरख्वास्त दूँगी। परन्तु मुझे ही नौकरी मिलेगी, इसका क्या निश्चय ?

"निश्चय तो नहीं है- पर मिलने की सम्भावना अवश्य अधिक है। अगर वह ब्राह्मो या किरिस्तान स्त्री चाहती, तो कितनी ही पढ़ी लिखी गाने-बजाने में कुशल गरीब घर की अच्छी स्त्रियाँ मिल सकतीं। किन्तु वह चाहती है धार्मिक हिन्दू विधवा, सो भी लिखी पढ़ी और गाने बजाने में भी होशियार! भला ऐसी सोने की चिड़िया कहाँ मिलेगी? तुम दरख्वास्त दोगी तो तुम्हें यह काम जरूर मिलेगा।"

"अच्छा, २५) जलपान के लिए क्यों देने कहा है?"

"वेतन कहने से शायद बुरा लगे—हिन्दू स्त्री राजी न हो।"

"दो बड़े आदमियों के सर्टीफिकेट मैं कहाँ पाऊँगी?"

"उसका प्रबन्ध मैं कर दूँगा—उसके लिए चिन्ता न करो।"

"कब दरख्वास्त देनी होगी?"

"जितना शीघ्र हो, दे दो। मैं एक मसविदा बना लाया हूँ।" कह कर भूपेन्द्र ने चार पृष्ठों में लिखा एक लेटर पेपर निकाल कर कनकलता को दिया।

कनक वह पढ़ने और बीच बीच में हँसने लगी। बोली—ओफ! भूपेन्द्र बाबू, आपने इतनी झूठ बातें लिखी हैं कि हँसे बिना नहीं रहा जाता।

कनक के पढ़ चुकने पर भूपेन्द्र ने कहा—कहो, तुम राजी हो न?

कनक—आज दिन भर का मुझे समय दीजिए। मैं सोचकर शाम को आप से कहूँगी।

भूपेन्द्र ने घड़ी की ओर देखा—साढ़े ग्यारह बजे थे। उसने उठ कर कहा—अच्छा, तुम मसविदा को रख लो। सोच कर

देखो। अगर दरख्वास्त देने की राय हो तो इसकी नकल दूसरे कागज पर लिख रखना। मैं साँझ को आकर ले जाऊँगा।

कनकलता भी उठ खड़ी हुई। हँसते हँसते बोली—अच्छा, सोच लूँ। जरा बैठ जाइए। लौंडी ने बर्फ मिला कर एक गिलास शरबत बनाया है, पीकर जाइए। अगर मैं इस काम में हाथ डालूँ और सफलता प्राप्त करूँ तो मेहनताना क्या मिलेगा? जरा सुनूँ भी तो।

भूपेन्द्र—तुम्हीं कहो।

कनक दबी हुई हँसी के साथ बोली—बीस हजार नकद और कलकत्ते में एक उम्दा मकान।

"तथास्तु" कह कर भूपेन्द्र ने दासी के हाथ से शरबत का गिलास ले लिया।

कनक ने कहा—मेरा दिमाग गरम हो गया है, एक और सिगरेट दीजिए।

शरबत पीकर और सिगरेट देकर भूपेन्द्र चला गया।

तीसरे पहर के समय घूम फिर कर दोस्तों से दो सर्टीफिकेट लिखा कर भूपेन्द्र साँझ होने के बाद फिर लौटा। देखा—कनक ने दरख्वास्त लिख रक्खी है। वह दरख्वास्त लेकर बोला—मेरा मसविदा?

कनक—उसे मेरे पास रहने दीजिए।

"तुम क्या करोगी?"

"मैं रख लूँगी। कभी कभी उसे पढ़ूँगी।"

भूपेन्द्र ने मुसकुरा कर कहा—अगर मैं बेईमानी करूँ तुम्हारा मेहनताना न दूँ तो यह मेरे हाथ का लिखा मसविदा किसी दिन तुम्हारे काम आवेगा। मेरे विरुद्ध अभी से एक प्रमाण अपने पास रख लेना चाहती हो क्यों?

कनक ने हँस कर कहा—नहीं, नहीं, यह नहीं, आप के हाथ का एक चिह्न अपने पास रख लिया है।

"अच्छा, रहने दो। डरो मत। मैं तुम्हें हर्गिज धोखा न दूँगा। जो देने की प्रतिज्ञा की है वह अवश्य दूँगा। विश्वास भी कोई चीज है, यह चोरों में भी पाया जाता है। नहीं तो क्या चोरों का व्यवसाय चलता?" कह कर भूपेन्द्र चल दिया।

[२]

पतित-पावनी गङ्गा की धारा के ऊपर ही वासुदेवपुर के जमींदार का विशाल भवन है। तिमजिले पक्के मकान की शोभा दूर ही से दिखाई देती है। मकान के पिछवाड़े दूर तक दीवार से घिरी हुई अन्त पुर की रमणीय वाटिका है। उसमें देशी-विलायती, छोटे-बड़े भाँति भाँति के फूल और फलों के पेड़ लगे हैं। रङ्ग-बिरङ्ग के पत्ते वाले पौधे भी बहुत हैं। बीच में लता-मण्डप शोभा दे रहा है। गङ्गा के किनारे तक बाग फैला हुआ है। फल-फूलों के पेड़ों के सिवा और भी अनेक प्रकार के बड़े बड़े वृक्ष हैं। गङ्गा के कछार में इन्हीं पेड़ों की अधिकता है। ठौर ठौर पर सङ्गमर्मर के सुन्दर चबूतरे हैं।

भोर होते ही एक विधवा युवती अन्त पुर का द्वार खोल कर बाहर निकली। वह सफेद साड़ी पहने और राम-नामी चादर ऊपर से ओढ़े थी। उषा के निर्मल प्रकाश ने युवती के मुँह पर पड़ कर उस कमनीय मूर्ति को और भी कमनीय बना दिया था। उसके दहने हाथ में एक फूलों की डलिया थी। बायाँ हाथ खाली था। यह और कोई नही, वासुदेवपुर के जमींदार के घर की पतोहू श्रीमती रत्नकला देवी है। अब सम्पूर्ण सम्पत्ति की यही एक उत्तराधिकारिणी है। उसके पीछे पीछे एक अधेड़ दासी भी बाहर निकली। उसके हाथ में धोती, अँगोछा और लोटा आदि था।

बहूजी धीरे धीरे बाग के रास्ते से घाट की ओर जाने लगीं, दासी भी पीछे पीछे चली। दोनों चुप थीं। पेड़ों पर पक्षी मधुर स्वर में प्रभाती गा रहे थे। दखनही हवा फूलों का सुगन्ध लेकर बाग में धीरे धीरे इधर उधर चक्कर लगा रही थी।

बाग की दीवार से सटे हुए दो पक्के घाट थे। एक पुरुषों के लिए और एक अन्त पुर की स्त्रियों के निमित्त। पत्थर की सीढ़ियाँ गङ्गा जी के जल के भीतर तक चली गई हैं। दोनों घाटों के बीच में एक ऊँची दीवार थी।

बहू जी जब घाट की पहली सीढ़ी पर पहुँचीं तब भी सवेरे का धुँधलापन कुछ कुछ चारों ओर फैला हुआ था। वहाँ खड़ी होने पर उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानों पानी से दो तीन सीढ़ी ऊपर कोई पदार्थ पड़ा हो। वह आदमी है या कोई जान-वर या मोटी सी लकड़ी? यह उन्हें अच्छी तरह नहीं सूझा। उसे देख बहू जी मन में कुछ डरीं भी। वे वहीं ठिठक कर खड़ी हो रहीं और पीछे की ओर देख कर दासी से बोलीं—"भन्नू की माँ, जल्द आ।" भन्नू की माँ वहाँ से दस बारह हाथ पीछे थी। बुलाते ही वह जल्दी से बहूजी के पास आ कर हाँफते हाँफते बोली—क्या है बहूजी?

बहूजी ने पानी की ओर उँगली से दिखा कर कहा—देख तो वह क्या पड़ा है?

भन्नू की माँ की उम्र पचास वर्ष से ऊपर थी। वह चकित होकर बोली—अरे दादा! यह क्या है, बहूजी?

"मैंने तो तुझ से ही पूछा है। जा, जरा नजदीक से जाकर देख आ कि क्या है?"

भन्नू की माँ आँखें निकाल कर बोली—नहीं रानी जी! मैं नहीं जा सकूँगी। कहीं वह पकड़ न ले?

बहूजी ने कुछ खफा होकर कहा—तू गजब करती है! क्यों पकड़ेगा? वह न बाघ है, न भालू!

दासी—तो वह क्या है?

"अच्छा, तू नहीं जा सकती तो मैं ही जा कर देखती हूँ।" कह कर बहूजी नीचे की सीढ़ी पर उतरने को उद्यत हुईं।

दासी ने उनका आँचल पकड़ कर कहा—मत जाइए, मत जाइए। वह कोई जानवर है, पानी में बह कर आ गया है या घड़ियाल ही घाट पर आकर देह सुखा रहा है। अगर वह पकड़ ले तो फिर नहीं बचोगी।

बहूजी बल पूर्वक दासी के हाथ से आँचल छुड़ा कर बड़ी सावधानी से सीढ़ियाँ तय करती हुई नीचे को उतरने लगीं। दासी भी उनके पीछे पीछे चार-पाँच सीढ़ी के अन्तर से उतरने लगी।

वहूजी ज्यों ज्यों आगे बढ़ने लगीं त्यों त्यों वह पदार्थ स्पष्ट रूप से मनुष्य की भाँति प्रतीत होने लगा। पास जाकर देखा कि वह एक स्त्री थी। उसकी लटें मुँह और छाती के ऊपर बिखरी पड़ी थीं।

बहूजी ने पुकारा—अरी! तुम कौन हो?

इसका कुछ उत्तर न मिला।

दासी पास पहुँच कर बोली—आप ने जो समझा वही ठीक है। कोई मुर्दा पानी में बह कर घाट पर आ लगा है। हत्यारिन को किनारे लगने को कहीं जगह नहीं मिली। आखिर हम लोगों के घाट पर आ लगी है।

बहूजी ने कहा—मालूम होता है, यह मरी नहीं है। देखो, छाती के ऊपर जो लटें पड़ी हुई हैं वे जरा जरा हिल रही हैं। शायद इसका कलेजा धड़क रहा है।

झन्नू की माँ को, मन्द दृष्टि होने के कारण, लटों का हिलना नहीं सूझा। तो भी कहने लगी—हाँ, बहूजी मालूम तो ऐसा ही होता है।

बहूजी ने और भी पास जा कर स्त्री के कपार और छाती पर से बाल हटा कर परीक्षा की। देखा तो अब भी देह गरम है, हृदय भी यथार्थ में धडक रहा है। उन्होंने कहा—भन्नू की माँ, अभी तक इसमें प्राण है, जल्दी दौड कर घर जा। इसको यहाँ से उठा कर घर ले जाने के लिए लोगों को बुला ला। और, किसी को डाक्टर के बुलाने के लिए भेज देना। जा, जल्दी जा। तुझ से जितनी जल्दी हो सके, जा।

तब भन्नू की माँ ने कहा—"कहाँ से यह विपत्ति आ गई! हे भगवान् रक्षा करो"—कहते कहते उसने अपने सामर्थ्य भर दौडना आरम्भ किया।

भन्नू की माँ अँगौछा और वस्त्र आदि घाट पर डाल गई थी। बहूजी ने उन्हें ला कर स्त्री के भीगे कपडे को बडी मुश्किल से खोल कर अलग किया। अँगोछे से यथा साध्य उसका बदन पोंछ कर सूखा कपडा पहिना दिया। इसके बाद वे अपने आँचल से धीरे धीरे उसके बदन को रगडने लगीं। तब तक कुछ उजेला हो गया था। देखा, उसकी गर्दन के चारों ओर माला के आकार का एक लाल चिह्न है। वहाँ चमडे पर घाव होकर उस से थोडा थोडा खून निकल रहा है।

इतने में 'हूँ हूँ' करते हुए चार कहार एक डोली लेकर पहुँच गये। बहूजी का इशारा पा कर वे उस म्रियमाण स्त्री को डोली पर रख कर महल की ओर ले चले। बहूजी भी लम्बी डग उठाती हुई उस डोली के पीछे पीछे जाने लगी।

[३]

एक सप्ताह हो गया। आज अन्दर के बाग में एक मौलसिरी के वृक्ष की छाया में संगमर्मर के चबूतरे पर वह पूर्वोक्त स्त्री बैठी हुई है। इन कई दिनो तक उसे ज्वर आता रहा। आज कुछ अच्छी है। इसी से रत्नकला (बहूजी) ने उसे बाग में वायु-सेवन करने भेजा है।

स्त्री की उम्र बीस वर्ष के लगभग होगी। उसके दुबले पीले मुँह पर विषाद की घटा छाई हुई है। आँसू से भरी हुई आँखें सदा नीचे झुकी रहती हैं। देखने से मालूम होता है, वह बड़े कष्ट से रुलाई को रोके हुए है। वह फूट फूट कर रोना चाहती है परन्तु लोक-लज्जा के डर से नहीं रोती। एक लाल किनार की साड़ी पहने है, जो रत्नकला ने दी है। दोनों हाथों में सोने की चूड़ियाँ हैं। माँग में सधवा का चिह्न वर्तमान है। ये चीजें पहले ही से थीं।

मृदु मन्द हवा लगने से मौलसिरी के फूल झड़ झड़ कर इस युवती के ऊपर और उसके आस पास चारों ओर गिर रहे हैं। वह बीच बीच में एक फूल उठा लेती है और फिर सोचते सोचते अन्यमनस्क हो कर फेंक देती है।

देर तक बैठने से थक जाने के कारण वह उस चबूतरे पर लेट रही। कुछ देर बाद फिर उठ बैठी और गाल पर हाथ रक्खे घोरचिन्ता में निमग्न हो गई। बीच बीच में छाती कँपा कर वह बार बार लम्बी साँसें लेती है। आह ! यह युवती विपत्ति की मारी जान पड़ती है।

भीतर से एक दासी उसके पास आई। उसकी बाईं बगल

में एक शतरञ्जी और एक तकिया है। दहने हाथ में दूध से भरा गिलास है। शतरञ्जी को नीचे रख कर दासी ने कहा—दूध पी लो।

स्त्री—अभी दूध क्यों?

"बहूजी ने भेजा है। कहा है, कुनाइन खाई है अधिक दूध न पियोगी तो सिर घूमेगा। तुम दूध पीलो, मैं शतरञ्जी बिछाती हूँ।"

उस स्त्री ने दासी के हाथ से दूध लेकर कहा—तुमने बिछौना लाने का कष्ट क्यों किया? मैं इसी चिकने पत्थर के ऊपर लेट रहती—यह बहुत ठंडा है।

"बहूजी ने कहा है कि बैठी रहने से कष्ट होता होगा इस से शतरञ्जी ले जा कर बिछा आओ। वे भी कुछ देर में आती हैं।"

दूध पीते पीते स्त्री बोली—तुम्हारी मालकिन बहूजी आदमी नहीं, देवता हैं।

दासी ने एक बार इधर उधर देख कर चुपके से पूछा—बहन! तुम्हारा घर कहाँ है?

इस बात को पूछ कर नौकरानी ने अपनी स्वामिनी की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। उस दिन गङ्गा-तीर से उठा लाने के बाद डाक्टर ने अनेक उपचार किये तब इस स्त्री के प्राण पलटे। किन्तु कुछ ही देर बाद प्रबल ज्वर चढ़ आने से वह फिर बेहोश हो गई थी। ज्वर जब कुछ शान्त हो गया तब बहूजी ने उस का नाम पूछा था। दो-तीन बार पूछने पर वह बहुत सोच विचार कर बोली—"मेरा नाम शशिकला है।" जाति पूछने पर फिर बड़ी देर तक सोच कर उसने कहा था—"हम ब्राह्मणी हैं।" पिता का घर कहाँ है, ससुराल कहाँ है? यह पूछने पर वह रोने लगी, कोई उत्तर नहीं दिया। अगले दिन बहूजी के परोक्ष में उनकी सास ने यही बात पूछी थी, तब वह फिर कोई जवाब न दे कर रोने

लगी थी। यह बात बहूजी ने सुनी। इससे उन्होंने निश्चय किया कि उसके नैहर या ससुराल के स्मरण के साथ कोई असंह्य दुःख संयुक्त है। इधर, गङ्गा में बह कर आई हुई इस स्त्री का परिचय जानने के लिए घर के दास-दासियाँ सभी व्यग्र थे। किसी तरह वे अपने कुतूहल को दबा कर नहीं रख सकते थे। इसी से बहूजी ने सब को विशेष रूप से सावधान कर दिया था कि कोई उस स्त्री से उसका परिचय न पूछे। यही कारण है, दासी ने सावधानी से चारों ओर देख कर दबी जुबान से पूछा—बहन ! तुम्हारा घर कहाँ है ?

शशिकला ने कुछ रुखाई के साथ कहा—मरघट में।

यह सुन कर दासी चौंक उठी। शशिकला के पञ्जर रूप देह की ओर वह एक टक दृष्टि से देखती रही। फिर मुँह की ओर देखा। उस समय सूर्य के कुछ नीचे उतर आने से वहाँ धूप आगई थी। दासी ने कहा—नहीं बहन, तुम वह नहीं हो।

शशिकला ने अचम्भे में आकर पूछा—मैं क्या नहीं हूँ ?

"तुम वह नहीं हो, यह तुम्हारी परछाईं जो है।"

यह सुन कर उस बड़े दुःख के समय में भी शशिकला को हँसी आगई। उसने कहा—नहीं, मैं चुड़ैल नहीं हूँ। मैं भी तुम्हीं लोगों की तरह मिट्टी की स्त्री हूँ।

दासी ने शशिकला को बिछौने पर लिटा कर कहा—"देखूँ जाकर, बहूजी क्या करती हैं।" फिर वह चली गई।

कुछ देर बाद शशिकला ने देखा कि बहूजी बागीचे की ओर आ रही हैं। जब वे पास आ गईं तब वह उठ बैठी।

बहूजी ने कहा—तुम लेटी रहो, उठो मत।

शशिकला—नहीं, मैं अच्छी तरह बैठ सकूँगी। इतनी देर से तो बैठी ही थी, अभी अभी तो लेटी हूँ।

बहूजी ने कहा—"तुम बीमार हो, लेट रहो। मैं तुम्हारे पास बैठती हूँ। देर तक बैठने से तुम्हें कष्ट होगा।" हँसते हँसते शशिकला के कन्धे पर हाथ रख कर उन्होंने उसे लिटा दिया।

शशिकला कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि से बहूजी के मुँह को देख कर बोली—आप बैठी है, मैं पड़ी हूँ, यह अच्छा नहीं लगता।

"क्यों, दोष क्या है? तुम बीमार हो, मैं तो बीमार नहीं। और भी एक बात है। मैं तुम को तुम कहती हूँ, तुम मुझे आप क्यों कहती हो?"

यह सुन कर शशिकला की वह डबडबाई हुई आँखें और भी आँसुओं से भर गईं। वह रुँधे हुए कण्ठ से बोली—आप की मुझ पर कृपा है, इसी से ऐसा कहती है। आप रानी है, मैं आप की दासी के बराबर भी नहीं। तो भी आप इसको कुछ मन में नहीं लाती। आपने बीमारी में अपने हाथ से जैसी मेरी सेवा की है, वैसी सगी माँ बहन भी नहीं कर सकती। आप न करती तभी अच्छा होता।

बहूजी उसके मन के भाव को जानती थीं। आज ही नहीं, इसके पहले भी वे इस बात पर कई दिन ध्यान दे चुकी है कि जी जाने से यह स्त्री मानों अपने भाग्य को धिक्कार देती है। उन्हें अभी तक इसका परिचय नहीं मिला, और वे यह निर्णय भी नहीं कर सकीं कि इसे इतना दुःख किस बात का है। इधर कई दिनों से शशिकला के साथ आन्तरिक वार्तालाप करने का सुयोग भी उन्हें न मिला था। आज पहले पहल दोनों को निराले में बातचीत करने का मौका मिला है। विशेष कर इस अभागिनी के दुःख का कारण जानने और यथासम्भव उसका प्रतिकार करने के लिए रत्नकला का कोमल हृदय दया से द्रवीभूत हो रहा है।

उसके मुँह से यह बात सुन कर वह रानी ने पूछा—तुमको जिलाने की चेष्टा करके मैंने क्या बुराई की है ?

शशिकला—मेरी जैसी हत-भागिनी के लिए मरना ही अच्छा था।

रत्नकला ने निन्दा के स्वर में कहा—छि, यह बात क्य कहती हो ! अपने मरने की इच्छा क्यों करती हो ? भगवान् ने मनुष्य-जीवन दिया है। यह उनका महादान समझो। उनके दिये जीवन पर अवज्ञा करना उन्हीं का अपमान करना हुआ।

शशिकला ने कहा—जीवन दिया सो अच्छा किया। किन्तु जीवन के साथ साथ इतना दुःख क्यों रख दिया ?

"वे जो अच्छा समझते हैं वही करते हैं। उनके कार्य में दोष देना या उसमें भूल बतलाना क्या हम लोगों का काम है ? उन्होंने जो दुःख दिया है वह भी हमें आदर से ग्रहण करना चाहिए।"

शशिकला दूसरी ओर दृष्टि करके चुप हो रही। सूर्यास्त हो गया। सन्ध्या समय बीत जाने से चारों ओर कुछ कुछ अँधेरा छा गया है। बाग के जितने पक्षी गङ्गा-किनारे चुगने गये थे वे सब लौट कर मधुर कोलाहल से आकाश को पूर्ण कर रहे हैं। कुछ देर में रत्नकला ने "तुम्हें क्या दुःख है, मुझ से कहो न ?" कह कर बड़े स्नेह से शशिकला का एक हाथ अपने हाथ में लिया।

किन्तु शशिकला कुछ न बोली। धैर्य का बाँध टूट जाने से उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

रत्नकला ने कहा—ठहरो, रोओ मत। उस बात का स्मरण करने से भी यदि तुम्हें इतना दुःख होता है तो कहने का कोई काम नहीं। मैं इस विषय में अब तुम से कुछ न पूछूँगी। सिर्फ एक बात पूछती हूँ।

शशिकला ने अपनी आँसू-भरी आँखें रत्नकला देवी की ओर उठाई ।

बहूजी ने अपने आँचल से बड़े यत्न के साथ उसकी आँखें और गाल पोंछ कर कहा—तुम्हारे आत्मीयजनों में कहीं कोई है या नहीं, यह हम नहीं जानती । तुम कुछ कहती हो नहीं। तुम आज आठ दिन से यहाँ हो । तुम्हारी खबर न पाने से वे कितने सोच में पड़े होगे। उन को कुछ खबर देना चाहिए या नहीं ।तुम्हारा पता मालूम होने से वे आकर तुम को ले जा सकेंगे।

शशिकला धीरे धीरे उठ बैठी । वह बोली—"बहूजी, इस ससार में अब मेरा वैसा कोई नहीं जो मेरी खबर न पाने से चिन्तित होगा, या खबर पाकर खुश होगा अथवा यहाँ आकर मुझे ले जायगा ।मेरे दुर्भाग्य की सीमा नहीं है। इसी से मैं अपना कोई परिचय आप को नहीं देती। सामान्यत जो कुछ कहा है वह भी काल्पनिक है, असल नहीं। यह भी आप को जता दिया है। क्योंकि आप के साथ यह कपट करके मैंने भारी अन्याय किया है, अकृतज्ञ का काम किया है। आप ने जब मेरे प्राण बचाये है तब आप से मेरी एक और प्रार्थना है"—कह कर शशिकला ने बहूजी के दोनों पैर पकड़ लिये।

"यह क्या करती हो—यह क्या करती हो बहन"—कह कर रत्नकला ने उसके दोनों हाथ खींच लिये।

शशिकला दीनता भरे स्वर में कहने लगी—मेरी प्रार्थना यही है कि मुझे अपने आश्रय में पड़ी रहने दीजिए। आप का यह घर राजभवन से कम नहीं है। भगवान् की कृपा से आप को किसी बात की कमी भी नहीं। मैं जितने दिन जीऊँ, मुझे भी अपनी सेवा में थोड़ी सी जगह दे दीजिए। कितने ही दास और

दासियों का आप प्रतिपालन कर रही हैं, उसी तरह मेरा भी प्रतिपालन करें। मुझे त्याग न दें।

यह मर्म-भेदी बातें सुन कर रत्नकला देर तक चुप मारे बैठी रही। फिर अपने आँचल से शशिकला की आँखें पोंछ कर बोली—बस, यही बात है। इसके लिए तुम इतनी अधीर क्यों हो गई ? तुम को मैं त्याग दूँगी, यह बात तो मैंने कही नहीं। मैं तुम को अपने पास रक्खूँगी, कहीं जाने न दूँगी। क्यों ? अब तो शान्त हो, रोओ मत।

किन्तु शशिकला की आँखों के आँसू रोके नहीं रुकते थे। बहूजी ने उसे बहुत तरह से समझा-बुझा कर शान्त किया।

आसमान में दो चार तारे निकल आये। तब वे दोनों उठ कर अन्तःपुर की ओर चलीं। रास्ते में जाते जाते थक कर शशिकला एक बेञ्च पर बैठ गई। बहूजी भी बैठीं। फिर दोनों में बातचीत होने लगी।

बहूजी ने कहा—देखो बहन, मैं अकेली हूँ। मेरी कोई सखी सहेली नहीं है। अकेली रहने से जी ऊब जाता है। बड़ी मुश्किल से दिन बीतता है। इसी से दीवान जी ने—उन्हें मैं काका कहती हूँ—मेरी एक सहचरी के लिए समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिया है। मैं सोचती हूँ कि अब बाहर से किसी अन्य स्त्री को बुलाने की क्या आवश्यकता है, तुम्हीं मेरी सहचरी हुई। मैं काका से कहूँगी—कहो, क्या कहती हो ?

शशिकला ने कोमल स्वर में कहा—आप की दया को मैं कभी न भूलूँगी।

इसके बाद दोनों उठ कर भीतर हवेली में चली गईं।

---

[४]

दूसरे दिन सवेरे गङ्गा-स्नान और पूजा-पाठ करके रत्नकला सोच रही थीं कि दीवान जी को बुलाऊँ। इतने में खबर आई कि दीवान जी स्वयं दर्शन करने को आये हैं।

बाबू रघुनाथसिंह इस रियासत के पुराने दीवान हैं। उनकी उम्र साठ वर्ष से भी ऊपर हो गई है तथापि वे जमींदारी के सभी काम युवकों की तरह उत्साह-पूर्वक करते हैं। नाटा कद है, साँवला रङ्ग है और सिर के बाल पक पक कर पक गये हैं। देह भी ऐसी हृष्ट-पुष्ट है जैसी दीवान जी की होनी चाहिए। स्वर्गीय जमींदार साहब इन्हें बहुत मानते थे और इन पर पूरा विश्वास रखते थे। ये कायस्थ हैं, फिर भी इस परिवार में सभी के आत्मीय की भाँति समझे जाते हैं। बहूजी इन्हें काका कहती हैं, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

अन्तःपुर में एक छोटा सा कमरा था, जिसमें बहूजी का आफिस था। इस कमरे में कुरसी, टेबल, अलमारी और खींचने का पखा भी लगा था। बहूजी से कोई बात पूछने या किसी कागज पर दस्तखत कराने के लिए जब दीवान जी भीतर आते तब इसी कमरे में बैठते थे। हिन्दू घर की कुलवधू के योग्य स्वाभाविक लज्जावश बहूजी कभी दीवान जी के सामने कुरसी पर नहीं बैठती थीं—दासियों के साथ आकर, घूँघट डाले, दीवान जी के आसन से कुछ अन्तर पर खड़ी रहती थीं। आज भी उसी तरह उनके सामने गईं।

दीवान जी पहले ही से उस कमरे में बैठे थे। बहूजी को

आते देख वे सम्मान के लिए उठ खडे हुए। "बैठिए" कह कर बहूजी अपने उचित स्थान पर आ खडी हुईं।

दीवान जी ने पूछा—आपका स्वास्थ्य कैसा है ?

"काका जी, मैं अच्छी तरह हूँ। आप अच्छे हैं न ?"

"हाँ, देवी ! अच्छा हूँ। अच्छा, आप को जो उस दिन गङ्गा के घाट पर वह स्त्री मिली थी, उसका कुछ परिचय मालूम हुआ या नहीं ?"

"नही। वह अपना हाल कुछ नही बतलाती। आशा भी नहीं कि कुछ बतावेगी।"

"पुलिस में इसकी इत्तिला कर दें न। कहाँ से, कौन, कैसे, गङ्गा के प्रवाह में वह कर यहाँ आई है ? आखिर इसके लिए किसी दिन कोई बखेडा न खडा हो।"

"इसके लिए थाने में रपट लिखाने की क्या जरूरत है ? यह एक अनाथ स्त्री है। मालूम होता है, नाव से गिर पडी थी। प्रवाह में वह कर यहाँ किनारे आ लगी। उसको हम लोगों ने आश्रय दिया है—इसके लिए क्या बखेडा होगा ? पुलिस को खबर देने से वह तुरन्त आकर उससे पूछताछ करेगी, यह मैं नहीं चाहती।"

दीवान जी ने कुछ सोचकर कहा—इस लिए नहीं। सुना था, उसके गले में फन्दे का दाग है, शायद किसी ने उसको पानी में डुबा कर मार डालने की चेष्टा की थी, या वह आप ही आत्म-हत्या करने गई थी। दोनों अवस्थाओं में मामला पुलिस के तहकीकात करने योग्य है। किन्तु जब आप की राय नहीं होती तब खबर नहीं दूँगा, जाने दो। गले में वह दाग क्या अब भी है ?

"हाँ, कुछ कुछ है। दो-चार दिन में वह भी मिट जायगा।"

"अच्छी बात है। आज मैं दूसरे काम से आया हूँ। आप की सहचरी के लिए समाचार पत्र में जो विज्ञापन दिया गया था उसके लिए कितने ही आवेदन-पत्र आये हैं।"—कह कर दीवान जी डाक की चिट्ठियाँ गिन कर बोले—यह पाँच दरख्वास्तें आई हैं। अपने आप आई हुई स्त्री को ही अपनी सहचरी बनाने का प्रस्ताव बहूजी के होठों तक आगया। किन्तु संकोचवश उन्होंने कहा नहीं। सोचा, आवेदन पत्रों की बात पहले सुन लूँ, फिर कह दूँगी।

दीवान जी दरख्वास्तों के ऊपर नजर रख कर बोले—इनमें चार तो साधारण सी जान पड़ती हैं। एक स्त्री की दरख्वास्त पढ़ कर ऐसा जान पड़ता है कि शायद वह आप के पसन्द लायक हो। तो सब दरख्वास्तें पढ़ कर सुनाऊँ?

बहूजी ने कहा—सुनाइए।

दीवान जी ने पहली दरख्वास्त पढ़ी। कलकत्ते के श्याम बाजार की एक बुढ़िया का आवेदन था—वह रामायण और महाभारत पढ़ कर सुना सकती है। गाने-बजाने की विशेष योग्यता नहीं। सन्तान नहीं है। जेठ के लड़के (भतीजे) के पास रहती है। भतीजा है अत्यन्त स्त्री भक्त, स्त्री के कहने से वह इसे अपने पास रखना नहीं चाहता। काशी, वृन्दावन या किसी अन्य तीर्थ में जाकर रहने का विचार था। यदि यह काम मिले तो यह अभी तीर्थयात्रा को तैयार नहीं। पत्र सुना कर दीवान जी ने कहा—हम जैसी स्त्री खोजते हैं, यह वैसी नहीं है। स्त्री आप की हमजोली की हो, जिसके साथ गपशप, हास-विनोद करके आप का मन प्रसन्न रहा करे। वैसी ही स्त्री की आवश्यकता है। कहिए, यही न?

बहूजी लजाती हुई बोलीं—जी हाँ।

इसके बाद दीवान जी ने दूसरी दरख्वास्त पढ़ी। यह दरख्वास्त देने वाली लिखना-पढना नही जानती। जबानी कुछ स्तोत्र पाठ करना जानती है। महाभारत, रामायण की कथा, जो उसकी सुनी हुई है वह कह सकती है। यह भी अधेड है। रसोई बनाने और गृह-कार्य में अपने को बडी प्रवीणा बतलाती है। इस आवेदन को भी दीवान जी ने स्वीकार करने योग्य नहीं बतलाया। तीसरा और चौथा आवेदन-पत्र भी इन्हीं कारणों से अग्राह्य हुआ। तब दीवान जी अन्तिम आवेदन-पत्र खोल कर और अच्छी तरह चश्मा लगा कर मुस्कुराते हुए बोले—इसकी लिखावट से स्पष्ट होता है कि "यह स्त्री अच्छी तरह लिखना पढना जानती है। वाक्य रचना भी बहुत बढिया है।' कह कर उन्होंने दरख्वास्त पढना आरम्भ किया।

कलकत्ता,
चैत्र बदी ?

श्रीयुत् मान्यवर बाबू रघुनाथसिंह साहब,
मैनेजर वासुदेवपुर रियासत की सेवा में।

महाशय !

आपने चैत बदी ४ के हिन्दी बङ्गवासी में जिस कार्य के लिए विज्ञापन दिया है, वह पढ़कर मैं यह आवेदन-पत्र आप के निकट भेजने का साहस करती हूँ। यदि आप इसे एक बार सादर कृपा-दृष्टि से देखेंगे तो मैं कृतार्थ हूँगी।

मेरे पिता का नाम रामजीवन मिश्र था और घर था विलास पुर में। मैने हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया है। रामायण महाभारत से लेकर आधुनिक जीवित कवि, नाट्यकार, और उपन्यास-लेखकों की ग्रन्थावली तक प्राय सब मेरी देखी हुई

है। मैंने खुद भी एक नाटक बनाया है, किन्तु द्रव्य के अभाव से अभी तक उसे नहीं छपा सकी हूँ। मैंने संगीत विद्या का भी यथेष्ट अनुशीलन किया था। अच्छे उस्तादों से मैंने शिक्षा ग्रहण की थी। इसके बाद मैंने स्वयं कितनी ही बालिकाओं को संगीत सिखा कर सफलता भी प्राप्त की है। बाजों में पियानो, हार्मोनियम, सितार और सारङ्गी बजाना सीखा था। अब दारिद्र्य दोष से ये सब बाजे पास न रहने के कारण मेरी यह विद्या अवश्य कुछ मन्द पड़ गई है। कुछ दिन अभ्यास का सुयोग पाने से मैं फिर हस्तगत कर लूँगी, इसमें सन्देह नहीं। ब्राह्मण-कुल में मेरा जन्म हुआ है। एक अच्छे कुल-शील वाले हिन्दू घराने में मेरा दाम्पत्य जीवन व्यतीत हुआ। अब इस कलकत्ते शहर में एक अबला स्त्री के लिए हिन्दू आचार-विचार का पालन करना जहाँ तक सम्भव है, करती हूँ। 'जहाँ तक सम्भव" का तात्पर्य यही कि यहाँ लाचार होकर मुझे नल का पानी पीना पड़ता है। इतना विभव नहीं जो नौकर के द्वारा प्रति दिन पीने के लिए गङ्गाजल मँगाया करूँ।

मैंने परदे-नशीन हिन्दू रमणी होकर भी उक्त विद्याएँ कैसे प्राप्त कीं? इसके लिए मैं संक्षेप से अपना जीवन वृत्तान्त आपके निकट प्रकट करती हूँ—

बीस वर्ष पूर्व विलासपुर में मेरा जन्म हुआ था। मेरे पितामह कुछ स्थावर सम्पत्ति छोड़ गये थे। मेरे पिता तीन भाई थे। तीनों आपस में पैतृक सम्पत्ति बराबर बराबर बाँट कर अपने अपने अंश का उपभोग करने लगे। परन्तु रसोई पानी सब का एक ही में होता था। जब मैं सात वर्ष की हुई तब मुझे और मेरे पन्द्रह वर्ष के ज्येष्ठ भाई को छोड़ मेरी माँ स्वर्गवासिनी हो गई। माता की मृत्यु के अनन्तर मेरे पिता जी घर में अधिक नहीं ठहरते थे। वे

कलकत्ते में ही अधिकांश रहते थे। कुछ दिन के बाद, ३००) मासिक वेतन पर वे किसी अँगरेजी कारखाने में खजाञ्ची के काम पर नियुक्त हो गये। यह काम पाने के लिए उन्होंने अपने हिस्से की पैतृक सम्पत्ति जमानत में दे दी। नौकरी कर लेने पर वे हम दोनों भाई-बहनों को कलकत्ते ले आये। हमारी बूढ़ी फूफी भी हमारे साथ आई।

कलकत्ते में रहते समय मेरे पिता जी के धार्मिक और सामाजिक व्यवहार में कुछ परिवर्तन हुआ था, यद्यपि उन्होंने कभी धर्मान्तर ग्रहण नहीं किया, वे आजीवन हिन्दू समाज में ही रहे। मेरा भाई स्कूल में पढ़ने लगा, और मुझे घर ही पर उचित शिक्षा दी जाने लगी। पिता जी ने मुझे हिन्दी, संस्कृत पढ़ाने और शिल्प कर्म तथा गाने-बजाने की शिक्षा देने के लिए दो तीन अच्छे शिक्षक नियुक्त कर दिये थे। जब मैं दस ग्यारह वर्ष की हुई तब मेरे देश के आत्मीयगण और मेरी फूफी जो कलकत्ते में थीं वे सब मेरा ब्याह कर देने के लिए पिता जी को दिक करने लगे। परन्तु पिता जी ने कहा—"छोटी सी लड़की का ब्याह नहीं करूँगा। वह अभी लिखना पढ़ना सीख ले। जब सोलह वर्ष की होगी तब उसका ब्याह कर दूँगा।" इस लिए मेरे लिखने-पढ़ने और गाने-बजाने की शिक्षा पूर्ववत् होती रही। इस प्रकार जब मेरी उमर चौदह वर्ष की हुई तब पिता पर एक भारी विपत्ति आ पड़ी। उनके मातहत किसी कर्मचारी की भूल से तहवील के बहुत रुपये गायब हो गये। इसके लिए पिता जी ही को सम्पूर्ण-रूप से उत्तरदायी होना पड़ा। उनकी नौकरी तो गई ही, साथ ही जो कुछ पैतृक सम्पत्ति थी वह भी नीलाम हो गई। इसके छ महीने बाद हम सब को अगाध शोक समुद्र में डुबा कर वे परलोक को चल बसे। देश से हमारे चाचा

आकर मुझ को ले गये और जहाँ तक जल्द हो सका, चेष्टा करके मेरा ब्याह कर दिया। विवाह के योग्य समय को मैं पार कर गई थी, इस लिए वे लोग बड़ी घबराहट में पड़ गये थे। हिन्दू समाज में क्वारी लड़की यदि सयानी हो जाय तो सब लोग उसके माँ-बाप की निन्दा करने लग जाते हैं। मैं जिस घर में गई, वह कुलीन होने पर भी निर्धन था। धनी पिता के घर में लाड़-चाव से प्रतिपालित होने पर भी मैं उनके घर जाकर मनसा वाचा कर्मणा पति की और अन्यान्य गुरुजनों की सेवा करने लगी। मैं बाप के घर अपनी धोती कभी अपने हाथ से नहीं धोती थी, किन्तु ससुराल में प्रसन्नमुख से गृहस्थी के सभी काम करने लगी। मैं पूर्वजन्म की बड़ी पापिनी थी, इसी से मेरा सौभाग्य चन्द्र असमय में ही अस्त हो गया। विशूचिका रूपी काल रोग ने आकर मेरी माँग का सेंदुर पोंछ लिया। तीन वर्ष हुए, मैं विधवा हो गई।

मेरे ससुर दरिद्र थे, यह मैं पहले ही निवेदन कर चुकी हूँ। अन्न-वस्त्र के कष्ट से मुझे वहाँ से चला आना पड़ा। उस समय मेरे भाई साहब इस कलकत्ते में ४०) मासिक पर मास्टरी करते और कानून का अध्ययन कर रहे थे। उसी ४०) रुपये में हम तीनों आदमी किसी तरह गुजर करने लगे। गत पौष की पूर्णमासी को मेरी फूफी भी चल बसीं। भाई ने इस वर्ष वकालत की परीक्षा पास कर ली है। वे युक्तप्रदेश में कहीं अच्छे स्थान में जाकर वकालत जमाना चाहते हैं। किन्तु वे मुझ को यहाँ अकेली छोड़ कर जा नहीं सकते, और न मुझ को साथ लेकर पच्छिम जाने ही में सुविधा है। मेरे भाई अविवाहित हैं। मैं दूर देश में जाकर भाई के घर अकेली कैसे रहूँगी? इन्हीं कारणों से वे यहाँ से कहीं जाना नहीं चाहते। मैं उनके जीवन के उन्नति पथ में

काँटा हो रही हूँ। ऐसे समय में श्रीमान् का विज्ञापन पढ़ कर मैंने समझा कि शायद भगवान् ने दया करके मुझ अभागिनी ही के लिए यह काम खाली कर दिया है।

यदि आप इस काम पर मुझे नियुक्त करें तो एक अनाथ ब्राह्मणी का उपकार हो। मैं श्रीमती बहू जी साहबा को प्रसन्न रखने की सदा चेष्टा करूँगी। अगर वे दयापूर्वक मेरा स्मरण करेंगी तो मैं अपने भाई के साथ शीघ्र वासुदेवपुर हाजिर होऊँगी। आशा है, उत्तर मिलेगा।

भवानीपुर, नं० १०७ कलकत्ता। — विनीत निवेदिका, कनकलता।

दरख्वास्त पढ़ कर दीवान जी ने कहा—मेरी इच्छा इसी स्त्री को बुलाने की है। आप क्या कहती हैं?

यह दुःख कहानी सुनते सुनते बहूजी का हृदय दया से भर गया था। उन्होंने मन में कहा—अच्छा तो वह भी आवे, और शशिकला भी रहे। ईश्वर की कृपा से मुझे धन की कमी तो है नहीं। प्रकाश्य में बोली—अच्छा, आप जो ठीक समझें वही हो। उसी को नियुक्त कर लीजिए।

दीवान जी ने कहा—तो आज ही चिट्ठी लिखता हूँ।

बहू जी ने कुछ सोच विचार कर कहा—उनको राह-खर्च के लिए कुछ भेजना आवश्यक होगा न?

दीवान जी—राह-खर्च? पहले पहल जो किसी काम पर बहाल होता है वह अपने ही खर्च से आता है। यही नियम है।

बहू जी ने कुछ दया-पूर्ण स्वर में कहा—किन्तु यह अबला स्त्री है। और हालत भी—

दीवान जी मुसकुरा कर बोले—अच्छा, जब आप कहती हैं तब राह-खर्च हिसाब करके भेज दूँगा।

बहूजी सहज ही चुप रहने वाली न थीं। उन्होंने फिर कहा—अन्यान्य आवश्यकीय कामों के लिए भी तो कुछ भेजना चाहिए? उसने अपनी वर्तमान अवस्था का जैसा कुछ वर्णन किया है उससे मालूम होता है उसके पास कपड़े-लत्ते भी अच्छे न होंगे।

दीवान जी उठ खड़े हुए। बोले—अच्छा उसके लिए भी कुछ भेज दूँगा।

"कितना भेजिएगा?"

दीवान जी ने हँस कर कहा—आप कितना कहती हैं?

"पचास रुपये—अलावा राह खर्च।"

"जो आप की आज्ञा है, वही होगा। आप दयामयी हैं।' कह कर दीवान जी चले गये।

यथासमय दीवान जी ने कनकलता के नाम नियुक्ति का परवाना और मनी आर्डर भेज दिया। कुछ ही दिन बाद भाई के साथ कनकलता आ पहुँची। "भाई" और कोई नहीं, वही सोने का हिरन भूपेन्द्रनाथ है।

गाड़ी से उतर कर भूपेन्द्र बाहर के कमरे में बैठा, और कनकलता भीतर गई।

भूपेन्द्र का मनोहर रूप देख कर कमरे के सभी लोग चकित हो गये। ऐसा सुन्दर पुरुष उस गाँव में कोई नहीं था। और कहीं कभी किसी ने देखा है या नहीं, यही सब मन ही मन सोचने लगे। कर्मचारी आपस में काना फूसी करने लगे कि जब यह ऐसा सुन्दर है तब इसकी बहन, जो बहूजी की सहचरी होने आई है, न जाने कैसी सुन्दरी होगी!

हाथ-मुँह धोकर और कुछ जलपान करके भूपेन्द्र बैठा ही था कि दीवान जी आये और उसे अभ्यर्थना-पूर्वक अपने दफ़्तर में ले गये। पास बिठा कर पूछने लगे—रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ, कलकत्ते में और कितने दिन रहना होगा, पश्चिम में कहाँ जा कर वकालत करने की इच्छा है, इत्यादि।

भूपेन्द्र ने चालाकी करके कहा—अगर मैं पच्छिम न जाऊं, कृष्णनगर में ही प्रैक्टिस करूँ तो क्या आप की स्टेट के मुकदमे मुझे मिल सकेंगे?

दीवान जी बोले—हमारी स्टेट के मुकदमे? हम लोग ज्यादा मामले-मुकदमे नहीं करते। कहीं कोई दगा फसाद होने पर

आपस में ही निवटारा कर डालने की चेष्टा करते हैं। जब कोई इत्तिफाक से मुकद्दमा होता है तब सदर में जो हमारे वकील नियुक्त हैं उन्हीं के पास मुकद्दमा जाता है।

भूपेन्द्र ने मन ही मन हँस कर कहा—देहात का रहनेवाला बूढ़ा आदमी इतना सहज हाथ झाड़ कर निकल जायगा, यह कैसे होगा। अच्छा एक ओर मजा करता हूँ। प्रकाश्य रूप में कहा—"आप के वकील तो हैं ही, किन्तु जब कोई बड़ा मुकद्दमा होता होगा तब तो दो एक और वकीलों की भी आवश्यकता होती होगी। उस समय दूसरे को न करके यदि मुझे ही आप नियुक्त करें—यदि आप ऐसा भरोसा दें—तो कृष्णनगर में रहने का विचार करूँ। यद्यपि मैं नया वकील हूँ, तो भी मैंने बड़ी मेहनत करके कानून की किताबें पढ़ी हैं। अपने मुँह से मैं अपनी तारीफ क्या करूँ, अभी कहने से क्या होगा, अवसर आने पर काम करके ही दिखा दूँगा, 'फलेन परिचीयते'।" यह कह कर भूपेन्द्रनाथ गम्भीर भाव से बैठ कर दीवान जी के मुँह के भाव पर लक्ष्य करने लगा।

दीवान जी ने कुछ सोच कर कहा—अभी इस रियासत में कोई बड़ा मुकद्दमा तो नजर नहीं आता। अलबत्ता मेरी निज की जमींदारी में—देश में मेरे भाई हैं, वही उसकी देख भाल करते हैं,—एक भारी मुकद्दमा शीघ्र ही दायर होने वाला है। उसकी हालत सुनिएगा?

भूपेन्द्र उत्साह के साथ बोला—हाँ हाँ, कहिए।

दीवान जी ने कहा—मामला कुछ पेचीला है। मन लगा कर सुनिए। आप की राय क्या है, वह भी सुन लूँ। मैंने इस विषय में कृष्ण-नगर के वकीलों की सलाह ली है—हाईकोर्ट के वकीलों से भी पूछा था। किन्तु कृष्ण नगर के वकीलों के साथ हाईकोर्ट

के वकीलों की राय नहीं मिलती। आप क्या कहते हैं, वह भी सुन लेना चाहिए।

भूपेन्द्र मन ही मन सहम गया। मुकद्दमे की हालत सुन कर उस पर राय देनी होगी—इस बात को तो सोचा ही नहीं था। फिर भी दीवान जी कहते हैं, मामला टेढ़ा है।

दीवान जी धीरे धीरे मुकद्दमे की हालत बयान करने लगे।—एक निःसन्तान धनवान् व्यक्ति ने वसीयतनामा लिख कर अपनी स्त्री को दत्तक पुत्र लेने का अधिकार दिया था। उसमें और भी कितनी ही शर्तें थीं। स्त्री यदि दत्तक लेने के पूर्व मर जाय, या क़ानूनन दत्तक असिद्ध हो तो क्या होगा? यदि दत्तक भी मर जाय और उसके सन्तान न हो तो फिर क्या होगा? विश्वमोहन और व्रजमोहन दोनो भाई वसीयतनामे के ट्रस्टी बनाये गये थे। कैसी अवस्था होने पर उक्त सम्पत्ति का अधिकार इन दोनो भाइयों को प्राप्त होगा, इत्यादि कितनी ही बातें दीवान जी कहने लगे और बीच बीच में भूपेन्द्र से पूछने लगे—"आप भली भाँति समझते हैं न?" भूपेन्द्र ने सिर हिला कर सूचित किया 'जी हाँ समझता हूँ।" यद्यपि वह खाक पत्थर कुछ भी न समझता था। वह तो इसी उधेड़-बुन में था कि दीवान जी क्या पूछते हैं और उसका जवाब क्या देना होगा। उसका चित्त ठिकाने नहीं था। वह ज़रा सुनता और फिर सोचने लगता था। वह मन में कहने लगा—अच्छी विपत्ति में फँसा हूँ। मैं समझता तो कुछ हूँ नहीं, राय क्या दूँगा? अच्छा, इसके लिए कोई चिन्ता नहीं, जो मुँह में आवेगा कह दूँगा। अगर बुड्ढा फिर मेरी राय के प्रमाण में दलील पूछ बैठे तो क्या कहूँगा। तब तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी पोल बात की बात में खुल जायगी। इसी उधेड़-बुन में भूपेन्द्र ने दीवान जी की बात सिलसिलेवार नहीं सुनी। एक बात सुनता

फिर उसका सम्बन्ध सो बैठता था। समीप आई विपत्ति की बात सोचते सोचते उसके गोरे ललाट से पसीना चूने लगा। उसके दोनो हाेंठ सूख गये।

मुक़द्दमे को हालत सुना कर दीवान जी ने कहा—वकील साहब, कहिए, अब विश्वमोहन और व्रजमोहन को कौन सा स्वत्व प्राप्त होगा?

भूपेन्द्र बडी उलझन में पडा। वह कौन सा स्वत्व बतावे। उसका पिता सुखी होने पर भी—कम्पनी के कागज (प्रामिसरी नोट) और कलकत्ते का ऊँचा मकान लेकर ही धनवान् था। इस लिए जमींदारी से सम्बन्ध रखने वाली बातो में उसका पुत्र भूपेन्द्र बिलकुल कोरा था। कानूनी स्वत्व को मन ही मन प्रणाम कर उसने कहा—"पुश्तैनी हक़ होगा।" दीवान जी ने कहा—पुश्तनी हक़? हाईकोर्ट के वकीलों ने भी यही कहा था।

यह सुन कर भूपेन्द्र का हृदय बाँसों उछल पडा। कृष्ण-नगर के वकील मूर्ख हैं। हाईकोर्ट के वकीलों से उसकी राय मिल गई है। सोचा, मैंने कैसी अक़्लमन्दी की। देहाती आदमी क्या सहसा हम लोगों की चालाकी समझ सकते हैं।

किन्तु खेद! उसका यह गर्व कुछ ही देर में पानी का बुल-बुला हो गया। दीवान जी ने फिर तुरन्त ही पूछा—अच्छा, यदि पुश्तैनी हक़ ही हो तो उन दोनों के बाद सम्पत्ति का अधिकारी कैान होगा? बलदेव या शिवशरण?

एक बार उत्तर देने पर भी पिण्ड नहीं छूटता। दीवान जी के विशद व्याख्यान के समय बलदेव और शिवशरण ये दोनो नाम कई बार उसके कान में प्रविष्ट हुए थे, किन्तु उसको स्मरण नहीं कि दोनो कैान हैं और इस मुकद्दमे के साथ उनका सम्पर्क

ही क्या है। तथापि सिर पर हाथ रख कर दैव के भरोसे कर दिया—दोनों ही पावेंगे, किन्तु आधा आधा।

यह उत्तर सुन कर दीवान जी अश्रद्धा की दृष्टि से नकली वकील की ओर देखने लगे। किसी वकील मुख्तार की बात तो दूर रहे—जमींदारी सरिश्ते का कोई होशियार मुंशी भी ऐसी असम्भव और हास्यास्पद बात मुँह से न निकालता।

उनके चेहरे का भाव देख कर भूपेन्द्र समझ गया कि कुछ गड़बड़ हुई है। वह झट बोल उठा—क़ानून की किताब और नजीर वगैरह बिना देखे राय देना ठीक नहीं। अच्छा तो यह हो कि आप एक कागज पर इन बातों को नोट कर दें, मैं कलकत्ते जाकर अपनी ठीक ठीक राय लिख भेजूँगा।

दीवान जी बड़ी घृणा और अवज्ञा की दृष्टि से भूपेन्द्र की ओर देख कर बोले—जाने दीजिए, अब आप को अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं।

भूपेन्द्र ने लज्जा से सिर झुका लिया।

दीवान जी ने एक नौकर को देख कर कहा—अरे, बाबू को स्नान करा दे, साबुन ले आ।

नौकर ने कहा—चलिए बाबू।

भूपेन्द्र एक लम्बी साँस लेकर उठ खड़ा हुआ। जब तक वह वासुदेवपुर में रहा, दीवान जी से कोसों भागता रहा।

कनकलता से सलाह करके भूपेन्द्र आया था कि कुछ दिन वासुदेवपुर में रहूँगा और किसी दिन सुयोग पाकर बहूजी के दर्शन करूँगा। कनक ने कहा था—अगर वह एक बार आप का चेहरा देख ले तो मेरा काम अपेक्षाकृत कुछ सीधा हो जाय। कनक का विश्वास था कि इस स्वर्णमृग को जो स्त्री देखेगी, वही इसको पाने के लिए पागल हो उठेगी।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन हो गये, परन्तु भूपेन्द्र ने बहूजी से भेंट होने का कोई सुयोग नहीं देखा। कनक आते ही भीतर चली गई। भूपेन्द्र बाहर के कमरे में पड़ा रहा। भोजन आदि के लिए भी भीतर जाना नहीं होता। बाहर के लोगों के लिए बाहर ही खाने-पीने आदि का इन्तज़ाम है। अन्तःपुर ऊँची दीवारों के भीतर है। बाहर से छत देख पड़ती है किन्तु छत के प्रान्त में जो ऊँचा कार्निस है, उसमें छोटे छोटे छेद हैं पर उससे इतना भी मालूम नहीं होता कि छत के ऊपर कोई आदमी है या नहीं। किन्तु छत पर का आदमी बाहर के लोगों को अच्छी तरह देख सकता है। इन कई दिनों के भीतर बहूजी ने किसी दिन छत पर चढ़ कर मुझे देखा है या नहीं, यही वह सोच रहा था। भूपेन्द्र शाम को उसी जगह टहला करता था जहाँ पर छतवालों की दृष्टि सहज ही पड़ सकती थी। बहूजी ने अब तक उसे देखा है या नहीं, और अगर देखा है तो उसके मनोहर रूप ने बहूजी के मन में कुछ असर डाला या नहीं, इन बातों को सोचते सोचते वह व्याकुल हो गया। चौथे दिन स्नान के पूर्व उसने सुपरिन्टेन्डेण्ट (नायब) से कहा—मुझे बहन से कुछ कहना है। उससे क्या एक बार मेरी भेंट हो सकती है?

नायब ने कहा—मैं बहूजी साहबा के पास इत्तिला भेजता हूँ। उनकी आज्ञा होते ही आप अन्दर जा कर अपनी बहन से भेट कर सकेंगे।

भूपेन्द्र ने सोचा, अरे बाबा! फिर इत्तिला होगी। आज्ञा चाहिए। यह बडी ही कठिन जगह देखता हूँ।

इत्तिला हुई। हुक्म आया। आज दोपहर के बाद भूपेन्द्र अपनी बहन (कनकलता) से मिल सकता है।

भोजन के बाद भूपेन्द्र ने अपने सिर की भरॅर सी काली केशराशि को कघी से अच्छी तरह सवॉरा और उसके अग्रभाग को मेडे के सींग की तरह घुमा लिया। इसके बाद सब से बढ़िया बहारदार पजाबी कुरता पहना। उमदा रेशमी कोर की धोती, और कामदार जूता पहन कर वह तैयार हुआ। यह इसलिए कि भीतर प्रवेश करते समय शायद बहूजी भी देख लें।

यथासमय एक नौकर आकर भूपेन्द्र को बुला ले गया। अन्त पुर के फाटक तक पहुँचा कर उसने भूपेन्द्र को एक दासी के सिपुर्द कर दिया।

दासी ने भूपेन्द्र को दो-तीन बरामदों और कमरों के द्वार से ले जा कर एक सुसज्जित कमरे मे ठहरा कर के कहा—आप यहाँ बैठिए। मैं आप की बहन को बुला लाती हूँ।

भूपेन्द्र कमरे में बैठ कर चारों ओर ध्यान से देखने लगा यह बहूजी का वही दफ़्तर वाला कमरा था। कुछ देर बाद कनकलता आई।

भूपेन्द्र ने कहा—आओ कनक, कैसे हो?

भूपेन्द्र के पास एक कुरसी पर बैठ कर—"अच्छी तरह हूँ, आप कैसे है भैया?"—कह कर कनक मुस्कुराई। एक बार दरवाजे की ओर झॉक कर देखा। वहाँ कोई न था।

दोनों फुसुर फुसुर बातें करने लगे। भूपेन्द्र ने पूछा—तुम्हारी बहू जी कैसी है ?

"क्या कैसी ? मुखड़ा ? न एक टक निहारने योग्य, न नाक सिकोड़ने ही योग्य।"

"मैं मुखड़े की बात नहीं पूछता। बिलकुल भोली-भाली है या चतुर-चालाक है ?"

"नहीं, भोली-भाली नहीं, बड़ी चतुरा है। हम लोग जैसा पहले समझती थी कि देहात की स्त्रियाँ सब गोरू होती हैं, सो बात नहीं है।"

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—अच्छी बात है। अब यह बताओ, तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव करती है ?

"बहुत ही अच्छा। इतनी बड़ी धनवती होने पर भी धन का तनिक भी अभिमान नहीं है। वह स्वामिनी और मैं उसकी सेविका हूँ—यह उसके व्यवहार से नहीं समझा जाता। इन्हीं कई दिनों में उसके साथ मेरा विशेष हेल मेल हो गया है।

"कैसा हेल मेल हुआ, सुनूँ तो सही ?"

तब कनकलता ने अपने पहुँचने के समय से इस समय तक जो कुछ हुआ था, बहूजी के साथ उसकी जो बातें हुई थीं, सविस्तर वर्णन करके कहा—होशियार औरत है, स्वभाव भी बहुत अच्छा है। केवल रहन सहन साधारण है। जब मैंने उसे अपने हाथ में लिया है तब क्रमशः उसे फैशनेबल बना कर छोड़ूँगी।

"साधारण रहन-सहन कैसा क्या देखा ?"

"मैंने पहुँचते ही देखा, उसके बैठने उठने और आराम करने योग्य एक भी सजा हुआ कमरा नहीं है। खास कर सोने के लिए एक अलग कमरा तक नहीं। बूढ़ी सास के साथ एक ही कमरे में सोती है।"

भूपेन्द्र—ऐसा सोना तो अच्छा ।

कनक—जो हो, अपने बैठने के लिए खास कमरा तो होना जरूरी है। जितने कमरे हैं सब में हवेली की सभी स्त्रियाँ बेरोक आती जाती हैं । इसी से मैंने पिछवाड़े का एक कमरा पसन्द करके उसी को अच्छी तरह सजा कर बहू जी के बैठने योग्य बनाने का इरादा किया है।

भूपेन्द्र व्यङ्ग के स्वर में बोला—इसके लिए इत्तिला कर दी है? हुक्म पाया है? यहाँ इत्तिला किये बिना, हुक्म हासिल किये बिना, कुछ भी होने का नहीं ।

"हाँ, आज्ञा मिल चुकी है। बहू जी ने कहा है—'अच्छा, तुम फिहरिस्त बनाओ, मैं काका जी से कह कर कलकत्ते से सामान मँगा दूँगी। तुम मन-मानी वस्तुओं से घर सजाओ।' इसी से मैंने सजावट की सभी आवश्यक वस्तुओं का एक चिट्ठा तैयार किया है। यहाँ शौकीनी चीज एक भी देखने में नहीं आती। एक चीज है, सतयुग या त्रेता के समय का एक पुराना हार्मोनियम, वह भी टूटा हुआ, बेसुरा बजता है।"

"क्या वह हार्मोनियम बजाना जानती है?"

"अजी राम का नाम लो। 'सरिगम' भी नहीं जानती।

"गा सकती है?"

"हाँ कुछ कुछ। मैं तो जब से आई हूँ, रोज ही गाना सुनाती हूँ। कल मैंने उससे बड़ी जिद की। कहा—'आज आप को कोई गीत गाना ही होगा'। उसने कहा—'मैं तो तुम लोगों की तरह नये ढंग का गाना नहीं जानती, कुछ पुराने गीत जानती हूँ'। मैंने कहा—पुराने गीत क्या, निदरने की चीज है? गोसाई तुलसीदास, महात्मा सूरदास और भक्तप्रवर नागरीदास आदि की जैसी पदावली है, वैसे भाव

भरे मधुर गीत आज कल कहाँ पाये जाते हैं' ? आखिर गाया। कहने से आप विश्वास न करेंगे, एकदम राम वनयात्रा का गान।" यह कह कर कनकलता ने मुँह बनाया और सिर हिला कर वृद्ध जी की नकल कर गाने लगी—

"सुनो घनश्याम सोने की मृगी मुझ को पकड़ ला दो,
कहूं कर जोड़ कर प्यारे यही विनती हमारी है।"

गाकर मुँह में रुमाल लगा कर कनक हँसने लगी। बोली—"आप ही के पास हँसती हूँ, उसके पास हँसी को रोके रही किन्तु भाग्य से अभिनेत्री होने के कारण मैंने गाना सुन कर ऐसा भाव दिखलाया, मानो मैं मुग्ध हो गई हूँ। और कोई स्त्री होती तो हँसी नहीं रोक सकती।" यह कह कर कनक फिर मुँह बना कर गाने लगी—

'सुनो घनश्याम सोने की मृगी मुझ को पकड़ लाओ
कहूं कर जोड़ कर प्यारे यही विनती हमारी है।"

भूपेन्द्र ने मुस्कुरा कर कहा—तो सोने की हिरनी पकड़ कर लाने को कहा है ? तब तो खूब हेल मेल है।

दरवाजे की ओर चकित दृष्टि से देख कर कनक बहुत धीमे स्वर में बोली—अजी सुनते ही यह बात मेरे मन में आई थी। मैंने तभी मन में कहा था कि हरिणी ला सकूँ या नहीं परन्तु एक सोने का हरिण तुम को पकड़ कर ला देने की चेष्टा में हूँ। अब सोने के हरिण का भाग्य और मेरे हाथ का यश है।

दोनों हँसने लगे। भूपेन्द्र ने कहा—तुमने क्या गाया था ?

"मैंने पहले दो एक ब्रह्म-समाज के गीत गा कर सुनाये। सुन कर खुश हुई। कहने लगी, बहुत अच्छा गाया। इसके बाद सूरदास का पद गाया। सुन कर वाह वाह करने लगी। दूसरे दिन

मुझ से कहा—'थियेटर का गाना नहीं जानती?' मैंने कहा—हाँ, दो-चार वह भी जानती हूँ।"

भूपेन्द्र हँसते हँसते बोला—दो-चार से अधिक तो नहीं?

कनक कृत्रिम क्रोध का भाव दिखा कर बोली—आप मुझे बदनाम मत कीजिए। आप जानते ही हैं कि मैं एक धर्म-निष्ठा हिन्दू विधवा हूँ।

"जानता हूँ, तुम वैरागीटोले की भगनिन हो, इसके बाद?"

"हाँ, इसके बाद मैंने एक थियेटर का गाना गाया। 'प्यारे बिन जोवन बीता जाय।' यही गीत, जिस मतलब से गाया वह तो आप समझ ही गये होंगे। मेरा उद्देश था—चारा देकर एक वंसी फेंकती हूँ, देखूँ क्या होता है। साहब, गाना सुनते ही उसका चेहरा सुर्ख हो गया। वह सुस्त हो गई। मामला कुछ बेढब सा देख पड़ा। वह अप्रसन्न हो कर बोली—'यह गीत तुमने कहाँ सीखा?' मैंने सीधे तौर से कहा—'क्यों, थियेटर में। आप ही ने थियेटर का गीत गाने को कहा है। मैं बचपन में एक बार थियेटर देखने गई थी, वहीं सुन कर सीख लिया था।' वह बोली—'सुनती थी, थियेटर का गाना बहुत अच्छा होता है। यदि थियेटर का ऐसा ही निर्लज्ज गाना हो तो मेरे आगे अब वह मत गाना। छि थियेटर में यही गाना सुनने अच्छे घर की स्त्रियाँ जाती हैं!' मैंने कहा—'हाँ, और क्या करने जाती हैं।' बोली—'चूल्हे में जायँ। तुम एक अच्छा सा गीत गाओ, जिससे मेरे कान की तिताई दूर हो। तब मैंने गोसाँई तुलसीदास का पद गाया—'जाको प्रिय न राम-वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥' यह गान सुन कर बोली—'वाह, बहुत बढ़िया है। ऐसा ही गीत मुझे प्रिय लगता है।'"

भूपेन्द्र ने घड़ी खोल कर समय देखा। कहा—जो हो, हम

लोग जो सलाह करके आये थे उसका क्या हुआ ? वह जी से भेंट होना तो दूर रहा, एक बार परस्पर देखा-देखी तक नहीं हुई। उसने तो शायद छत पर से मुझे देखा होगा ?

"नहीं।"

"छत के ऊपर नहीं जाती ?"

"नहीं।"

"तुम जाने को नहीं कहती ? मैं नित्य शाम को टहलता रहता हूँ और सोचता हूँ कि तुम उसको लेकर छत पर आई होगी और मुझे दिखा दिया होगा।"

कनक ने हँस कर कहा—आपने बडतला के विद्यासुन्दर की मूर्ति का स्मरण करा दिया। वह मूर्त्ति मायाराम बढ़ई की बनाई हुई है। सखी के साथ 'विद्या' लटें खोले छत के ऊपर खड़ी है, और 'सुन्दर' चपकन पहिने, सिर पर पगड़ी दिये, एक गुलाब का फूल लिये नीचे खड़ा है। पास ही एक रथ है उसमें दो घोड़े जुते हुए हैं। अगले पैर चलने को जो उठाये सो अभी तक उठे हैं।

भूपेन्द्र हँसने लगा। बोला—मेरे चपकन भी नहीं, पगड़ी भी नहीं, और रथ भी नहीं। हो सिर्फ तुम्हीं एक मालिन मौसी, जो हो, कुछ उपाय तो करो।

"मुझे क्या खबर कि आप दिन भर इधर-उधर चक्कर काटते रहते हैं ! अच्छा, आज शाम को मैं वह जी को छत पर ले जाऊँगी। पर आप उसे न देख सकेंगे। मैं ऐसा प्रबंध करूँगी कि जिसमें कार्निस के छेद से वह जी आपको देख ले। किन्तु सावधान ! आप छत की ओर भूल कर भी न देखना। वैसा करने से वह जी के मन में सन्देह हो सकता है कि आदमी अच्छा नहीं है। स्त्रियों की छत की ओर क्यों देखता है !"

"अच्छा, मैं न देखूँगा।"

कनक कुछ देर चुपचाप बैठी रही। फिर बोली—मैंने एक और उपाय सोचा है।

"क्या, बतलाओ ?"

"अगर आप दो चार बार अन्दर आवें-जावेंगे तो किसी न किसी समय बहू जी की दृष्टि आप पर पड ही जावेगी। न होगा तो मैं एक काम करूँगी।" कह कर कनक भौंहें तान कर सोचने लगी।

नृपेन्द्र उसके मुँह की ओर देखता रहा। कनक ने कुछ सोच कर कहा—कल, इसी समय, एकाएक मैं मूर्छित होकर गिर पड़ूँगी। यह देख सभी लोग दौड कर मेरे पास आवेंगी। कोई मेरे मुँह और आँखों पर पानी छिड़केगी, कोई पखा झलेगी और मुझे होश में लाने के लिए अनेक प्रकार के यत्न करेगी। आखिर में आधी आँखें खोल कर क्षीण स्वर से कहूँगी—भैया—भैया—मेरे भैया कहाँ हैं? मेरे भैया को एक बार बुला दो। तब लोग आपको अवश्य ही बुला लावेंगे। उसके परसों नहीं, चौथे दिन फिर मैं बेहोश हो जाऊँगी और फिर आप को बुला लूँगी। फिर आपके जाने के दिन या जिस दिन आप जॉयगे उसके एक दिन पूर्व—आप मुझ से भेंट करने आवेंगे। बल्कि जाते समय आप किसी दासी से कहें—"मैं तो अब चला। मेरी बहन यहाँ रही। यह कभी घर छोड कर बाहर नहीं गई। अगर बहूजी का हुक्म हो तो परदे के बाहर खडा होकर मैं अपनी बहन के सम्बन्ध में दो-चार विनय वाक्य उनसे कह जाऊँ"। इस पर आप को अनुमति मिल जायगी। बहूजी जिस कमरे में रहेंगी उसके परदे के बाहर खडे होकर आप मेरी अपटुता के विषय में, मेरी बीमारी के बारे में या और किसी तरह की भूल-चूक के सम्बन्ध में विनय-पूर्ण

बातें कह जाना। इससे बहूजी के साथ आप की भेंट न होने पर भी कुछ परिचय हो जायगा। चिक के भीतर से आप का रूप देख कर, आप का कोमल-कण्ठ-स्वर सुन कर आप की नम्रता देख कर जरूर वह आप की ओर बहुत कुछ ढुल पड़ेगी। इसके बाद मैं देख लूँगी।

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—तुमने बड़ी अच्छी युक्ति सोची है। अच्छा यही सही। तीन बजते हैं। अब जाता हूँ। देर तक बैठने से लोग समझेंगे कि इन दोनों भाई-बहनों की बात समाप्त नहीं होती। न मालूम दोनों इतनी देर से क्या गपशप कर रहे हैं!

कनकलता खड़ी होकर बोली—तो जाइए।—हाँ, एक बात और कहे देती हूँ। यह कल रात को मैंने सोते समय सोचा है। आप कलकत्ते जाकर अपना एक उत्तम चित्र खिंचवा कर भेज दीजिएगा। बहूजी के लिए मैं जिस कमरे को सजाऊँगी उसमें और तसवीरों के साथ आप की भी तसवीर टाँग दूँगी। उससे भी कुछ काम निकल सकता है।

"अच्छा, भेज दूँगा। लो अब चला।"

कनकलता दासी को बुला लाई। उसके पीछे पीछे भूपेन्द्र अन्तःपुर से बाहर गया।

एक महीने बाद एक दिन सन्ध्या-समय अन्तःपुर के एक सुसज्जित कमरे में बहूजी कनकलता के साथ बैठी हैं।

इसी कमरे को बहूजी के विश्राम के लिए कनकलता ने अपनी पसन्द के मुताबिक सजाया है। दीवार पर कई एक प्राकृतिक दृश्य के विलायती चित्र और काशी, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों के मन्दिर तथा घाट आदि के मनोहर चित्र शोभा दे रहे हैं। उन सब के बीच रुपहले चौखटे के भीतर हैापसिङ्ग कम्पनी का बना हुआ एक सुन्दर फोटो ग्राफ—सोने के हरिण का चित्र—टँगा है। यह अन्तिम चित्र आने पर इस कोठरी में उसे टाँगने के लिए कनकलता ने जब बहूजी से आज्ञा माँगी थी तब पहले स्वीकृति नहीं मिली थी। कहा था—"तुम्हारे भैया का चित्र है—तुम अपने कमरे में इस चित्र को लटका दो।" इससे कनकलता अत्यन्त चोट खाकर बोली—'मैं दिन भर तो आप के पास इसी कमरे में रहूँगी—मुझे जो कमरा दिया है वहाँ तो सिर्फ रात में जाकर सा रहती हूँ। मैं रात के अँधेरे में भैया का चित्र क्या देखूँगी? यहाँ रहने से तो सारा दिन उन्हें देखती रहूँगी। मेरे माँ नहीं, बाप नहीं, भैया को छोड़ इस संसार में और मेरे है ही कौन?'—यह कहते कहते छद्मवेशधारिणी की आँखों में आँसू भर आये थे। तब बहूजी ने इसकी कपट-वेदना से व्यथित होकर वह चित्र टाँगने की अनुमति दी थी।

कमरे के भीतर मिरजापुरी गालीचा बिछा है। हरे रङ्ग की मखमल से मढ़ी हुई कई एक गद्दीदार कुर्सियाँ और आराम-कुरसियाँ इधर उधर पड़ी हैं। अमरीका का बना

एक बहुत बढ़िया नया हार्मोनियम आया है। वह पश्मीने की ज़मीन पर रेशम के कामदार आवरण से ढका हुआ है। एक आलमारी में अकारादि-क्रम से नम्बर देकर पुस्तकें रक्खी हुई हैं। उसमें कॉच के किवाड़ लगे हैं जिससे आलमारी के भीतर की सजी हुई जिल्ददार पुस्तकों के पृष्ठ भाग देखे जा रहे हैं। उनमें भाषा रामायण, महाभारत, पुराण, सटिप्पण सूरसागर और धर्म-शास्त्र के अतिरिक्त चुने चुने उपदेशप्रद हिन्दी भाषा के अनेक उपन्यास, काव्य, नाटक, जीवन-चरित्र और भ्रमण-वृत्तान्त की पुस्तकें हैं। पास ही एक टेबुल पर भिन्न भिन्न सचित्र मासिक पत्रिकायें अलग अलग रक्खी हैं। नित्य के पढ़ने की कई पुस्तकें भी एक ओर सजा कर रक्खी हुई हैं। खिड़की के पास चिट्ठी लिखने की डेस्क है। उसके भीतर अनेक रङ्ग के चिट्ठी लिखने के कागज और लिफाफे हैं। छत से लटकता हुआ एक बिल्लौरी झाड़ है। उसकी चारों शाखाओं में चार कॉच के गिलास हैं जिनमें मोमबत्ती बलती है। कमरे के मध्य भाग में नीले रेशम की झालर लगा हुआ एक खींचने का पखा लगा है। बाहर बैठ कर खींचने के लिए पङ्खे में सूत की डोरी लगी हुई है। यह कमरा अन्तःपुर के उस प्रान्त में है जिधर बागीचा है। बागीचे की ओर तीन खिड़कियाँ हैं जिनसे कमरे में सुगन्धयुक्त हवा बाग की ओर से आती रहती है। यहाँ बैठ कर गाने से भी प्रायः बाहर के कमरे में स्वर पहुँचने की कोई आशङ्का नहीं।

वह जो सफेद साड़ी और सादी अधबाँही पहनती हैं। लटें खुली रहती हैं। दो घड़ी दिन रहते गङ्गा-स्नान करती हैं। कनकलता का भी पहिनावा कुछ कुछ ऐसा ही है। केवल उसकी चोटी गुथी हुई थी।

खिडकी की राह से मन्द मन्द बयार आ रही थी। बहूजी ने कहा—किसी को कह दो कि नीचे जाकर पंखा बन्द करने के लिए कह आवे। कनक ने कहा—अभी खींचने न दीजिए, महीना लेता है, क्या मेहनत नहीं करेगा?

"पंखा खींचते खींचते बेचारे गरीब के हाथ दुखते होंगे। हवा तो बहुत बढ़िया आ रही है, अब ज़रूरत क्या है? जाओ, झल्लू की माँ से कहो, नीचे जाकर कह आवे।"

कनकलता यह अनुरोध पालन करने को बाध्य हुई। दो दिन के परिचय ही से उसने भूपेन्द्र से कहा था कि बहू जी तो मिट्टी की मूरत हैं। इस एक महीने में अब कनक को मालूम हो गया कि यह वर्णन ठीक न था। धन का अभिमान नहीं है इस ख़याल से बहू जी भले ही मिट्टी की मूर्ति हों, किन्तु उस मिट्टी की मूर्त्ति में यथेष्ट दृढ़ता है। बहू जी स्वयं भली भाँति सोच कर जो सिद्धान्त स्थिर कर लेती हैं उस सिद्धान्त से उन्हें कोई तिल भर भी नहीं हटा सकता। जब कोई हुक्म देती हैं तब वह विनीत अनुरोध की ही भाँति जान पड़ता है, परन्तु ऐसा सामर्थ्य किसी का नहीं जो उस अनुरोध की उपेक्षा कर सके।

शुक्ल पक्ष की दशमी का चन्द्रमा अपनी चटकीली चाँदनी से जल स्थल को प्लावित कर रहा है। पूर्व ओर की खिड़की से कुछ कुछ ज्योत्स्ना घर के भीतर आ रही है।

बहू जी ने कहा—कनक, आज बड़ी सुहावनी रात है, एक गीत तो गाओ।

कनक—कौन सा गीत गाऊँ?

"जो तुम्हारे मन आवे। रवि बाबू का एक बँगला गीत गाओ। तुम तो कलकत्ते में रह चुकी हो।"

"रवि बाबू का गीत? अच्छा।" कह कर कनक हार्मोनियम के पास गई। झाड की ओर देख कर बोली—बत्ती बुता दूँ? बत्ती का उजेला चन्द्रमा के प्रकाश का उपहास कर रहा है।

"बुता दो।"

बत्ती बुताते ही कमरे में फैली हुई चाँदनी मानो खिलखिला कर हँस उठी। हार्मोनियम के पास बैठ कर कनक ने गाया—

चाँद हासे! हासे!
हारा हृदय दुटि फिरे एसेछे।
कत दुःखे कत दूरे आँधार-सागर घूरे॥
सोनार तरणी दुटि तीरे एसेछे।
मिलन देखिते वल, फिरे वायु कुतूहले॥
चारि धारे फूल गुलि घिरे एसेछे।

गाना समाप्त होने पर कनक ने देखा, बहू जी बायें हाथ पर गाल रक्खे खिडकी के पास बैठी बाहर की ओर देख रही हैं। पास आकर कनक ने कहा—आप क्या सोच रही हैं?

बहूजी ने कहा—सोच रही हूँ कि यह गीत गाने से हम लोगों का क्या लाभ है? हमारी सोने की नाव तो कभी किनारे आने की नहीं। मेरी भी नहीं, तुम्हारी भी नहीं।

कनक एक ठण्डी साँस लेकर बोली—क्या जानें?

उसके उत्तर से बहूजी ने विस्मित हो कर कहा—सो क्या?

कनक चुप हो रही। कुछ देर में गहरी साँस लेकर बोली—"मैं बडी अभागिन हूँ।" उसका स्वर मानो विषाद से सना था।

सुन कर बहू जी ने करुण स्वर में कहा—क्यों क्या हुआ ?

कनक का मानो गला भर आया। वह चुप हो रही। बहूजी उसके आन्तरिक दुःख से दुखित हो कर बोलीं—आज तुम जब से कलकत्ते की चिट्ठी मिली है। तब से तुम उदास हो तुम्हारा भाई राजी खुशी तो है ?

"हाँ।"

"तो तुम्हारा जी इतना खराब क्यों हो गया ? मुझे बता में अगर तुम को कोई आपत्ति हो तो मत बतलाओ। कि यदि ऐसी कोई बात हो जिस का कुछ भी प्रतिकार मेरे हा हो सके, तो मैं यथासाध्य उसका प्रतीकार कर दूँगी।"

कनक ने कहा—भैया की चिट्ठी पाकर मैं एक विषम समस्या में पड़ गई हूँ। क्या करना चाहिए, मेरी अक्ल कुछ काम नहीं देती।

"क्या समस्या है ? मुझ से कहने में क्या कोई रुकावट है ?

"रुकावट कुछ नहीं। बल्कि भैया ने तो आप को जताने और आप से सम्मति लेने ही के लिए लिखा है। चिट्ठी ले आऊँ।"—कह कर कनक अपनी कोठरी से चिट्ठी ले आई। बत्ती जला कर चिट्ठी बहूजी को दी।

बहूजी ने चिट्ठी लेकर पहले कुछ टालमटोल किया। वह दूसरे का पत्र पढना नहीं चाहती थी। फिर चिट्ठी खोल कर पढने लगी। उसमें यह लिखा था—

कलकत्ता

वैशाख बदी १२

मेरी छोटी बहन,

"कल तुम्हारा पत्र मिला। तुम अच्छी तरह हो, बहूजी साहबा ने तुम को बड़े आदर-यत्न से रक्खा है। तुम्हें वह हृदय

सि चाहती हैं, यह सुन कर मैं प्रसन्न हुआ। क्यों न हो? वह मानवी नहीं, देवी हैं। तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हें उनके सदृश उदारहृदया, सुशिक्षिता सर्वगुणसम्पन्ना स्वामिनी का आश्रय मिला है। तुम को वे इतना प्यार करती हैं, इतना चाहती हैं, इसलिए मैं उनका कहाँ तक कृतज्ञ हूँ वह लिख कर बता नहीं सकता। मैं तो समझता हूँ कि पूर्वजन्म में उनसे हमारा कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे हमारी कोई परम आत्मीया थीं।

"मेरा पश्चिम जाना अब भी स्थिर नहीं हुआ। आजकल उधर बड़ी भयानक गरमी पड रही है। शुरु बरसात में कहीं जा रहूँगा।

"अच्छा, इस बात को अभी जाने दो। आज जिस कारण तुम को विशेष कर यह पत्र लिखने बैठा हूँ, वही अब कहता हूँ—

"मैं तुम को बाल्यावस्था से कितना चाहता हूँ यह तुम से छिपा नहीं। हम तुम दोनों बचपन में ही मातृहीन हुए—जब तुम सात वर्ष की थीं तभी तुम माँ को खो बैठीं। माँ के न रहने से तुम्हें किसी तरह का दुःख न हो इसलिए मैंने बाल्यकाल से ही अनेक प्रकार से तुम्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा की है। पिता जी जब संसार से विदा होने लगे तब वे तुम को मेरे ही हाथ सौंप गये थे। बड़े उत्साह के साथ मैंने तुम्हारा विवाह एक कुलीन घर में कर दिया था। किन्तु हम लोगों के दुर्भाग्य से तीन वर्ष बीतते न बीतते तुम विधवा हो गई। जब तुम वैधव्य का अमङ्गल रूप धारण कर मेरे घर आई तब मेरे हृदय में जो आग बल उठी थी वह अब भी नहीं बुझी है। वह दिन रात मेरे हृदय को जला रही है। मैंने जो अब तक विवाह नहीं किया, 'विवाह करने में जो मेरी

प्रवृत्ति नहीं होती—यही कारण शोक उसका प्रधान है। जब मैं तुम्हारा उदासी से भरा सूखा मुँह देखता हूँ सांसारिक सुख की स्पृहा मेरे मन से चली जाती है। परम स्नेह की पात्री छोटी बहन को वैधव्य की आग में देख कर क्या मैं विवाहित जीवन का सुख भोगने की इच्छा सकता हूँ ?

"ऐसी तरुण अवस्था में विधवा होने पर भी तुम पुनर्विवाह नहीं कर सकती, यह खोटा नियम भारतवर्ष को छोड और किसी भी सभ्य देश में नहीं है। हिन्दू शास्त्र में भी विधवा-विवाह का विधान स्पष्ट रूप से है; इस बात को विद्यासागर महाशय प्रभृति पण्डितों ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है। हाँ, यह केवल लोकाचार के विरुद्ध है किन्तु शास्त्रविरुद्ध नहीं। शास्त्र की आज्ञा लाँघने ही में अधर्म है। लोकाचार, जो शास्त्र-सम्मत नहीं वह, न मानने में कोई पाप नहीं। इसी से मेरा विशेष अनुरोध है—तुम विवाह कर लो। पहले पहल विधवा-विवाह होने से समाज में जैसे हलचल मच जाती थी, घर घर निन्दा होती थी—अब वह बात नहीं है। अब कितने ही बड़े बड़े आदमी जो धन में, मान-मर्यादा में, ज्ञान में समाज के शीर्ष स्थानीय हैं—उनमें भी कोई कोई अपनी विधवा लड़की का पुनर्विवाह करने लगे हैं। इसलिए अब हम लोग ही क्यों पीछे रहें ?

"यह प्रस्ताव मैं पहले भी तुम से कर चुका हूँ। किन्तु तुम यही कहती थीं कि ऐसा करने से धर्म हानि होगी। आज मैं डाक द्वारा तुम्हारे पास दो पुस्तकें भेजता हूँ। उन दोनों को पढ़ डालना। इसमें देखना कि हिन्दूशास्त्र ने पूरे तौर से विधवा विवाह का समर्थन किया है। जहाँ का आशय भली भाँति समझ में न आवे वहाँ बहूजी से पूछ लेना। वे बड़ी समझदार और

द्धिमती हैं। सब बातें अनायास ही तुम को अच्छी तरह समझा देंगी।

"हमारे महल्ले के वही सुशीलचन्द्र—जो बहुत दिनों से तुम्हारा पाणिग्रहण करने के लिए इच्छुक हैं—यह बात शायद तुम भी जानती हो, उनके सदृश उच्चाशय, सच्चरित्र, सुन्दर युवा पुरुष खोजने से भी जल्दी नहीं मिलेगा। मैं चाहता हूँ कि सुशीलचन्द्र से ही तुम्हारा विवाह हो जाय। वे तुम्हें हृदय से चाहते हैं। मैंने उनके किसी मित्र से सुना है—उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि यदि वे विवाह करेंगे तो तुम्हारे ही साथ नहीं तो दूसरा विवाह न करके आजीवन कौमार-व्रत धारण किये रहेंगे।

"बहन, अब भी तुम्हारी उम्र थोड़ी है। सारी जिन्दगी पड़ी है। झूठमूठ—एक भ्रान्ति-पूर्ण मत के अधीन हो कर ऐसे दुर्लभ जीवन को क्यों बरबाद कर रही हो? मूर्ख समाज की आँखों में चाहे जो हो, उस दयामय प्रेममय ईश्वर की दृष्टि में इस तरह वैधव्यजीवन बिताना महापाप है। सूखी धरती को सुख मय, शोभामय, और फल-पुष्पमय कर देने के लिए जिन्होंने नद-नदियों की सृष्टि की है—आकाश से अविरल वारिधारा बरसाने का नियम किया है—वे रसमय हृदय निवासी देवता मनुष्य पर कैसे प्रसन्न होंगे यदि वह अपनी जीवनभूमि को समाज-भय से अथवा अपने नीरस स्वभाव से मरुस्थल बना डाले?

"मेरी प्यारी बहन कनकलता, तुम मेरी बात मानो, ब्याह के लिए राजी हो जाओ। मैं तुम्हारे नवीन हृदय में फिर सुख की तरङ्ग उठते देख अपने जीवन को सार्थक करूँ। इसमें कोई दोष नहीं, कोई पाप नहीं। अगर मेरी बात का विश्वास

न हो तो तुम बहूजी से पूछ लेना। वे तुम को जिस चाहती हैं उससे वे कभी तुम को, अपनी खुशी से, जीवन मरुभूमि बना डालने की सलाह न देंगी। दोनों पुस्तकें पढ़ वे जरूर कहेंगी कि इस कार्य में कुछ भी दोष नहीं है। सलाह से ही तुम काम करो। वे बड़ी ही उदार-हृदया दयामयी हैं। वे तुम्हें ब्याह कर लेने ही का उपदेश देंगी।

"हम अच्छे हैं। बहू जी महाशया से सलाह कर के सम्मति मुझे लिखो। मैं प्यासे पपीहे की भाँति उत्तर प्रत्याशा में हूँ। इति

तुम्हारा एकमात्र भाई,
भूपेन्द्र।"

बहूजी जब पत्र पढ़ रही थीं तब कनक बीच बीच में उन चेहरे के उतार-चढ़ाव को देख रही थी। उसने देखा, उनके पर क्रमशः अप्रसन्नता का भाव छा गया। जब पत्र पढ़ तब उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, आँखों से क्रोध और घृणा टपकने लगी। कनक ने काँपते हुए हाथ से दोनों पुस्तकें उनके आगे रख कर कहा—यही पुस्तकें हैं।

बहूजी ने बड़ी अवज्ञा के साथ पत्र को नीचे डाल और पुस्तकों की ओर देख कर कहा—'यही किताबें हैं?' फिर उन्होंने दोनों पुस्तकों को उठा कर खिड़की की राह बगीचे की ओर गिरा दिया। इसके बाद वे दरवाजे की ओर चलीं।

कनक डर गई। बोली—कहाँ जाइएगा?

बहूजी ने नाक सिकोड़ कर कहा—गङ्गा-जल से हाथ धोने जा रही हूँ—मेरे हाथ अपवित्र हो गये हैं।



रात में बिछौने पर लेट कर बहूजी बड़ी देर तक सायकाल की घटना को मन ही मन सोचने लगीं—पृ० ११२

[८]

रात में बिछौने पर लेट कर बहू जी बड़ी देर तक सायकाल की घटना को मन ही मन सोचने लगीं।

उनके सोने का कमरा, पूर्व-वर्णित बैठक के बगल में ही था। दो ओर दो पलँग बिछे हुए थे—एक रत्नकला का और दूसरा उसकी सास कमला देवी का था। कमला अपने पलँग पर लेटी हुई हैं। तीनों खिड़कियाँ खुली हैं जिनसे मन्द मन्द ठण्डी हवा, और झिलमिलाती हुई चाँदनी घर के भीतर आ रही है।

रात के दस बजे ये दोनों लेटी थीं। अब ग्यारह बजे हैं। बहुत देर हुई, कमला देवी सो गई हैं, किन्तु रत्नकला को नींद नहीं आती। वह केवल यही सोच रही है—ओफ! आज मैंने कनक के साथ बड़ा ही कठोर व्यवहार किया है। इससे उसके हृदय में बड़ी कड़ी चोट लगी होगी।

रत्नकला जो आज एकाएक इतना क्रोध कर उठी—आपे से बाहर हो गई—इसके लिए वह क्षुब्ध, व्यथित और लज्जित है। इसका कारण भी उसने ढूँढ लिया है। कनक के भाई ने पत्र में जिस प्रस्ताव का उल्लेख किया था, उस प्रस्ताव के अन्तर्गत रत्नकला भी आती थी। वह भी इस घृणित मत का पोषण करेगी।—इसी कारण सहसा उसका क्रोध भड़क उठा था। क्षणिक उत्तेजना में आकर वह भूल गई थी कि सब मनुष्यों की शिक्षा-दीक्षा, आदर्श और आकांक्षा एक प्रकार की नहीं होती। यह संसार विचित्रताओं का घर है। अब उसने सोचा कि किसी के साथ मेरा मत न मिले तो मैं क्रोध से अन्धी हो जाऊँ—उसके सिर पर लाठी मारूँ—यह कोई बात नहीं।

सोचते सोचते रत्नकला को एक और गुरुतर कारण का

स्मरण हो आया। वह यही—कुछ दिन पहले से कनक के ऊपर से उसकी श्रद्धा हट गई थी। किसी विशेष व्यवहार के कारण नहीं—धीरे धीरे उसने इस बात पर लक्ष्य किया है कि कनक मन में अपने स्वर्गीय पति पर कुछ भी भक्ति या निष्ठा नहीं है। रत्नकला ने सुना है कि चौदह वर्ष की उम्र में कनक का विवाह हुआ था और तीन वर्ष तक ससुराल में रहने पर वह विधवा हुई थी। इस उम्र में जिस स्त्री ने तीन वर्ष तक पति के स रहने का सुयोग पाया है, उसे पति की चिर-वियोगावस्था में जिस भाव से रहना चाहिए उस भाव से वह नहीं रहती। साध्वी पतिव्रता हिन्दू रमणी का कुछ भी लक्षण उसमें नहीं पाया जाता। विधवा को तपस्विनी की तरह रहना चाहिए। तपस्विनी का एक भी मानसिक गुण कनक में नहीं है। खाने, पहिरने और अन्य आचरणों में कनक बाह्य पवित्रता और निष्ठा का कितना ही अभिनय क्यों न करे किन्तु भीतर जो असली वस्तु का अभाव है वह रत्नकला को लक्षित हो गया है। जब उसने सुना कि कनक को फिर ब्याह देने के लिए उसका भाई आग्रह कर रहा है और कनक का मन भी उस ओर कुछ ढल गया है, तब वह धैर्य न रख सकी, अधीर होकर कनक से जो नहीं कहना चाहि वही कह दिया।

घड़ी में साढ़े ग्यारह बज गये। सर्वत्र सन्नाटा छाया है सब लोग सो गये हैं। कनक की बात सोचते सोचते रत्नक को अपनी बात याद आई। उसका ध्यान अपनी जीव घटना की ओर आकृष्ट हुआ। वह मन ही मन उसके सा अपनी तुलना करने लगी। पहले पहल जब वह वधूवेश में इ घर में आई थी तब आठ वर्ष की बालिका थी। उसके पति उमर चौदह वर्ष की थी। सिर्फ सात दिन वह यहाँ रही थ

किन्तु इस एक सप्ताह में एक बार भी स्वामी का मुँह भली भाँति देखने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ—लज्जा से वह उनके मुँह की ओर नहीं देख सकती थी। सात दिन के भीतर स्वामी के साथ जो उसकी बातचीत हुई थी उसकी दो चार बातें अब भी उसे याद हैं—किन्तु स्वामी का मुँह कैसा था यह उसको स्मरण नहीं। नैहर लौट जाने के दो ही महीने बाद पति के लापता होने की खबर पहुँची। इसके बाद जब उसकी उम्र हुई और जब उसको भला-बुरा जानने का ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब से वह बराबर अपने गृहत्यागी पति के मुँह का स्मरण करने लगी। वह दिन-रात सोचती थी कि उनकी सूरत शकल कैसी थी, उनका चेहरा कैसा था। एक बार उनके दर्शन होते तो वह अपने मन कल्पित रूप से उन्हें मिलाती। जब तक यह आशा थी कि वे जीते हैं, एक दिन घर लौट आवेंगे, तब तक रत्नकला उन्हें सांसारिक मनुष्य के रूप में ही देखती थी। वह सोचती थी कि इसी कमरे में वे सोते थे, यहीं बैठ कर भोजन करते थे, यहीं पर वे पढ़ते लिखते थे, यहीं उन के पालतू कबूतर रहते थे। इसी बाग में उन्होंने एक दिन कुत्ते के पीछे, दौड़-धूप की थी। वे गङ्गास्नान करके बाग के इसी रास्ते से लौटते थे। क्रमशः जब वर्ष पर वर्ष बीत चला और उनका कोई पता न मिला तब सब हताश हो गये। जब तब माँ-बाप भी कहने लगे—मेरा बेटा अब इस दुनियाँ में नहीं है। होता तो क्या इतने दिन तक उसकी कोई खबर न मिलती? तब से रत्नकला समझने लगी है कि मेरे हृदय-मन्दिर में पतिरूपी दीपक का अब वह आशारूपी प्रकाश नहीं रहा, चारों ओर नैराश्य का अँधेरा छा गया है। तब से वह स्वामी को पार्थिव मनुष्य समझ उनके गुण रूप की कल्पना नहीं

करती। मानसिक दृष्टि से वह इस घर में और इस बाग में अब उनको न देखती थी—स्वर्ग में जहाँ देवता रहते हैं देहान्त होने पर पुण्यात्मा लोग जहाँ पहुँचते हैं तथा रामायण और महाभारत में जिस अमरावती पुरी का वर्णन है—वहीं पर उनको विराजमान देखती थी। उनका मस्तक प्रभापुञ्ज से चमकते हुए रत्न-किरीट से विभूषित है, सर्वाङ्ग से मानो सोचती कि—पवित्र कान्ति की छटा निकल रही है। वह सोचती कि वे सब सबेरे उठ कर आकाश-गङ्गा में स्नान करके नन्दनवन से पारिजात के फूल चुनते और वैकुण्ठ-लोक में जा कर लक्ष्मी देवी और नारायण के पैरों की पूजा किया करते हैं। मानो उसके पति उस देवलोक में उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब समय आवेगा, इस संसार से उसे छुट्टी मिलेगी, इस दीर्घ पति विरह का अन्त होगा, तब स्वामी अपने पुण्य-बल से उसे वहीं बुला लेंगे—वहीं दोनों की भेट होगी।

इस तरह स्वामी की बात सोचते सोचते रत्नकला तन्मय हो गई। कनकलता प्रभृति की बात एकदम मन से हट गई। उसके मन में विमल शान्ति का भाव विराजने लगा। धीरे धीरे उसकी पलकें लग गई। बगल वाली कोठरी की घड़ी में टन् टन् कर दो बजने पर रत्नकला ने चौंक कर आँख खोली। खिड़की की राह बाहर की ओर तजवीज कर के देखा तो दशमी का चन्द्रमा गङ्गा के उस पार वाले जङ्गल की ओट मे जा छिपा है। रत्नकला ने फिर आँखे बन्द कर लीं। फूलों की सुगन्ध से सनी बयार धीरे धीरे बाग से आकर उसके मुँह पर पङ्खे का काम करने लगी। रत्नकला अब निद्रा में निमग्न हो गई।

सबेरे नींद टूटने पर रत्नकला ने देखा कि और दिन की अपेक्षा आज उठने में कुछ विलम्ब हो गया है। सूर्य का उदय हो गया है

रत्नकला झटपट पलँग से उतरी और गंगा-स्नान के हेतु जाने के लिए तैयार होने लगी। दासी (झल्लू की माँ) आई। उससे रत्नकला ने पूछा—मालकिन कहाँ हैं ?

"स्नान करने गईं।"

"तुमने मुझ को क्यों नहीं जगा दिया ? आज एकादशी है। सूर्योदय से पहले स्नान नहीं हुआ।"

"माँजी ने मना किया था, कहा, अभी सोने दे, मत उठा।"

"माँजी के साथ कौन गई है ?"

"विमला ब्राह्मणी और कनकलता बहन।"

कनक का नाम सुनते ही रत्नकला का मुँह अप्रसन्न हो गया। फिर यह भी सोचा कि और दिन कनक मेरे ही साथ गङ्गा-स्नान करने जाती थी, आज पहले ही चली गई तो अच्छा ही हुआ।

इसी समय शशिकला धोती-गमछा आदि लिये बाहर के बरामदे से होकर जा रही थी। उसे जाते देख रत्नकला ने पुकारा। शशिकला दरवाजे के पास खड़ी हो गई और सकुच कर बोली—क्या है, बहू जी ?

"गङ्गा नहाने जा रही हो ? चलो, मैं भी चलती हूँ।"

गङ्गा में बह कर आने के दिन से आज तक बहू जी के साथ स्नान करने के लिए जाने का सौभाग्य शशिकला को प्राप्त नहीं हुआ था। अपना परिचय देने में उसे असम्मत देख रत्नकला, इच्छा रहते भी, उसके साथ विशेष वार्तालाप नहीं करती थी कि शायद वह बेचारी व्यर्थ सकोच करने लगे। उसके दुःख से रत्नकला यथार्थ में दुखी होती थी, परन्तु उसके दुःख को दूर करने का कोई उपाय भी उसके हाथ में न था। ख़ास कर यही उसके मनस्ताप का विषय था। फिर, रत्नकला का सदय स्नेह-पूर्ण व्यवहार होने पर भी शशिकला दूर ही दूर रहती थी। इस

मकान में उसके पैरों की आहट और कण्ठस्वर कोई संयोग से ही सुनता था। वह इस प्रकार दब कर चलती या बोलती जैसे कितने ही अपराधों का बोझ उसके सिर पर लदा हो आज रत्नकला के साथ नहाने को जाने के प्रस्ताव से मानो वह कृतार्थ हुई। बोली—आप के साथ चलूँ?

रत्नकला ने शशिकला के प्रति सहास्य कटाक्ष किया। शशिकला कुछ लजाती हुई मुस्करा कर बोली—"तुम्हारे साथ चलूँ?"

रत्नकला ने उससे आप न कह कर तुम कहने के लिए कई बार अनुरोध किया था, तो भी शशिकला कभी कभी भूल कर आप कह डालती थी।

"हाँ, चलो। आज हम दोनों एक साथ स्नान करने चलें। यह कह कर रत्नकला ने खिड़की की राह बागीचे की ओर देखा कि सास जी कनकलता के साथ नहा कर लौटी आ रही हैं।

दोनों ने सीढ़ी से नीचे उतर बाग़ का रास्ता लिया। कनकलता ने कहा—आज आप बहुत देर में उठीं।

रत्नकला—हाँ, आज कुछ देरी हो गई है।

"आज आप को देर होगी, यह जान कर ही मैं माँ जी के साथ हो ली।"

"अच्छा किया" कह कर रत्नकला मुसकुराई। किन्तु उस की यह मुसकुराहट कृत्रिम थी। कनक के प्रति रात्रि को उसे जो क्रोध हो गया था वह मन से दूर हो गया है, यही कनक को सूचित करना उसका उद्देश था। कल कनक को मानसिक कष्ट देने के कारण अब भी रत्नकला अनुतप्त है।

वस्त्र आदि लिये कनु की माँ घाट पर बैठी रही। ये दोनों स्नान करने के लिए नीचे उतरीं। प्रभातकालिक सूर्य की किरण

पड़ने से गङ्गा की लहराती हुई वारिधारा चमचमा रही है। प्रवाह के बीच से हो कर एक नाव जा रही है, मल्लाह गीत गा रहे हैं। आज रत्नकला देर तक स्नान करती रही।

रत्नकला ने नहाते समय शशिकला से आज बहुत बातें कीं। इतनी बातें शशिकला से उसने कभी न की थीं। उसने हँस कर पूछा—शशी, तुम तैरना जानती हो?

शशिकला—तैरना न जानती होती तो मैं आप "तुम" को कैसे पाती?

"तो क्या तुम तैर कर ही इस घाट पर आई थीं?"

"हाँ।"

अब रत्नकला को चेत हुआ कि इस प्रसङ्ग को छेड़ना अच्छा नहीं। इस प्रसङ्ग के आस पास शशिकला का व्यथा से परिपूर्ण हृदय है। बात को बदलने के लिए रत्नकला बोली—अच्छा शशी, यह तो बताओ, तुम रात में सपना भी देखती हो?

"हाँ, देखती तो हूँ।"

"नित्य देखती हो?"

"नहीं, कभी कभी।"

"अच्छा, तुम्हारा सपना कभी सच भी हुआ है?"

शशिकला ने कहा—पिछली रात का सपना प्राय सच्चा होता है। एक बार मेरा सच हुआ था।

"खुलासा कहो तो मैं भी सुन लूँ।"

"मैं एक बार जब अपने नैहर में थी तब दो घड़ी रात रहते स्वप्न देखा कि चिट्ठीरसा आ कर मेरे नाम की एक चिट्ठी दे गया है—चिट्ठी मेरे स्वामी ने भेजी थी। सो उसी दिन सचमुच चिट्ठी आई। पिछली रात का सपना सच निकला।"

रत्नकला चुपचाप गङ्गा के उस पार की ओर देखने लगी शशिकला ने कहा—तुम स्वप्न देखती हो ?

रत्नकला ने उसकी ओर मुँह फिरा कर कहा—कभी कभी मैंने सवेरे पहर आज एक सपना देखा है।

शशिकला—वह अवश्य फलेगा।

"सच्चा होगा—किन्तु तुम को जैसे शीघ्र फल मिल गया था—वैसे मुझ को तो मिलेगा नहीं। मुझ को विलम्ब से मिलेगा।"

"क्या सपना देखा है ?"

"कहूँगी। अभी नहीं—दोपहर को कहूँगी। तुम मेरी सब बातें सुन चुकी हो ?"

शशिकला ठण्ढी साँस लेकर बोली—"हाँ, सुन चुकी हूँ। भगवान् ने तुम को इतने गुण दिये हैं, इतनी बुद्धि दी है—इतना विपुल ऐश्वर्य दिया है—किन्तु उसके साथ साथ इतना दुःख क्यों दिया, यह मैं नहीं जानती। मुझ को जो दुःख दिया है उसका कारण है—अतएव इसे मैं उनका अविचार नहीं कह सकती। किन्तु तुम्हारे—"

रत्नकला ने बात काट कर कहा—नहीं सखी, मेरे साथ भी उन्होंने अविचार नहीं किया है। वे अविचार से किसी को कष्ट देंगे, यह सम्भव नहीं। वे बड़े ही न्यायी हैं। हम लोग जब दुःख पाती हैं तब उसका यथेष्ट कारण रहता है—अनेक अवसर पर हम लोग उसको नहीं समझतीं, नहीं जानतीं—यह दूसरी बात है। और यह भी निश्चय है कि इस ईश्वर-प्रदत्त दुःख का अन्तिम फल अच्छा ही होता है।

शशिकला विस्मित हो कर रत्नकला के मुँह की ओर देख

गिरा है ? यह कुट् कुट् शब्द कैसा है ! कोई चूहा काठ के बक्स को तो नहीं काट रहा है ?

फिर कुछ खड़खड़ाहट सुन पड़ी। फिर धीरे धीरे शब्द होने लगा, मानो कोई कुछ खा रहा हो। हो सकता है, अँधेरे में कनक के जलपान का लड्डू और रसगुल्ला लेकर चूहा फलाहार कर रहा हो। कनक को छोड़ तो इस कोठरी में और कोई है नहीं, और वह सिर-दर्द के मारे बेहोश पड़ी है। उस पर भी आज एकादशी का निर्जल उपवास है। कनक निष्ठावती विधवा है। इसलिए यह शब्द उसके लड्डू खाने का हो ही नहीं सकता। जान पड़ता है, चूहे को पकड़ कर बिल्ली चबा रही है।

फिर भी यह कैसा शब्द हुआ, मानो कोई कलसी से पानी ढाल रहा है ! अभी पानी कौन ढालेगा ? पानी ढालने का शब्द नहीं है तो बिल्ली जो सुख से सो रही है उसी की नाक बजने का शब्द है।

नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। कनक के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह करना नितान्त अमूलक है। लड्डू और रसगुल्ले तो तश्तरी में रख कर जलपान के लिए आज उसे कोई दे ही नहीं गया। और और दिन के जलपान से थोड़ा थोड़ा बचा कर क्या वह बक्स में रखती गई थी जो आज निकाल कर खा रही है। यह बात तो विश्वास के योग्य नहीं है।

कनक की चारपाई हिलने का शब्द हुआ। ओफ़, मालूम होता है, बेचारी का दर्द अभी तक नहीं हटा, इसी से छटपटा रही है। कनक की शिर पीड़ा क्या सहज ही हटने वाली है ?

चार बजने पर कनक जाग उठी। दरवाजे और खिड़की के किवाड़ खोल दिये। वह आँखें पोंछते पोंछते बाहर आई और भलू की माँ को देख कर पूछा—बहू जी कहाँ है ?

[६]

आज दोपहर से कनकलता के सिर में बड़ा दर्द है। एकादशी के दिन ही उसके सिर में पीड़ा होती है। रतकला को सिर दुखने की सूचना देकर वह छुट्टी ले आई। घर की खिड़की और दरवाज़ बन्द करके अँधेरे में दो-तीन घण्टे चुपचाप सो रहने पर उसका सिर दर्द हटता है। जब से वह यहाँ आई है तब से प्रति एकादशी को उसे ऐसा ही होता है। आश्चर्य क्या है? एकादशी तिथि से वातरोगी का वात बढ़ता है—और इसका कारण शरीर का रसस्थ होना बतलाया जाता है। मालूम होता है, कनक को भी वैसी ही पीड़ा है।

कनक अपने सोने की कोठरी में जा कर भीतर से द्वार और खिड़कियों को बन्द करके बिछौने पर लेट रही।

उसे चैन कहाँ? वह बार बार करवट बदलने लगी। सिर के दर्द में क्या मनुष्य को नींद आती है? इस करवट उस करवट करते करते प्राय एक घण्टा बीत गया। एक बजा। अब भी घर में लोगों का खाना-पीना समाप्त नहीं हुआ। अब भी बरामदे में लोगों का कण्ठ स्वर और जाने-आने की आहट सुनी जा रही है।

क्रमश शब्द कम हो गया। आध घण्टा और बीता। अब एकदम सन्नाटा खिंच गया। कहीं कुछ सुनाई नहीं देता। मालूम होता है, सब लोग खा पीकर विश्राम कर रहे हैं।

यह क्या? अन्धकार के भीतर कनक की कोठरी में कैसी आवाज़ है? मानो धीरे धीरे कोई चल रहा है? बिल्ली या चूहे तो घर में नहीं रेंग रहे हे?

अयँ! यह बक्स खोलने की आवाज है या ऊपर से कुछ

गिरा है ? यह कुट् कुट् शब्द कैसा है ! कोई चूहा काठ के बक्स को तो नहीं काट रहा है ?

फिर कुछ खड़खड़ाहट सुन पड़ी। फिर धीरे धीरे शब्द होने लगा, मानो कोई कुछ खा रहा हो। हो सकता है, अँधेरे में कनक के जलपान का लड्डू और रसगुल्ला लेकर चूहा फलाहार कर रहा हो। कनक को छोड़ तो इस कोठरी में और कोई है नहीं, और वह सिर-दर्द के मारे बेहोश पड़ी है। उस पर भी आज एकादशी का निर्जल उपवास है। कनक निष्ठावती विधवा है। इसलिए वह शब्द उसके लड्डू खाने का हो ही नहीं सकता। जान पड़ता है, चूहे को पकड़ कर बिल्ली चबा रही है।

फिर भी वह कैसा शब्द हुआ, मानो कोई कलसी से पानी ढाल रहा है ! अभी पानी कौन ढालेगा ? पानी ढालने का शब्द नहीं है तो बिल्ली जो सुख से सो रही है उसी की नाक बजने का शब्द है।

नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। कनक के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह करना नितान्त अमूलक है। लड्डू और रसगुल्ले तो तश्तरी में रख कर जलपान के लिए आज उसे कोई दे ही नहीं गया। और और दिन के जलपान से थोड़ा थोड़ा बचा कर पया वह बक्स में रखती गई थी जो आज निकाल कर खा रही है। यह बात तो विश्वास के योग्य नहीं है।

कनक की चारपाई हिलने का शब्द हुआ। ओफ़, मालूम होता है, बेचारी का दर्द अभी तक नहीं हटा, इसी से छटपटा रही है। कनक की शिर पीड़ा क्या सहज ही हटने वाली है ?

चार बजने पर कनक जाग उठी। दरवाजे और खिड़की के किवाड़ खोल दिये। वह आँखें पोंछते पोंछते बाहर आई और भलू की माँ को देख कर पूछा—वह जी कहाँ हैं ?

"वे बागीचे में मोलसिरी पेड़ के नीचे शीतलपाटी कि ठण्डक में बैठी हैं, महाभारत सुन रही हैं।"

"महाभारत सुन रही हैं? कौन पढ़ता है?"

"शशी।"

"वहाँ कोई और भी है?"

"और कोई नहीं। मैं कुछ देर तक वहीं थी। बहू जी ने मुझ से कहा—तू जा, अभी तेरा यहाँ पर कोई काम नहीं है।"

"कब गई है?"

"एक घण्टा हुआ होगा। हाँ, यह तो कहो कि तुम्हारे सिर का दर्द अच्छा हुआ?"

कनक सिर पकड़ कर बोली—हाँ, अच्छा हुआ है, पर बिलकुल नहीं। अभी कुछ कुछ है।

दासी अपने काम को चली गई। अब बाक्स से कागज कलम निकाल कर कनक अपने भाई को चिट्ठी लिखने बैठी।

झल्लू की माँ के चले जाने पर शशिकला ने कहा—बहू जी, क्या सपना देखा था सो मुझ से नहीं कहा। किसके विषय में देखा था ?

बहू जी तकिये पर भार दिये अर्धशायित अवस्था में थी। बोलीं—अपने स्वामी के विषय में।

"क्या देखा ?"

रतकला कहने लगी—"कल रात में किसी कारण मेरा जी कुछ खराब था। दस बजे माँ जी और मैं दोनो सोने गई। माँ जी को थोड़ी ही देर में नींद आ गई। वे अपने पलँग पर सो रहीं। किन्तु मुझे नींद नहीं आई। मैं बिछौने पर पड़ी हुई कितनी ही बातें सोचने लगी। क्रम क्रम से मुझे स्वामी का स्मरण हो आया। देर तक उनकी बात सोचते सोचते मेरा चित्त बहुत कुछ शान्त हुआ। इसी तरह सोचते-विचारते क्रमश बारह—एक—और फिर दो बज गये। इसके बाद मैं सो गई। स्वप्न देखा कि मैं पीली साड़ी पहिने हूँ, सारा अङ्ग गहनों से लदा है। मेरे माथे में किसी ने चन्दन रोली लगा दी है। विवाह-समय जैसी पोशाक आदि पहनी थी मानो वैसी ही स्वप्न में भी पहने एक घर में बैठी हूँ। मेरे चारों ओर छोटी बड़ी स्त्रियाँ बैठी हैं। उमङ्ग में आकर उनमें से कोई गाती है, कोई हँसती है और कोई कितने ही प्रकार के कौतुक करती है। साँझ हो गई है, घर में चिराग जल रहा है। इसी समय मानो बाहर हल्ला हुआ 'दूलह आया है—दूलह आया है'। बार बार बाजे बजने लगे।" यह कह कर रत्नकला चुप हो रही।

शशिकला बोली—इसके बाद ?

"इसके बाद नींद टूट गई। खिड़की से झाँक कर देखा—आसमान साफ हुआ चला आता था। पूरब में शुक्र तारे ज्योति जगमगा रही थी।"

शशिकला के चेहरे पर विषाद-मिश्रित हँसी का भाव विकसित हो उठा। उसने सिर झुकाकर—"बड़ा ही मधुर स्वप्न है" कह कर बहू जी के मुँह की ओर देखा। उनकी दृष्टि दूर आकाश की ओर थी, दोनो आँखों में आँसू भरे थे।

अपनी दृष्टि उसी ओर स्थिर रख कर रत्नकला बोली—"... ही मधुर स्वप्न है। इसमें सब से अच्छा मुझे क्या मालूम हुआ, सो तुमने जाना ?

"क्या ?"

"बाजे बजना। नित्य दोनों वेला बाजों का शब्द सुनती हूँ। किन्तु स्वप्न में जैसा सुना वैसा मधुर शब्द इस जीवन में और कभी नहीं सुना। उस शब्द ने मानो मेरे कान में अमृत ढाल दिया है।"

नीची नजर करके शशिकला सोचने लगी। फिर एक नैराश्य की साँस लेकर बोली—यह स्वप्न अब क्योंकर सत्य होगा ?

रत्नकला—होगा क्यों नहीं ? परन्तु इस जन्म में नहीं। इसी से तो मैंने सबेरे तुम से कहा था कि मेरा स्वप्न शीघ्र नहीं फलेगा—विलम्ब से फलेगा। इस जन्म में इस का फल नहीं मिला।

"तो कब ? दूसरे जन्म में ?"

"नहीं, इतने विलम्ब से क्यों ? अजी परलोक में जहाँ मेरे स्वामी है वहीं, स्वर्ग में। यद्यपि मेरे पास स्वर्ग जाने की पूँजी नहीं है तो भी वे मुझे वहाँ अवश्य बुला लेंगे। जिन्होंने प्रतिज्ञा करके मेरा हाथ पकड़ा है, क्या वे कभी मुझे छोड़ सकते हैं ? मैं जब वहाँ जाऊँगी तब वहाँ की रीति के अनुसार

फिर मेरा विवाह उनके साथ होगा। मैं दुलहिन बनूँगी, वे दूलह बन कर ब्याहने आवेंगे। शङ्ख बजेगा, बाजे बजेंगे—सब कुछ इसी प्रकार होगा।"

शशिकला ने देखा कि कुछ देर पहले रत्नकला ने जिस निशान्तकालिक शुक्र तारे का वर्णन किया था उसी की भाँति बहू जी का मुँह भी पुनर्मिलन की आशा और आनन्द से चमक रहा है। वह चकित होकर चुपचाप इस पतिव्रता के मुख की अपूर्व ज्योति को देखने लगी।

जरा चुप रह कर रत्नकला ने कहा—अगर ऐसा होने को न होता तो उस शङ्ख और बाजों का शब्द इतना मधुर क्यों सुन पड़ता। वह हम लोगों का मामूली शङ्ख नहीं था। मालूम होता है, वह स्वर्गीय शङ्ख था, इसी से ऐसा मधुर था।

"यही हो। ईश्वर तुम्हारे इस कथन को सत्य करें। मुझे भी आशीर्वाद दो जिसमें एक दिन मेरा भी ऐसा ही सौभाग्य हो।" यह कह कर शशिकला ने बहू जी के चरणों की रज ली। उसके करस्पर्श से बहू जी की समाधि टूटी। वह फिर इस मिट्टी के संसार में लौट आईं। व्यस्त होकर बोलीं—यह क्या करती हो, पैरों में हाथ क्यों लगाती हो?

शशिकला—मैं अपनी जीवन कहानी भी तुमको किसी दिन सुनाऊँगी। मैं तुम्हारे पैरों की धूलि लेने योग्य भी नहीं हूँ।

कुछ समय तक दोनों चुपचाप बैठी रहीं। फिर बहू जी महाभारत की पोथी लेकर उसके पत्रों को उलट पलट कर देखने लगीं। उन्होंने कहा—महाभारत का पाठ तो हुआ ही नहीं।

शशिकला—कहो, किस जगह से पढ़ूँ?

रत्नकला ने वनपर्व खोल कर कहा—दमयन्ती का स्वयंवर पढ़ो।

"इसके बाद नींद टूट गई। खिड़की से झाँक कर देखा—आसमान साफ हुआ चला आता था। पूरब में शुक्र तारे की ज्योति जगमगा रही थी।"

शशिकला के चेहरे पर विषाद-मिश्रित हँसी का भाव विकसित हो उठा। उसने सिर झुकाकर—"बड़ा ही मधुर स्वप्न" कह कर बहू जी के मुँह की ओर देखा। उनकी दृष्टि दूर आकाश की ओर थी, दोनो आँखों में आँसू भरे थे।

अपनी दृष्टि उसी ओर स्थिर रख कर रत्नकला बोली—बड़ा ही मधुर स्वप्न है। इसमें सब से अच्छा मुझे क्या मालूम हुआ, सो तुमने जाना?

"क्या?"

"बाजे बजना। नित्य दोनों बेला बाजो का शब्द सुनती हूँ। किन्तु स्वप्न में जैसा सुना वैसा मधुर शब्द इस जीवन में और कभी नहीं सुना। उस शब्द ने मानो मेरे कान में अमृत ढाल दिया है।"

नीची नजर करके शशिकला सोचने लगी। फिर एक नैराश्य की साँस लेकर बोली—यह स्वप्न अब क्योंकर सत्य होगा?

रत्नकला—होगा क्यों नहीं? परन्तु इस जन्म में नहीं। इसी से तो मैंने सवेरे तुम से कहा था कि मेरा स्वप्न शीघ्र नहीं फलेगा—विलम्ब से फलेगा। इस जन्म में इस का फल नहीं मिला

"तो कब? दूसरे जन्म में?"

"नहीं, इतने विलम्ब से क्यों? अजी परलोक में जहाँ मेरे स्वामी है वहीं, स्वर्ग में। यद्यपि मेरे पास स्वर्ग जाने की पूँजी नहीं है तो भी वे मुझे वहाँ अवश्य बुला लेंगे। जिन्होंने प्रतिज्ञा करके मेरा हाथ पकड़ा है, क्या वे कभी मुझे छोड़ सकते हैं? मैं जब वहाँ जाऊँगी तब वहाँ की रीति के अनुसार

फिर मेरा विवाह उनके साथ होगा। मैं दुलहिन बनूँगी, वे दूलह बन कर व्याहने आवेंगे। शङ्ख बजेगा, बाजे बजेंगे—सब कुछ इसी प्रकार होगा।"

शशिकला ने देखा कि कुछ देर पहले रत्नकला ने जिस निशान्तकालिक शुक्र तारे का वर्णन किया था उसी की भाँति बहू जी का मुँह भी पुनर्मिलन की आशा और आनन्द से चमक रहा है। वह चकित होकर चुपचाप इस पतिव्रता के मुख की अपूर्व ज्योति को देखने लगी।

ज़रा चुप रह कर रत्नकला ने कहा—अगर ऐसा होने को न होता तो उस शङ्ख और बाजों का शब्द इतना मधुर क्यों सुन पड़ता। वह हम लोगों का मामूली शङ्ख नहीं था। मालूम होता है, वह स्वर्गीय शङ्ख था, इसी से ऐसा मधुर था।

"यही हो। ईश्वर तुम्हारे इस कथन को सत्य करें। मुझे भी आशीर्वाद दो जिसमें एक दिन मेरा भी ऐसा ही सौभाग्य हो।" यह कह कर शशिकला ने बहू जी के चरणों की रज ली। उसके करस्पर्श से बहू जी की समाधि टूटी। वह फिर इस मिट्टी के संसार में लौट आई। व्यस्त होकर बोली—यह क्या करती हो, पैरों में हाथ क्यों लगाती हो?

शशिकला—मैं अपनी जीवन कहानी भी तुमको किसी दिन सुनाऊँगी। मैं तुम्हारे पैरों की धूलि लेने योग्य भी नहीं हूँ।

कुछ समय तक दोनों चुपचाप बैठी रहीं। फिर बहू जी महाभारत की पोथी लेकर उसके पत्रों को उलट पलट कर देखने लगीं। उन्होंने कहा—महाभारत का पाठ तो हुआ ही नहीं।

शशिकला—कहो, किस जगह से पढ़ूँ?

रत्नकला ने वनपर्व खोल कर कहा—दमयन्ती का स्वयंवर पढ़ो।

शशिकला पढ़ने लगी। क्रमशः सूर्यदेव पश्चिम आका में नीचे को ढल गये। धीरे धीरे सूर्य की किरणों से पश्चि दिशा का आकाश लाल हो गया। सूर्यास्त होने में अब अधि विलम्ब नहीं है।

इसी समय एक अध्याय समाप्त हुआ। इसके साथ ही महल के भीतर शोर-गुल और आनन्द-ध्वनि होती सुन पड़ी।

रत्नकला और शशिकला दोनों ही ने कान खड़े करके उस ओर देखा। इतने में बारबार शङ्ख-ध्वनि होने लगी, बाजे बजन लगे। दोनो बड़े आश्चर्य से परस्पर एक दूसरी का मुँह देख कर खड़ी हुई। महाभारत की पोथी हाथ में लिये रत्नकला जल्द जल्दी पैर उठाती हुई महल की ओर रवाना हुई। शशिकल उसके पीछे पीछे चली।

आँगन में पहुँचते ही झल्लू की माँ दौड़ कर आई अ असम्बद्ध भाव से बोली—"बहू जी, ए बहू जी—मैंने जो कहा थ वही हुआ। झल्लू की माँ और सब कुछ जानती है परन्तु य नहीं जानती कि मरेगी कब। कंगाल की बात भी सच होने मीठी लगती है। मुझ से न सुनोगी तो मत सुनो। पाँच आदमियों के मुँह से सुन लेना। बोलो, अब मुझे क्या इनाम दोगी? दे दो। तब तो मेरी बात की किसी ने परवा भी नहीं की। मैं नीच जाति की स्त्री हूँ इसी से—"

इतने में एक सुहागिन स्त्री हाथ में सिन्दूर की डिबिय लिये दौड़ी आई। वह हाँफते हाँफते बोली—"बड़े बाबू जीते जागते भले चङ्गे हैं—चिट्ठी आई है।" यह कहते कहते वह काँपते हुए हाथ से बहू जी की माँग मे सेंदुर लगाने लगी।

बहू जी भी खड़ी होकर नदी के स्रोत में पड़े बेंत की तरह काँप रही थीं। शशिकला झपट कर उन्हें न थाम लेत

तो वे वहीं धड़ाम से नीचे गिर पड़तीं और चोट खाजातीं। दोनों स्त्रियाँ उनके चैतन्य रहित शरीर को पकड़ कर आगे ले चलीं।

झल्लू की माँ का उस ओर ध्यान ही न था। वह कमर में कपड़ा लपेट कर रण रङ्ग में उमङ्ग से नाचती हुई कहने लगी—मैंने कहा था न? एक दो बार नहीं हजार बार कहा था। किसी ने नहीं सुना। कङ्गाल की बात कौन सुनेगा, किसे अच्छा लगेगा? अब मेरा श्राद्ध कर दो, मेरा मुँह झौंस दो। मेरी बात अब भी मानोगी या नहीं? अब न मानोगी तो मैं अपना सिर फोड़ लूँगी। दो, अब जो कुछ देना हो दे दो। मैं बखशीश लिये बिना नहीं छोड़ूँगी।

तीसरा भाग

[१]

सुन्दरपुर स्टेशन में गोपाल की नौकरी की मियाद पूर्ण ह
गई। नौकर और रसोइया की तनख्वाह देकर और बाजार
देना बेबाक कर गोपाल ने अपनी चीज-वस्तु बाँधी और इष्ट मि
से मिल भेट कर पश्चिम जाने वाली गाडी की शरण ली
गोपाल की गाडी के पास खडे हो कर स्टेशन-मास्टर ने बडे प्रे
से कहा—घर जाने समय तो आप इसी रास्ते से जायँगे ? त
यहाँ उतर कर, स्नान भोजन करके जाना।

गोपाल ने कहा—"अगर जीता रहा तो आऊँगा।" गा
रवाना हो गई।

गोपाल ने खिडकी के पास बैठकर मन में कहा—अ
जीवित रहूँगा तभी न उतर कर मुलाकात करता जाऊँगा। कि
जीता रहूँ तब तो ? गोपालचन्द्र चौबे का जीवन अब है कित
देर तक ? इन्हीं कई स्टेशनों में जान पहचान के लोग हैं। उ
भेंट होगी। भेंट होते ही वे मेरा नाम—गोपाल—लेकर पुकारें
मोगलसराय स्टेशन के बाद और कोई परिचित नहीं मिलेग
मोगलसराय पार होते ही मेरा पुनर्जन्म हो जायगा। तब मैं
मदनपुर गाँव का अभागा गोपालचन्द्र चौबे नहीं—बल्कि नदिया
जिले की वासुदेवपुर रियासत का प्रबलप्रतापान्वित जमींदार
श्री भवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती हो जाऊँगा। सालाना लाख रुपये की
मेरी आमदनी होगी। इस दुनिया से गोपालचन्द्र का नाम कुछ
ही घण्टों के बाद लुप्त हो जायगा।

गाडी चलने लगी। पैसिञ्जर गाडी है—हरेक स्टेशन पर ठहर ठहर कर जा रही है। कोई स्टेशन ऐसा नहीं जहाँ गोपाल का एक आध परिचित व्यक्ति न हो। स्टेशन-मास्टर, छोटे बाबू, तारबाबू प्रभृति आकर पूछने लगे—"गोपाल बाबू, कैसे हो? हाँ, कहो तो, क्या हुआ था जो नौकरी चली गई! ओफ्! हम लोग सुन कर बडे दुखी हुए। अच्छा, गई तो जाने दीजिए, सभी लाइनों में एक एक दरख्वास्त भेज दीजिए—फिर कहीं नौकरी मिल जायगी—" इत्यादि बातें होने लगीं। किसी किसी स्टेशन के बाबुओं को गोपाल की नौकरी छूटने का हाल मालूम न था। वे आकर पूछने लगे—"कहिए गोपाल बाबू, कहाँ जा रहे हैं? तबदीली हो गई या छुट्टी पर कहीं जा रहे हैं?" इत्यादि प्रश्न करने पर जब उन्हें असली बात मालूम हुई तब वे लोग खेद प्रकट करके कहने लगे—"अरे! बरतरफ हो गये! हम लोगों ने तो कुछ सुना नहीं! बडे अफसोस की बात है! रेल की नौकरी क्या है, कमल-पत्र का जल है। रही तो रही न रही तो न रही। न नौकरी लगते देर लगती है, न जाते ही।"

गाडी खुल जाने पर गोपाल मन ही मन हँसता और अपने भविष्यत् के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पना करता था। चला तो था वह काशी जाने ही के उद्देश से, परन्तु अब उसने पहले इलाहाबाद जाने की ठानी। मोगलसराय स्टेशन में गाडी ठहरने पर सामान को एक मुसाफिर के भरोसे छोडकर उसने काशी का 'पास' स्टेशन-मास्टर को दिया और टिकटघर से इलाहाबाद का टिकट खरीद लिया।

दूसरे दिन सबेरे इलाहाबाद पहुँच कर गोपाल एक धर्मशाला में जा टिका स्टेशन से पण्डों का झुण्ड उसके पीछे दौडा। गोपाल उनसे स्पष्ट कहने लगा कि मैं तीर्थ करने नहीं आया;

मैं तो शहर देखने आया हूँ। पण्डे-पुरोहित का कोई काम नहीं, तो भी उन लोगों ने पिण्ड न छोड़ा। बड़ी बड़ी मुश्किल से गोपाल ने उन लोगों से अपना पीछा छुड़ाया। केवल एक व्यक्ति किसी भी तरह नहीं गया। उसने कहा—"मेरा नाम एकबोलिया पण्डा है। मैं एक बार जो बात कह दूँगा, उसमें फिर अन्यथा होने का नहीं। बङ्गाले से लेकर युक्तप्रदेश तक प्राय. सभी जिलों के बड़े बड़े आदमी मेरा नाम जानते हैं। यह देखिए बाबू, मेरा सार्टीफिकेट है"। यह कह कर उसने हिन्दी में छपा एक विज्ञापन गोपाल को दिया। उसे पढ़ कर गोपाल ने जाना कि एकबोलिया महाराज कलियुग का दूसरा युधिष्ठिर है। भारत में उसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती। किसी जगह से उसे टेलीग्राम (तार) देना हो तो सिर्फ "एकबोलिया, इलाहाबाद" लिखना काफी है। तार वेखटके पहुँच जायगा। कितने ही लोग विज्ञापन में यह बात पढ़ कर सोचते हैं कि एकबोलिया महाराज साधारण मनुष्य नहीं है। यह सरकार का परिचित व्यक्ति है—पण्डों का ध्रुवतारा है। किन्तु गोपाल के पास यह चालाकी नहीं चली। वह जानता था कि छमाही पाँच रुपया फीस देने ही से तारघर में सांकेतिक ठिकाने की रजिस्टरी हो जाती है। विज्ञापन पढ़ने पर भी जब गोपाल का मन नहीं पिघला तब पण्डा कहने लगा—बाबू, आप हिन्दू हैं—हिन्दू धर्म को जानते हैं, प्रयाग में सिर्फ शहर देखकर चले जायँगे, यह कोई बात नहीं। शास्त्र में लिखा है —

यावन्तिनखलोमानि पतन्ति विमले जले।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

फिर भी —

किं गयापिण्डदानेन प्रयागे मुण्डन यदि ॥

यहाँ से यदि सिर मुँडा कर जाय तो फिर कुछ चिन्ता न रहेगी। मृत्यु कहीं भी क्यों न हो आपके लिए वैकुण्ठ का द्वार खुला रहेगा। देश में हो, विदेश में हो—जङ्गल में, या पहाड़ में—

गोपाल ने बात काट कर कहा—मगध में हो तो ?

पण्डा—हाँ, यदि मगध में भी आपकी मृत्यु होगी तो भी वैकुण्ठवास होगा। शास्त्र में लिखा है। शास्त्र की बात क्या झूठ हो सकती है ? मैं गाड़ी लाता हूँ, आप वेणी घाट पर चलें, जो कुछ क्रिया-कर्म वहाँ करना चाहिए मैं आपको करा दूँगा। अधिक नहीं, सिर्फ सवा पाँच रुपया खर्च होगा। बस, एक बात पाँच रुपये चार आने। अगर मैं आप से पाँच रुपये सवा चार आने माँगूँ तो आप कहना, तुम एकबोलिया महाराज नहीं, और मेरे दोनों कान पकड़ कर दोनों गालों में थप्पड़ मारना।

सोच विचार कर गोपाल ने कहा—अच्छा, गाड़ी ले आओ।

गाड़ी आने पर गोपाल एक कोठरी में अपना सब सामान रखकर वेणी घाट को रवाना हुआ। एकबोलिया भी उनके साथ गाड़ी में एक ओर बैठ गया। उसने रास्ते में प्रयाग के माहात्म्य और अपनी बड़ाई का वर्णन विशेष रूप से किया। किन्तु उस बात पर गोपाल ने विशेष ध्यान नहीं दिया। वह सोच रहा था कि सिर मुँडा कर कल ही गेरुआ वस्त्र धारण करना होगा। तब शायद परिचित लोग मुझे एकाएक पहचान न सकेंगे।

सिर मुँडाने और स्नान तर्पण आदि कर्म करने में सवा पाँच रुपये की जगह गोपाल के छः सात रुपये खर्च हो गये। धर्मशाला को लौट आने पर एकबोलिया ने कहा—बाबू, अब मुझे जो कुछ दक्षिणा देनी हो, दीजिए।

गोपाल—तुमनें कहा था, सवा पाँच रुपये से एक पैसा भी अधिक नहीं लगेगा। सो उसकी जगह सात रुपये के . खर्च करा दिये। अब फिर दक्षिणा माँगते हो? तुम्हारी 'एक बात' कहाँ गई?

पण्डा विनय पूर्ण हँसी हँस कर बोला—मन में तो यही रहता है कि एक ही बात पर स्थिर रहूँ किन्तु यह पापी पेट नहीं मानता। इस जले पेट के कारण दो बातें हो जाती हैं।

गोपाल ने मन में कहा—"मित्र, संसार में तुम्हीं एक ऐसे नहीं हो, पेट के कारण कितने ही लोग बात बदल डालते हैं।" फिर उसने हँस कर दो रुपये पण्डाजी के हाथ में रख दिये। वह हँसी खुशी से अपने घर को विदा हुआ।

रात भर गाड़ी में रहने का कष्ट, उस पर फिर सवेरे से एक बजे तक घूमना-फिरना—इस कारण गोपाल थक कर बिछौने पर लेट गया। धर्मशाला के एक नौकर के द्वारा बाजार से कुछ खाने के लिए मँगाया। खा-पीकर गोपाल सो रहा।

तीन बजे के बाद नींद टूटने पर गोपाल झटपट उठा और गाड़ी मँगाकर बाजार गया। तहमत के लिए एक थान मलमल, चार अँगरखों के उपयुक्त धुला हुआ नैनसुख, दो विलायती कम्बल और एक सादा अलवान मोल लिया। अँगरखा और ढीला-ढाला कुर्ता सीने के लिए दरजी के यहाँ कपड़े ब्योतवा कर गोपाल धर्मशाला को लौट आया। तब साँझ हो गई थी।

दूसरे दिन सवेरे उठ कर हाथ मुँह धोने के बाद रामशरण टहलू को बुला कर गोपाल ने कहा—यहाँ कहीं प— मिलेगी?

"जी हाँ।"

"पैसे देता हूँ, गेरू लाकर तुम मेरे इन नये कपडों को रँग दोगे ?"

"जी हाँ। परन्तु आप रँगावेंगे किस लिए ?"

"मैं अब सफेद कपडे न पहिरूँगा। मे गृहस्थाश्रम को त्याग कर सन्यासी हूँगा।"

रामशरण इस बात से विस्मित होकर गोपाल का मुँह देखने लगा। कल ही से वह लक्ष्य कर रहा है, इस बाबू का खर्च-वर्च, खैरात-बखशीश आदि इसकी उदारता का अच्छा परिचय दे रहा है। रामशरण जानता है कि जिसे खाने को नहीं मिलता वही सन्यासी होता है। सन्यासी होने से भिक्षा माँगने को रास्ता खुल जाता है। तो क्या यह बाबू भीख माँगने ही के लिए सन्यासी होगा ? इसके पास तो धन की कमी नहीं देख पडती। तब यह सन्यासी होने क्यों जा रहा है ? इस पर ऐसी क्या विपत्ति आ पडी है ? यही सब वह मन में सोचने लगा। उसको चुप देखकर गोपाल ने "तो कै पैसे की गेरू लगेगी ?" कह कर एक अधेली उसके आगे फेंक दी।

रामशरण ने करुण स्वर में कहा—बाबू, आप घर छोड कर बाबाजी होगे—आपके बाल बच्चो की क्या दशा होगी ?

गोपाल ने मुस्कुराकर कहा—मेरे लडके वाले नहीं है।

"आपके घर में ?"

"वह भी नहीं।"

"माँ-बाप ?"

"दुनियाँ से चल बसे।"

"भाई-बहन ?"

"कोई भी नहीं। मे सन्यासी होकर तीर्थ तीर्थ घूमूँ-फिरूँगा और भगवान् का भजन करूँगा।"

यह सुनने से रामशरण के मन को मानों बडी सान्त्वना मिली। उसने कहा—"हाँ बाबू, तब तो आपने यह अच्छी बात सोची है। किन्तु गेरू मिट्टी में कपडे रँगना ठीक न होगा। रामरज में रँगाइए। वही रङ्ग अच्छा होगा। होगा तो गेरुआ ही किन्तु उसके साथ साथ कुछ पीलापन रहेगा। रामरज में आपके सभी कपडे और अलवान रँग दूँगा।" कह कर रामशरण ने अधेली उठा ली।

गोपाल—अच्छा तो इन कपडों को आज ही रँग दो। ज्यादा रङ्ग ले आना जिसमें कपडों पर खूब गाढा रङ्ग चढ़े। आज शाम को दरजी कुछ कुरते सीकर दे जायगा—कल वे भी रँग देना। अच्छा, एक और काम है। एक रसोइया ब्राह्मण ला सकते हो? आज दाल-भात खाने को जी चाहता है। कई दिन से पूरियाँ खा रहा हूँ।

"ब्राह्मण यहीं है, मैं अभी बुला देता हूँ।" यह कह कर रामशरण ब्राह्मण की खोज में गया।

इलाहाबाद में दो दिन रहकर गोपाल ने रँगे हुए नये वस्त्र धारण किये और काशी की यात्रा की। कुछ पुराने कपडे और बिछौने आदि रामशरण ने लिये और कुछ धर्मशाला के अन्यान्य नौकरों ने आपस में बाँट लिये।

---

[२]

काशी स्टेशन पर किसी पण्डे ने गोपाल को, प्रयाग के पण्डों की भाँति, नहीं सताया। उसका मुडा हुआ सिर और गेरुआ वस्त्र देखकर कितने ही लोग उसे प्रणाम करने लगे।'

किराये की गाड़ी करके गोपाल दशाश्वमेध घाट पर पहुँचा। वह जानता था कि वहाँ यात्रियों के लिए कितने ही घर खाली पडे रहते हैं। वहीं उसने खोज कर किराये पर एक मकान ले लिया। गोपाल की इच्छा अभी दो-एक महीने काशी में रहने की थी। यहाँ रह कर उसे नवीन जीवन के लिए तैयार होना पडेगा। सिर्फ यहीं कहने से काम न बनेगा कि 'मैं सोलह वर्ष तक सन्यासी था।' "मेरे लिए सन्यासियों के जीवन सम्बन्ध में कुछ अभिज्ञता लाभ करना बहुत जरूरी है। नहीं तो जिरह में तुरन्त पकडा जाऊँगा। सन्यासियों के साथ कुछ दिन मेल जोल करके उनका चलन, व्यवहार और बोल-चाल आदि सीखनी होगी। सन्यासियों का कुछ कर्म्म धर्म्म और थोडा बहुत वेदान्त का विषय जान लेना भी आवश्यक है। इस उद्देश की सिद्धि के लिए काशी से बढकर स्थान और कहाँ मिल सकता है ?"

यात्रियों के टिकने के स्थान में दो दिन ठहर कर गोपाल ने देखा, यहाँ बडी गडबड रहती है। नित्य नये लोग आते जाते रहते हैं। रसोई आदि की भी बडी असुविधा है। इसी से वह एक स्वतन्त्र घर ढूँढने लगा। मान-सरोवर के समीप कन्हाई साहु का एक मकान दस रुपये महीने पर ठीक करके वह अपनी झोली गठरी वहाँ ले गया। एक रसोइया ब्राह्मण और एक नौकर रख करके गोपाल उस मकान में रहने लगा।

अब गोपाल का एक मात्र कार्य हुआ तडके से ग्यारह बजे तक और चार बजे से नौ बजे रात तक दशाश्वमेध घाट पर जाकर साधु-सन्यासियों के पास बैठना और उनका क्रिया-व्यवहार देखना। बीच बीच में वह उन्हें निमन्त्रण देकर अपने घर लाने, उत्तमोत्तम भोजन कराने और यथासाध्य उनका सन्तोष विधान भी करने लगा। कोई नाम पूछता तो चट कह देता—"श्रीभवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती।" घर कहाँ है? बाप का नाम क्या है, इत्यादि प्रश्न पूछने पर वह चुप हो रहता था। 'गिरि' नाम धारी सन्यासियों के साथ वह विशेष रूप से मिलता जुलता था। उनके साथ चेले की भाँति घूमता रहता और उनके सम्प्रदाय की विशेष विशेष बातों का सग्रह करता था। उनकी पाठ्यपुस्तक आदि उनसे माँग कर या बाजार से मोल लेकर नित्य पढता था। रात को भोजन आदि के अनन्तर नियमित रूप से भवेन्द्र का जीवनचरित्र पढता था। बारबार पढते पढते भवेन्द्र के जीवन की सभी बातें गोपाल को प्राय कठस्थ होगई।

इसी तरह एक महीने से कुछ ऊपर हो गया। गोपाल के मुडे माथे पर भवँर की तरह काले बाल निकल आये। कुछ कुछ दाढी मूछ दीखने लगी। गोपाल ने सोचा, वासुदेवपुर जाकर एक बार सब कुछ देख सुन आना आवश्यक है। यदि वहाँ के घाट बाट, अडोस पडोस और टोले महल्ले के तथा समीपवर्ती गाँवों के नाम न जान लूँगा और गाँव के प्रधान व्यक्तियों का थोडा बहुत परिचय प्राप्त न कर आऊँगा तो पकडे जाने की सम्भावना है। वह सोचने लगा, एक बार बिना गये काम नहीं चलेगा। किन्तु किस वेष में जाना चाहिए? इस सन्यासी-वेश से जाना तो ठीक नहीं। क्योंकि इसी वेश से भवेन्द्र के रूप में वहाँ अवतीर्ण होना पडेगा।

और गृहस्थ के वेष से भी जाना ठीक नहीं, क्योंकि यह शहर नहीं—देहात है, परस्पर एक दूसरे को सभी पहचानते हैं। एक नये आदमी को एकाएक बस्ती में देखकर सभी परिचय पूछना आरम्भ करेंगे। रास्ते में एक मुसलमान फकीर को भीख माँगते देख गोपाल के मन में एकाएक यह बात आई कि इसी छद्मवेश से जाना ठीक होगा। इस वेश में कोई बाधा नहीं।

यह सोच कर उसने मुसलमानी ढँग की चपकन और पायजामा सिलवाया। नागोरी जूता खरीदा, टोपी मोल ली। अब बाकी रही स्फटिक की माला, भीख माँगने के लिए दरयाई नारियल का एक खप्पर और टेढ़ी सी लाठी। ये चीजें बाजार में मोल नहीं मिलीं। किन्तु 'रुपये से बाघिन का दूध मिल सकता है" माला, खप्पर और लाठी क्या चीज है। गोपाल ने एक मुसलमान फकीर को चुपचाप अपने डेरे पर बुलाया और रुपया देकर उक्त चीजें खरीद लीं। उसी दिन सन्ध्या होने पर फकीरी भेष में गोपाल सड़क पर टहलने गया। उसका यह नया वेष देख उसका नौकर और ब्राह्मण दोनों दङ्ग हो गये। दोनों परस्पर कहने लगे—न यह सन्यासी है और न फकीर ही—यह तो कलकत्ते की खुफिया पुलिस का आदमी है। किसी खूनी असामी की खोज में चक्कर काट रहा है।

चपकन, टोपी और जूते की नवीनता को जब धूल ने हरण कर लिया तब गोपाल घर में ताला बन्द करके बासुदेवपुर को गया। वहाँ पहुँच कर भीख माँगने के बहाने वह दर दर घूमने लगा। किसी से भीख में दो एक पैसे मिल जाने पर वह मोटे गले से "अल्लाह आबाद रक्खे" कह कर हाथ उठाकर दुआ देता था। बासुदेवपुर और आस पास के गाँवों में घूम फिर कर जो कुछ देखना-सुनना था,

देखा-सुना और जो जानने की बात थी, जान ली। दीवानजी और पुराने नौकर-चाकर—जिनके नाम का उल्लेख भवेन्द्र की जीवनी में पढ़ा था—सबको पहचान रक्खा। इस प्रकार दो सप्ताह बिताकर गोपाल काशी लौट आया। इसके बाद एक दिन फ़क़ीरी भेष का सब सामान एक फ़क़ीर को बुला कर दे दिया।

वैशाख का अन्तिम सप्ताह है—काशी में खूब गरमी पड़ने लगी। भोजन आदि के अनन्तर गोपाल बड़ी रात तक छत के ऊपर पड़ा पड़ा भाँति भाँति की बातें सोच रहा था। "वासुदेवपुर को कब जाना चाहिए? अब विलम्ब करने से क्या फ़ायदा है? एकाएक सीधा वहीं चला जाऊँ या पहले पत्र लिखूँ? किन्तु पत्र लिखने में एक बखेड़ा है। पत्र पाने पर उन लोगों के मन में अवश्य ही सन्देह होगा कि यह व्यक्ति असली भवेन्द्र है या कोई धूर्त, भवेन्द्र बन कर, ठगना चाहता है।" वह दीनबन्धु बाबू के "नवीन तपस्विनी" नाटक की बात और बर्दवान के प्रतापचन्द्र के मुकदमे की बात मन ही मन सोचने लगा। "पत्र लिखने पर अपना कुछ न कुछ पता-ठिकाना तो देना होगा। यदि वे लोग पत्र में लिखे हुए ठिकाने पर चुपचाप आकर मेरा भेद ले लें तो! इससे तो पत्र न लिखना ही ठीक है—एकाएक चला जाऊँगा। —कहूँगा, लो मैं आ गया।"

इसी प्रकार सात पाँच करते करते और भी कई दिन गुज़र गये। गोपाल के मन में फिर आशङ्का होने लगी कि खबर दिये बिना एकाएक जा पहुँचने से वे लोग पहले ही से सन्देह परायण होकर मेरी कठिन परीक्षा लेंगे। इससे तो एक ऐसा पत्र लिखना बेहतर होगा जो केवल असल भवेन्द्र ही लिख सकता है—इतने वर्ष बाद यदि कोई धूर्त भवेन्द्र बनेगा, तो उसे ये बातें कैसे मालूम हो सकती हैं, जिन्हें और किसी के

जानने की कुछ भी सम्भावना नहीं। ऐसी हालत में उन्हें विश्वास हो सकता है कि पत्र लेखक ही सच्चा भवेन्द्र है। पत्र भेजने के दो एक दिन बाद मैं स्वयम् रवाना हो जाऊँगा जिसमें पत्र पाकर उनके किसी आदमी को यहाँ आकर अनुसन्धान करने का अवसर न मिले।

इस प्रकार निश्चय करके गोपाल पत्र लिखने बैठा। कई पत्र लिखकर फाड डाले। फिर उसने ध्यान लगा कर भवेन्द्र का जीवन चरित पढना आरम्भ किया। दो दिन के बाद निम्नलिखित मजमून ठीक हुआ —

ओ३म् नमः शिवाय।

श्री काशी धाम,
वैशाख सुदी १०

परमपूज्य श्रीयुक्त पिताजी महोदय,
श्रीचरण कमलों में शतकोटि प्रणाम।

आज बहुत दिनों के अनन्तर आपका अयोग्य अधम पुत्र अपने जीवन-व्यापी समस्त अपराधों और अनुचित कामों के लिए अनुतप्त होकर आपके चरणों की शरण में उपस्थित हुआ है। घर छोडे मुझे सोलह वर्ष हो गये। इस सोलह वर्ष के भीतर मैंने कुछ भी खबर आपको नहीं दी। अब तो मेरे जीवित रहने का भरोसा भी शायद आप लोगों को न होगा। मुझ से आप लोग निस्सन्देह हाथ धो बैठे होंगे। हाय ! मेरे सदृश पामर इस भारत भूमि में नहीं। जब मैं पहले पहल चुपचाप घर से निकल इलाहाबाद गया तब 'बङ्गवासी' में आपका दिया हुआ विज्ञापन मैंने वहीं देखा, किन्तु पीछे से कोई स्वदेश का आदमी उस विज्ञापन को पढ कर और मुझे देख सन्देह करके आपको

खबर न दे दे इसलिए उसी दिन मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ। तब से मैंने ऐसी जगहों में रहना आरम्भ किया, जहाँ अपने देश वाले से भेंट न हो। क्रमशः कनखल में रहते समय तिनतारिया मठ के महन्त गुरु महाराज श्री श्री सत्यानन्द गिरि की कृपादृष्टि मुझ पर हुई। उन्होंने मेरा सिर मुड़वा कर मुझे अपना चेला बना लिया। उनका कैलासवास होने पर मैं ही उनकी गद्दी बैठा और इतने दिनों तक उसी मठ में बना रहा। किन्तु इधर कुछ दिन से इस सन्यासी-जीवन पर मुझे मन ही मन बड़ी ग्लानि होने लगी। कोई दो वर्ष से मैं घर लौट आने की फिक्र में था, किन्तु बुद्धि स्थिर नहीं होती थी। दो महीने हुए, एक दिन मैंने रात में आपको सपने में देखा। मेरे घर छोड़ने के कुछ दिन पूर्व आप जैसा चश्मा लगाये रहते थे, वैसा ही चश्मा लगाये और पीले रङ्ग का रेशमी रूमाल हाथ में लिये मेरे सामने आ खड़े हुए और स्नेह-भरे स्वर में मुझ से बोले "बच्चा, घर चलना हो तो मेरे साथ चल।" इतने में घण्टा बजने से मेरी नींद टूट गई। आपकी उस मूर्ति का स्मरण करके मैं रोने लगा। दूसरे ही दिन मैं मठ छोड़कर चल दिया। अनेक तीर्थों में घूमता फिरता अब काशी आया हूँ। इच्छा थी कि श्रीजगन्नाथ क्षेत्र और सेतुबन्ध का दर्शन करके जेठ की पूर्णमासी तक घर पहुँचूँगा—किन्तु मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो रहा है। इसलिए मैं परसों द्वादशी को यहाँ से रवाना होकर त्रयोदशी को वासुदेवपुर पहुँचूँगा।

माँ से मेरा प्रणाम कह दीजिएगा। देवेन्द्र भैया को मेरा आशीर्वाद और सभी को मेरा यथायोग्य प्रणाम और आशीर्वाद

आपका अधम पुत्र,

नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती।

मजमून को बारबार पढ़कर, काट-छाँट करके, आखिर गोपाल ने चिट्ठी के एक अच्छे कागज पर उस मजमून की नकल कर डाली। नक़ल हो जाने पर नीचे यह और जोड़ दिया—

पुनश्च—यहाँ आकर मैंने बाँसफाटक महल्ले में अपने पण्डे काशीनाथ मिश्र का पता लगाया था। खोज करने पर मालूम हुआ कि दो वर्ष पूर्व उनको विश्वनाथ ने काशीवास का फल दे दिया है।

—सेवक श्रीभवेन्द्र

पत्र को लिफाफे में बन्द कर और पता ठिकाना लिखकर गोपाल स्वय डाकखाने में रजिस्ट्री करा आया। इस पत्र के पहुँचने की खबर पाठकगण द्वितीय भाग के अन्तिम परिच्छेद में पढ़ चुके हैं।



दिन ढल गया है। कचहरी के एक कमरे में श्री रघुनाथ सिंह कुरसी पर बैठे टेबल के ऊपर रक्खी हुई दर्जनों बहियाँ और खातों की जाँच कर रहे हैं। उनकी बांई ओर उनकी कुरसी से सटी हुई एक चौकी पर जाजिम बिछी थी। उस पर हरि कृष्ण भट्टाचार्य, विश्वेश्वर पटनायक और रामदास गोस्वामी, महल्ले के ये तीनो निठल्ले आदमी बैठकर धीमे स्वर में परस्पर गपशप कर रहे थे। भट्टाचार्य्य और पटनायक के हाथ में एक एक बिलमशून्य हुक्का था। कुछ ही क्षण पूर्व नौकर चिलम उतार कर भरने के लिए ले गया है। दीवान जी काम भी कर रहे हैं और बीच बीच में इन लोगों की बात चीत में योग भी दे रहे हैं। दीवार पर एक गोल बड़ी घड़ी खट्खट् कर रही है।

आये हुए इन तीनों व्यक्तियो में भट्टाचार्य ही उम्र में सब से बड़े थे। उन्होंने कहा—दीवान जी! आपने तो सुना ही होगा कि कलकत्ते में एक ऐसी गाडी आई है, जिसमें घोडे की जरूरत नहीं होती। पेंच के दबाते ही वह सडक पर हवा से बातें करने लग जाती है।

यह सुन कर पटनायक बोल उठे—अयँ! क्या कहा? रास्ते में कल की गाडी दौडती है?

भट्टाचार्य—हाँ साहब! रास्ते में नहीं तो क्या बैठक में?

गोस्वामी ने कहा—"दीवान जी ठीक ठीक कहेंगे कि यह बात सच है या झूठ।" इन सब में गोस्वामी ही अल्पवयस्क थे।

दीवानजी ने कहा—हाँ, ठीक है। उस गाडी को आये क़रीब एक वर्ष के हुआ, बल्कि एक वर्ष से कुछ ऊपर ही

समझो। उसको मोटरकार कहते हैं। हिन्दुस्तानियों ने उसका नाम "हवागाडी" रख लिया हे।

पटनायक—मैं दशहरे के अवसर पर कलकत्ते गया था। वहाँ पर वह गाडी मैंने तो कहीं नहीं देखी। क्या आपने देखी है?

"जी नहीं, समाचार-पत्र में पढ़ा है। अभी बहुत नहीं, दस-बीस गाडियाँ आई हैं।"

पटनायक—गया, अब घोडे का दाना पानी गया।

दीवानजी ने हँस कर कहा—घोडे का दाना पानी उठने में अभी बहुत देर है। मोटरगाडी का दाम ज्यादा है।

गोस्वामी ने उत्सुकता के साथ पूछा—कितना दाम होगा?

"दो ढाई महीने की बात है, कृष्णनगर के एक मारवाडी से मेरी भेट हुई थी। कलकत्ते में उनका खासा कारोबार है। सात हजार रुपये में उन्होंने विलायत से एक मोटरकार मँगवाई है, फिर भी वह बडी नहीं है। बडी गाडी का दाम और भी अधिक है।"

पटनायक ने कहा— अँगरेजी कलों से सारा देश ढक गया। अँगरेज़ लोग कलों से ही सब काम लेने लगे हैं। आप कहते हैं, घोडों का दाना उठने में देर है, परन्तु अब बहुत देर न समझिए। शुरू शुरू में ऐसी ऐसी कलों की दर चढ़ी रहती है, क्रम क्रम से भाव सस्ता हो जाता है। नहीं, अब घोडे की इज्जत नहीं रही।

"सिर्फ घोडे की ही क्यों? कोचवान की रोजी गई, साईस का रोजगार गया। कलों का प्रचार होने से न जाने कितने लोगों की रोटी गई।" यह कह कर भट्टाचार्य महाशय हताश भाव से सिर हिलाने लगे।

इसी समय नोकर चिलम की आग फूकते फूकते वह आया। भट्टाचार्य ने उसके हाथ से चिलम ले कर हुक्के पर रख

ली और दो चार बार गुडगुडाया। फिर गोस्वामी को हुक्का दे कर कहा—लो रामदास, पिओ।

दीवान जी फिर जमा-खर्च को बही में मन लगाने को थे कि मुकुन्दराम डाकिया आकर बोला—"राम राम बाबू साहब" बाँये हाथ में रक्खी हुई अनेक चिट्ठियों में से कई पत्र छाँट कर उसने दीवान जी के सामने रख दिये। इसके बाद बेग खोलते खोलते कहा—मालिक के नाम की एक रजिस्टरी चिट्ठी है।

दीवान जी ने विस्मय के साथ कहा—मालिक के नाम की?

"जी हाँ" कह कर चिट्ठीरसा ने सील-मुहर किया एक बन्द लिफाफा निकाल कर टेबिल पर रख दिया।

दीवान जी उसे उठा कर अचम्भे के साथ बोले—किसने भेजी है? मालिक का स्वर्गवास हुए आज दो वर्ष हो गये। इतने दिन बाद किस अपरिचित व्यक्ति ने उनको चिट्ठी लिखी है?

गोस्वामी ने कहा—मुहर देखिए न, कहाँ की है!

दीवान जी मुहर देख कर बोले—"बनारस सिटी। हो! समझ गया। काशी में जो हमारा पण्डा है, मालूम होता उसीने चिट्ठी भेजी है। वह कभी कभी मालिक को पत्र लिखता था। शायद कुछ सहायता माँगी है। अच्छा, मुकुन्दराम! मैं सही करके लिये लेता हूँ।" कह कर रसीद के पीले कागज पर दीवान जी ने दस्तखत कर दिये। चिट्ठीरसा बेग बन्द करके और सिर नवा कर चला गया।

दीवान जी ने और सब पत्रों को एक एक करके खोला और पढ़ा। दो एक पत्रों पर मुख्तसर हुक्म लिख कर सरिश्ते में भेज दिया। सब के पश्चात् रजिस्टरी चिट्ठी खोली।

पहली दो सतरें पढ़ कर ही दीवानजी ने झट पृष्ठ उलटा कर

लेखक का नाम देखा। साथ ही कहने लगे—"अरे यह क्या!" उनका चेहरा उतर गया, हाथ पैर काँपने लगे।

गोस्वामी और पटनायक एक स्वर से बोल उठे—क्यों क्या हुआ?

भट्टाचार्य ने कहा—कोई बुरी खबर तो नहीं है?

इतने में दीवान जी ने अपने को बहुत कुछ सँभाल लिया। वे किसी को कुछ उत्तर न देकर खूब ध्यान लगा कर पत्र पढ़ने लगे। तीनों आदमी अदम्य कौतूहल से उनके मुँह की ओर देखते रहे। इन लोगों ने देखा, पत्र पढते पढते दीवान जी का भाव फुर्ती से बदलता जाता है। एक बार उनका मुँह आनन्द से प्रफुल्ल हो जाता है, फिर तुरन्त ही किसी कठिन सन्देह से उनकी दोनों भौंहें सिकुड जाती हैं। इसके बाद शीघ्र ही क्रोध से उनके दोनों होंठ काँपने लगते हैं। फिर पलक मारते ही यह भाव दूर होकर आँखों में प्रसन्नता की झलक दिखाई देती है। इसके बाद तुरन्त ही उस प्रसन्नता की जगह विषाद की कालिमा छा जाती है। पत्र को अन्त तक पढ कर दीवान जी ने फिर आदि से पढ़ना आरम्भ किया। इस दफे प्रथम बार की तरह उतना अधिक समय नहीं लगा। पढ चुकने पर पत्र को दराज के भीतर रख कर ताला बन्द कर दिया। एक दीर्घ निःश्वास छोड कर वे टकटकी बाँधे बाहर के फाटक की ओर देखने लगे।

ये तीनों आदमी परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। आखिर पटनायक ने जरा गले को साफ करके कहा—तो पण्डा जी की चिट्ठी नहीं है?

"नहीं"—कह कर दीवान जी उठ खडे हुए।

भट्टाचार्य ने कहा—कहाँ चले?

दीवान जी ने टूटे स्वर में कहा—काम है। आज एकादशी है न?

"जी हाँ, अच्छा तो हम लोग भी जाते हैं।" कह कर भट्टाचार्य ने हुक्के में मुँह लगा खूब जल्दी जल्दी चार-पाँच बार धुआँ खींच लिया।

तब तक पटनायक और गोस्वामी उठ कर खड़े हो गये थे। पीछे से भट्टाचार्य भी उठे और सब के सब बाहर गये।

फाटक के पास जाकर तीनों आदमी धीमे स्वर में आश्चर्य प्रकट करने लगे। पटनायक ने कहा—कोई बड़ी घटना होगी भट्टाचार्य महाशय! आपने उनसे पूछा क्यों नहीं?

"जरूरत क्या है? चलो चलो, यहाँ खड़े क्यों हो रहे?"—कह कर भट्टाचार्य अग्रसर हुए। दोनों ओर जंगल था, बीच में अप्रशस्त मार्ग से तीनों चले।

पटनायक इधर उधर देख कर दबी जबान से बोले—मैंने एक अनुमान किया है।

गोस्वामी ने खड़े होकर कहा—क्या अनुमान किया है?

भट्टाचार्य बोले—फिर खड़े क्यों हो गये? क्या चलते चलते बात नहीं की जाती?

सब लोग चलने लगे। गोस्वामी ने कहा—मैंने चिट्ठी में एक जगह देख कर पढ़ लिया है। उसमें लिखा था—"नींद टूटने पर आप की वह मूर्ति स्मरण करके मैं रोने लगा।" सिर्फ इतना ही पढ़ सका।

भट्टाचार्य ने कहा—क्यों इतनी डींग हाँकते हो? उतनी दूर से तुम ने कैसे पढ़ लिया?

गोस्वामी—हाँ महाशय! मैंने स्पष्ट पढ़ा है—"नींद टूटने पर आप की वह मूर्ति स्मरण करके—"

भट्टाचार्य—जलाओ मत। हम लोगों में किसी ने नहीं देखा और तुमने झटपट देख कर पढ लिया। तुम्हारी उमर कितनी है?

गोस्वामी—उनतालीस वर्ष की। अभी चश्मा लगाने की जरूरत नहीं पडती।

"जी हाँ उनतालीस वर्ष की! मेरी उम्र करीब पचास के पहुँच गई। तुम अभी उनतालीस ही के हो!" कह कर भट्टाचार्य ने मोड पर से फिर कर अपने घर का रास्ता पकडा।

कुछ आगे बढ कर पटनायक खडे हुए, उन्होंने कहा—"मामला कुछ समझ में नहीं आता। 'नींद टूटने पर आपकी मूर्ति का स्मरण करके' बाबू, यह तो जमींदारी की चिट्ठी नहीं है।" यह कह कर वे दाँत से होठ दबा कर सिर हिलाने लगे।

"मेरे मन में तो ऐसा होता है, समझे—यह दीवानजी चाहे जितना ही साधुता का ढोंग रचे—भीतर भीतर—" कह कर गोस्वामी ने सावधानी से चारों ओर देखा। फिर पटनायक के कान के पास मुँह ले जाकर फुसुर-फुसुर कुछ कहा। इसके बाद अपने स्वाभाविक स्वर में पूछा—आपको कैसा जान पडता है?

पटनायक—यही बात सच जान पडती है।

एक दूसरे का मुँह देखकर दोनों हँस पडे और फिर आगे बढने लगे। कुछ दूर जाने पर पटनायक एकाएक ठिठक कर बोले—अजी, यह बात नहीं है।

गोस्वामी ने खडे होकर कहा—कौन बात?

"तुमने जो बात कही है वही बात। वह चिट्ठी दीवानजी के नाम से नहीं आई है—सुना नहीं—मालिक के नाम की चिट्ठी है।"

"हाँ, हाँ ठीक कहते हैं आप"—कह कर गोस्वामी जु० सिटपिटा गये।

पटनायक चिन्तित होकर बोले—ओफ! कुछ भी नहीं खुली।

गोस्वामी—"हम लोग कुछ नहीं समझे"। दोनों ने॰ भाव से फिर धीरे धीरे आगे बढ़े।

इधर दीवानजी हवेली के अन्दर जाने के लिए उठे थे, किन्तु दो चार पग महल की ओर चल कर ठहर गये और कुछ देर तक सोच विचार कर बैठ रहे। सिर पर हाथ रख कर गहरी चिन्ता में मग्न हो गये। मन में कहने लगे—अब क्या करना चाहिए? यह खबर भीतर दूँ या न दूँ? यह सच्चा भवेन्द्र है या कोई ठग है? अभी ख़बर देने से हवेली के लोग आनन्द में बेसुध हो जॉयगे। मारे खुशी के अपने आप को भूल जाँयगे। इसके बाद परसों उसके आ पहुँचने पर अगर वह साबित हुआ तो सभी को मर्मान्तिक दुःख होगा। ओफ! यह उन लोगों के लिए भारी दंड होगा। इससे अभी चुप रह जाना ही बेहतर है। वह आवे—एक बार उसे देख लेने में क्या क्षति है? सोलह वर्ष से उसे नहीं देखा है। वह भवेन्द्र है या नहीं, चेहरा देख कर पहचान लेना कठिन है। अगर ठग होगा तो बातचीत से जरूर ही पकड़ा जायगा। तब उसकी अच्छी तरह से मरम्मत करके उसे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। अगर वह सचमुच भवेन्द्र ही हो, तो इससे बढ़ कर आनन्द और क्या हो सकता है? किन्तु यह असम्भव प्रतीत होता है।

दीवानजी ने तब धीरे धीरे दराज खोल कर चिट्ठी निकाली फिर उसे बड़े ध्यान के साथ पढ़ा। पढ़ कर सोचने लगे—जाल क्या होगा? ये सब देखी-सुनी बातें इतने वर्ष

अनन्तर दूसरा आदमी कैसे जानेगा। अहा! अगर यह सचमुच भवेन्द्र हो तो कैसा हर्ष हो।

घड़ी में पौने-छ का समय देख दीवानजी फिर चिट्ठी को दराज में बन्द करके उठे। कमरे के भीतर ही धीरे धीरे टहलने लगे। बीच बीच में खिडकी के पास जाकर ठहर जाते थे, आकाश की ओर ध्यान से देखते थे, फिर पैर बढ़ाते थे। इसी तरह घूमते फिरते छ बज गये।

क्रमश फिर उनके मन में यह बात आई—यदि परसो वह सचमुच ही भवेन्द्र निकला तो महल के लोग समझेंगे कि मैंने किसी बुरी नीयत से ऐसे अच्छे शुभ-सवाद को दो दिन तक दबा रक्खा था। शायद इन लोगों के मन में सन्देह होगा कि भवेन्द्र के घर लौट आने की खबर से मैं खुश नहीं हूँ। जमीदारी का कुल काम मेरे हाथ में था, मैं मालिक की तरह रहता था, वह अधिकार अब मेरा न रहेगा, इसी से मानो मेरी छाती फटी जा रही है, इत्यादि अनेक आशङ्काये की जा सकती है। मैं भी अच्छा सोच कर ही इस बात को अभी गुप्त रखना चाहता हूँ सो उस समय क्या ये लोग उस बात पर विश्वास करेंगे? मैं बड़ी मुश्किल में पड गया हूँ। नहीं जानता कि इस [illegible] का उचित उत्तर क्या होगा? क्या करूँ? फिर आज [illegible]। है। वे दोनों दिन भर की भूखी हैं। दुबले शरीर में [illegible] आशातीत आनन्द के वेग को वे कैसे सहन कर सकेंगी? यदि कोई दुर्घटना हो जाय तो? अच्छा अभी [illegible]। [illegible] जल पान आदि कर लेंगी तब यह खबर [illegible]।

सूर्यास्त होने में अब विलम्ब नहीं है। [illegible] टहलने पर दीवानजी ने अपने [illegible] काम की बात नहीं। इतनी [illegible]

लिए भी छिपा रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। अगर रजिस्टरी चिट्ठी मेरे नाम से आई होती तो पहले की सोची हुई ही स्थिर रहती, परन्तु अब वह कुछ नहीं। जाता हूँ, मैं सब बात कहे आता हूँ। किन्तु साथ ही विशेष सावधान भी कर दूँगा। अभी से ऐसा निश्चय न कर बैठें कि आकाश का चाँद हाथ में आ गया। बड़े लोगों की धन-सम्पत्ति के लोभ से कभी कभी धूर्त लोग ऐसा कर बैठते हैं, उसका दृष्टान्त दूँगा। यह सच्चा भवेन्द्र नहीं, कोई झूठा आदमी भवेन्द्र बन कर हम लोगों को ठगना चाहता है,—अभी ऐसी ही धारणा कर लेने में भलाई है। यह बात अच्छी तरह समझा-बुझा कर कहूँगा।

यह निश्चय करके दीवान जी चिट्ठी लेकर भीतर गये।

मालकिन को ज्योंही पत्र पढ़ कर सुनाया त्योंही वे हँस रो कर पागल की भाँति हो उठीं। दीवानजी ने उनसे सन्देहमूलक दो चार बातें कहने की चेष्टा की परन्तु मालकिन ने उन बातों पर ध्यान नहीं दिया। प्रबल प्रवाह के मुँह में पड़े असहाय तिनकों की भाँति उनकी बातें कहाँ बह गईं, इसका पता नहीं। सारे महल में आनन्द की धारा उमड़ चली। जिसने यह खबर सुनी वही आनन्द से विह्वल हो गया। एक आदमी ठाकुरद्वारे में जाकर बड़ी उमङ्ग के साथ शङ्ख बजाने लगा। वह शब्द सुनकर बगीचे में बहूजी ने जो कुछ किया वह पहले ही लिखा जा चुका है।

दीवानजी उस दिन रात भर जागते रहे। थोड़ी देर के लिए
उन्हें अच्छी नींद नहीं आई। इस घटना का परिणाम क्या
गा? सोच कर वे कुछ भी स्थिर नहीं कर सके।

दूसरे दिन सवेरे ही से उनके घर लोगों का समागम आरम्भ
आ। बात की बात में उक्त समाचार बस्ती भर में फैल गया
। दीवानजी से सभी पूछने लगे—"यह अफवाह कहाँ तक
त्य है?" दीवानजी ने गम्भीर भाव से कहा—"सच या झूठ दो
न के बाद सब लोगों को मालूम हो जायगा।" आखिर लोगों
एक ही बात बारम्बार पूछने से वे कुछ चिढ़ कर भीतर चले
ये और नौकर को हुक्म दे दिया कि अगर कोई आवे तो कह
ना कि अभी भेंट न होगी।

भीतर ही स्नान आदि करके आठ बजे दीवानजी कचहरी
पहुँचे। हवेली में आदमी भेज कर खबर मँगवाई, तो मालूम
ुआ कि मालकिन साहबा पूजा पाठ आदि नित्य कृत्य समाप्त
रके जलपान करने बैठी हैं। जरा ठहर कर दीवान जी अन्दर
ये। पहले कमला देवी दीवान जी के सामने न आती थीं और
उनसे साक्षात् बातचीत करती थीं। स्वर्गीय बाबू साहब का
हान्त होने के दो महीने पूर्व जब उनका रोग बहुत बढ़ गया
ा तभी से इस नियम में व्यतिक्रम आरम्भ हुआ।

अन्दर की बैठक में दीवान जी कुछ देर बैठे रहे तब मालकिन
ाईं। दीवान जी ने देखा, उनके मुँह पर कल के उस असीम
आनन्द का निशान अब नहीं है बल्कि एक नैराश्य का भाव

दिखाई दे रहा है। दीवान जी ने खड़े होकर प्रणाम किया कहा—आप जलपान कर चुकीं ?

"जी हाँ," कह कर वे नीचे, एक गलीचे पर, बैठ गईं दीवान जी उनसे कुछ अन्तर पर, दरी पर, जा बैठे।

मालकिन शायद कोई बात पूछें, इस आशा से दीवान कुछ समय तक प्रतीक्षा करते रहे। उनको चुप देखकर ५ वह जी की तबीअत कैसी है ?

"अच्छी है।"

"रात में फिर मूर्च्छा आदि कोई शिकायत तो नहीं हुई"

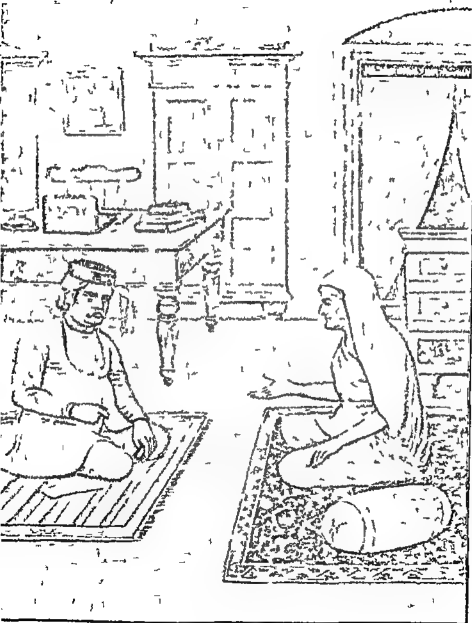
"नहीं।"

फिर दोनों कुछ समय तक चुप बैठे रहे। तब दीवान सोचा कि सन्देह की बात कह देने का यही अच्छा अवसर मैं अपना वक्तव्य सुनाये देता हूँ, फिर इनके मन में जो करेंगी। जो आने वाला है, उसे अभी भवेन्द्र ही मान लें, पीछे यदि कोई बखेड़ा उठ खड़ा हो तो इस निर्मल कुल में सदा के लिए कलङ्क लग जायगा। मैं यह बात अभी न कहूँगा तो कौन कहेगा, और किसका सामर्थ्य कहने का है ? ये लोग तो हिताहित की बात कुछ जानतीं नहीं। अगर मैं नहीं कहता हूँ तो मेरे में बट्टा लगता है। यह निश्चय करके दीवान जी बोले—मुझे कुछ अर्ज करना है। मैंने कल आपसे कुछ कहना चाहा था, किन्तु नहीं कह सका, अगर आप को रंज न हो तो कहूँ।

"कौन सी बात ?"

"आप मुझ पर नाराज न हों। जो न कहूँ तो मेरे कर्तव्य में हानि होती है, इसी से कहना पड़ता है।"

मालकिन ने कहा—जो कुछ आप कहना चाहते हैं वह मैं समझ गई। मेरे मन में भी उस बात का खयाल हुआ था। क



कमलादेवी और दीवानजी—पृ० १२४

दिखाई दे रहा है। दीवान जी ने खड़े होकर प्रणाम किया कहा—आप जलपान कर चुकीं ?

"जी हाँ," कह कर वे नीचे, एक गलीचे पर, बैठ गईं दीवान जी उनसे कुछ अन्तर पर, दरी पर, जा बैठे।

मालकिन शायद कोई बात पूछें, इस आशा से दीवान कुछ समय तक प्रतीक्षा करते रहे। उनको चुप देखकर वहू जी की तबीअत कैसी है ?

"अच्छी है।"

"रात में फिर मूर्च्छा आदि कोई शिकायत तो नहीं हुई ?"

"नहीं।"

फिर दोनों कुछ समय तक चुप बैठे रहे। तब दीवान जी सोचा कि सन्देह की बात कह देने का यही अच्छा अवसर मैं अपना वक्तव्य सुनाये देता हूँ, फिर इनके मन में जो करेंगी। जो आने वाला है, उसे अभी भवेन्द्र ही मान लें, पीछे यदि कोई बखेड़ा उठ खड़ा हो तो इस निर्मल कुल में सद के लिए कलङ्क लग जायगा। मैं यह बात अभी न कहूँगा तो कहेगा, और किसका सामर्थ्य कहने का है ? ये लोग तो हिताहि की बात कुछ जानती नहीं। अगर मैं नहीं कहता हूँ तो मेरे धर्म में बट्टा लगता है। यह निश्चय करके दीवान जी बोले—मुझे कुछ अर्ज करना है। मैंने कल आपसे कुछ कहना चाहा था, किन्तु नहीं कह सका, अगर आप को रज न हो तो कहूँ।

"कौन सी बात ?"

"आप मुझ पर नाराज न हों। जो न कहूँ तो मेरे कर्तव्य मे हानि होती है, इसी से कहना पड़ता है।"

मालकिन ने कहा—जो कुछ आप कहना चाहते हैं वह मैं समझ गई। मेरे मन में भी उस बात का खयाल हुआ था। क

सारी रात जाग कर मैं आकाश-पाताल की बातें सोचती रही हूँ। मेरा जी बड़ा ही उतावला हो गया था, रात को पिछले पहर बहू रानी के मुँह से एक बात सुनी, उससे मन का उद्वेग कुछ शान्त हुआ।

दीवान जी ने बड़े उत्सुक होकर पूछा—उन्होंने क्या कहा?

तब गृहस्वामिनी कमला देवी ने बहू रानी के मुँह से उसके स्वप्न दर्शन का जो वृत्तान्त सुना था, कह सुनाया।

सुन कर दीवान जी गम्भीर भाव धारण कर ज़रा चुप बैठे रहे, फिर बोले—इसी स्वप्न की बात के ऊपर भरोसा करके निश्चिन्त रहना तो ठीक नहीं है।

कमला देवी—यह ठीक है, किन्तु क्या किया जाय? कुछ पता लगा सकते तो अच्छा होता, किन्तु उसके लिए अब समय नहीं रहा। तिनतारिया मठ कहाँ है, आप जानते हैं?

"जी नहीं, युक्त-प्रदेश में जाकर खोज करने से पता लग सकता है।"

"उस में तो बहुत समय लगेगा। सोचिए, तब तक क्या होगा? कल त्रयोदशी को वह यहाँ आ पहुँचेगा। तब उससे कैसे कह सकूँगी कि 'तुम पर हमें सन्देह है, जब तक हम अपना मन न भर लें, जब तक तुम्हारा ठीक ठीक परिचय न मिल जाय, तब तक तुम बाहर के घर में रहो। खाने-पीने को मिलेगा।' मान लीजिए, अगर वह सच्चा ही भवेन्द्र हो तब तो वह मारे ग्लानि के उसी समय कहीं चल देगा, तब उसका पता लगाना कठिन हो जायगा। वह कैसा अभिमानी है, यह तो आप जानते ही हैं।"

"जी हाँ, खूब जानता हूँ। अगर दो दिन पहले भी खबर मिल जाती तो काशी जाकर बहुत बातों का पता लगा सकता।"

"वह काशी से कब रवाना होगा?"

सारी रात जाग कर मैं आकाश पाताल की बातें सोचती रही हूँ। मेरा जी बड़ा ही उतावला हो गया था; रात को पिछले पहर बहू रानी के मुँह से एक बात सुनी, उससे मन का उद्वेग कुछ शान्त हुआ।

दीवान जी ने बड़े उत्सुक होकर पूछा—उन्होंने क्या कहा?

तब गृहस्वामिनी कमला देवी ने वह रानी के मुँह से उसके स्वप्न दर्शन का जो वृत्तान्त सुना था, कह सुनाया।

सुन कर दीवान जी गम्भीर भाव धारण कर जरा चुप बैठे रहे, फिर बोले—इसी स्वप्न की बात के ऊपर भरोसा करके निश्चिन्त रहना तो ठीक नहीं है।

कमला देवी—यह ठीक है, किन्तु क्या किया जाय? कुछ पता लगा सकते तो अच्छा होता, किन्तु उसके लिए अब समय नहीं रहा। तिनतारिया मठ कहाँ है, आप जानते हैं?

"जी नहीं, युक्त प्रदेश में जाकर खोज करने से पता लग सकता है।"

"उस में तो बहुत समय लगेगा। सोचिए, तब तक क्या होगा? कल त्रयोदशी को वह यहाँ आ पहुँचेगा। तब उससे कैसे कह सकूँगी कि 'तुम पर हमें सन्देह है, जब तक हम अपना मन न भर लें, जब तक तुम्हारा ठीक ठीक परिचय न मिल जाय, तब तक तुम बाहर के घर में रहो। खाने पीने को मिलेगा।' मान लीजिए, अगर वह सच्चा ही भवेन्द्र हो तब तो वह मारे ग्लानि के उसी समय कहीं चल देगा, तब उसका पता लगाना कठिन हो जायगा। वह कैसा अभिमानी है, यह तो आप जानते ही हैं।"

"जी हाँ, खूब जानता हूँ। अगर दो दिन पहले भी खबर मिल जाती तो काशी जाकर बहुत बातों का पता लगा सकता।"

"वह काशी से कब रवाना होगा?"

में सलाह कर रहे है कि समयानुसार हम लोग गाँव के जा खडे होंगे। अपने जमींदार की अगवानी करके बाजे-गाजे के साथ उन्हें घर ले आवेंगे।

कमला देवी तो आज आनन्द की मूर्ति बन गई हैं। उनके हृदय में आज आनन्द समाता ही नहीं। महल की स्त्रियाँ भी आनन्द में उन्मत्त हो कर भाँति भाँति के कुतूहल हैं। उनके मधुर हास्य से रह रह कर सारा महल भर जाता है। दास-दासीगण नये नये लाल पीले कपडे पहने इधर उधर घूम रहे हैं। झल्लू की माँ का तो कुछ पूछना ही नहीं। वह मारे खुशी के पागल की भाँति चारों ओर लोटती-फिरती है। शशिकला के ओठों पर आज मुद्दत के बाद लोगों ने हँसी देखी है। कन ने समझा, अब मेरी नौकरी गई। यह खबर पाते ही मे दूरदर्शी भाई मुझे यहाँ से ले जायगा। तो भी वह जी खोल क इस उत्सव में शामिल हुई। उसके हृदय में गीत पर गीत उठ है, किन्तु गाने का उपाय नहीं। वह अपना असली रूप धा कर इस उत्सव के समय नाचना चाहती है, परन्तु साहस न होता। क्योंकि वह तो एक कुलीन विधवा ब्राह्मणी है, इ लाचारी से वह छटपटा रही है।

पाठकगण! अब एक बार अभागिनी बहुरानी को भी देखि वह क्या कर रही है। इच्छा न रहने पर भी उसे आज मूल्य भूषण-वसन से सुसज्जित होना पडा है। शशिकला गुप्त कोठरी में बैठ कर बडे यत्न से सुगन्धित तेल लगाकर, मे उनकी केशराशि को भली भाँति सवाँर कर, वेणी गूँथ दी है। दूसरी कोठरी में कई मालिनें बैठ कर फूलों की माला रही हैं। कितनी ही सुहागिनें द्वार के सामने एकत्र हो एक स्वर से मङ्गल गान गा रही हैं।

सूर्यास्त के कुछ ही देर बाद गाँव के एक प्रान्त से बाजे-गाजे का शब्द सुनाई देने लगा। इस के बाद हुम् हुम् करते हुए कहारों ने एक पालकी कचहरी वाले कमरे के सामने ला रक्खी। पालकी से उतर कर दीवानजी झट हवेली के अन्दर गये। कमला देवी अन्यान्य स्त्रियों के साथ दरवाजे के पास खड़ी थीं। दीवानजी हाँफते हाँफते बोले—

"भवेन्द्र की पालकी और साथ के लोग सिद्धेश्वरी भगवती के मन्दिर के पास ठहर गये हैं। भवेन्द्र भगवती की पूजा कर रहा है। गाँव के लोग वहाँ एकत्र हुए हैं। मैं आप को खबर देने के लिए झटपट आगे आया हूँ।"

कमला ने रोते रोते पूछा—वह कितनी देर में आवेगा?

"देर नहीं है, अब आता ही होगा।"

आँखें पोंछ कर कमला ने अधीर स्वर में कहा—उससे भेंट कैसे हुई? कैसे पहचाना? कोई खटका तो नहीं?

दीवान जी बोले—नहीं मालकिन, कुछ खुटका नहीं। आपका भवेन्द्र ही है। काशी की गाडी आने के इन्तजार से मैं हवडा स्टेशन पर खडा था। कोई आशा नहीं थी कि उसे पहचान कर खोज लूँगा। भक् भक् धुँआँ छोडती हुई गाडी स्टेशन पर आखडी हुई। हजारों लोग गाडी से उतर पडे। मैं मन ही मन भगवान् का नाम ले रहा हूँ और अभी मुसाफिरों के मुँह की ओर ध्यान से देख रहा हूँ, कि इसी समय गेरुआ कपडे पहिने एक युवा पुरुष मेरे पास से होकर जाते जाते मेरे चेहरे की ओर देख एकाएक ठिठक कर खडा हो गया। मुझसे पूछा,—"आपका घर कहाँ है?" मैंने कहा—"वासुदेवपुर"। यह सुन कर वह मेरे मुँह की ओर कुछ देर तक आँख गडा कर देखता रहा। इसके बाद बोला—"दीवान काका?" मैं ने —"क्या तुम भवेन्द्र?"—कह कर उसे

झट दोनों हाथों से पकड छाती से लगा लिया। वह भी रो लगा और मैं भी खूब रोया।

कमला देवी की आँखों से कुछ देर तक मोती बरसते रहे। इसके बाद वे कुछ सावधान होकर बोलीं—अब भी उसने गेरुआ वस्त्र नहीं उतारा ?

"वह दूसरे कपडे अभी कहाँ पावेगा ? यहाँ आते ही उसे कपडे बदलवा दूँगा।"

बाजों का शब्द धीरे धीरे निकटस्थ होने लगा। क्रमशः लोगों का कोलाहल और भी स्पष्टतर हुआ। देखते ही देखते लोगों का झुण्ड पालकी को चारों ओर से घेरे कचहरी के सामने आ पहुँचा।

दीवान जी ने बाहर निकल कर कहा—"लोगो! हटो," कहारों से कहा—पालकी को अन्दर महल के द्वार पर ले चलो।

सिपाही लोग चिल्ला चिल्ला कर दर्शकों से कहने लगे—हटो हटो, पालकी इधर लाओ।

पालकी अन्त पुर के द्वार पर आ लगी। गोपाल पालकी से उतर पडा। कमला उन्मादिनी की भाँति दौड़ी और "बेटा, आ गया"—कहकर उसकी देह से लिपट गई। महल के भीतर मङ्गल गान होने लगा। अनेक प्रकार के बाजों की ध्वनि आकाश मण्डल को कँपाने लगी।

---

[५]

कमला देवी अपना पुत्र मानकर ही गोपाल को एक प्रकार से अपनी छाती से लगाये महल के भीतर ले गई।

कचहरी का प्राङ्गण लोगों से ठसाठस भरा हुआ है। पालकी के साथ जो लोग आये थे उनके सिवा और भी कितने ही लोग वहाँ आकर एकत्र होने लगे। सभी के मुँह पर एक अपूर्व कौतूहल का भाव झलक रहा है। जो लोग पीछे आये हैं वे पहले आये हुए लोगों से बाबू के सम्बन्ध में प्रश्न पर प्रश्न करने लगे।

कई एक धनी महाजन व्यक्ति आये थे। उन लोगों को बुला कर दीवान जी ने कमरे में बिठाया। उनमें हमारे पूर्व परिचित भट्टाचार्य, विश्वेश्वर बाबू (पटनायक) और रामदास गोस्वामी भी थे।

नौकर तम्बाकू भर लाया। उपस्थित सज्जनों के प्रश्न करने पर दीवान जी हावड़ा स्टेशन पर भेंट होने से आरम्भ कर सब बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन करने लगे। पिता और भाई के मृत्यु संवाद से बाबू कैसे उद्विग्न और शोकाकुल हो पड़े थे, कितने कष्ट और सान्त्वना-वाक्यों से दीवान जी ने उन्हें कुछ कुछ धीरज धराया था, सो सब बातें कहीं। फिर उन्होंने पूछा—

"नहीं, कुछ दिन बाक़ी है। जेठ के अँधेरे पाख की चौथ को दो वर्ष पूरे होंगे।"

भट्टाचार्य बोले—तब तो सद्य शौच नहीं है। और कोई सपिण्ड होता तो स्नान मात्र का अशौच होता। पिता तो महागुरु है। एक रात का अशौच होगा। वे कल सवेरे गङ्गा-स्नान करने पर शुद्ध होंगे।"

दीवान जी बोले—यह बात है? तब तो भूल हो गई। बाबू से यह कह देना होगा।

इसी समय एक व्यक्ति महल से आकर बोला—दीवान जी! कहारों ने मालकिन से इनाम के लिए दरख्वास्त की है। उन्होंने हुक्म दिया है, हरेक कहार को एक एक गिन्नी और एक एक जोड़ा धोती दी जाय।

दीवान जी उठे, लोहे का सन्दूक खोल कर बारह गिन्नी ले बरामदे में जा खड़े हुए। बारहों कहारों को बुलाया और मालकिन का हुक्म सुना कर कहा—"कपड़ा तो अभी खरीदा नहीं है, वह कल ले जाना, अभी एक एक गिन्नी लो।" यह दृश्य देख कर उपस्थित प्रजा आनन्द से चञ्चल हो उठी। जगह जगह आपस में कानाफूसी होने लगी।—मालकिन ने बाबू को निस्सन्देह पहचान लिया है। नहीं तो इनाम में गिन्नी देने का हुक्म न देतीं।

दीवान जी लौट कर फिर सभ्य-मण्डली में आ बैठे। इधर उधर की दो-एक बातें होने के अनन्तर चिट्ठी की बात निकली। दीवान जी ने कहा—जब वह रजिस्टरी चिट्ठी आई थी तब भट्टाचार्य, पटनायक और गासोंई मेरे दफ्तर में ही बैठे थे।

एक शख्स ने कौतूहल रोकने में असमर्थ होकर पूछा—उस चिट्ठी में क्या लिखा था?

"आज आने को लिखा था। क्या हुई चिट्ठी—पाकेट में ही थी। हाँ, मिल गई, यही तो है।" कह कर दीवान जी ने चिट्ठी स्वयं हाथ में ले पढ़ने की चेष्टा की। उस समय साँझ हो गई थी, कुछ कुछ अँधेरा छा गया था। इससे कहा—चश्मा नहीं है, पढ़ो तो गोसाँई! उच्च स्वर से पढ़ो।

बड़े आग्रह से पत्र लेकर रामदास ने पढ कर सब को सुनाया। केवल पत्र सुना कर इन लोगों का कुतूहल निवृत्त करना ही दीवान जी का उद्देश्य न था। किन्तु इसमें उनका यह अभिप्राय था कि बाबू की सत्यता के सम्बन्ध में किसी को कुछ सन्देह न रहे। चिट्ठी की बातें परम्परा से गाँव के सभी लोग सुन लें।

इसी समय एक आदमी ने आकर कहा—दीवान जी, मालकिन आप को भीतर बुलाती हैं।

दो-तीन व्यक्तियों ने उस आदमी से पूछा—बाबू क्या कर रहे हैं?

उसने कहा—हाथ पैर धोकर ऊपर गये हैं।

"बाबू साहब अभी बाहर आवेंगे?"

"क्या मालूम" कह कर वह चला गया।

दीवान जी ने कहा—अच्छा, तो मैं अन्दर जाता हूँ। क्या आप लोग कुछ देर तक यहाँ बैठेंगे?

किसी किसी ने कहा—क्या बाबू साहब इस समय बाहर आवेंगे? अगर आवें तो हम लोग बैठें।

दीवान जी ने कहा—थके हुए हैं, शायद अभी बाहर न आवें। कल आप लोग आवें तो उनसे अवश्य भेंट होगी।

विश्वेश्वर बाबू ने कहा—तो हम लोग अभी चलते हैं। साँझ

हुई। आप कृपा करके हम लोगों का नाम लेकर इतना कह दीजिएगा कि हम लोग भेट करने के लिए बहुत देर से बैठे थे।

"हाँ, अवश्य कहूँगा"—कह कर दीवान जी महल की ओर चले। सभ्यगण भी उठ खडे हुए। इन लोगों ने कमरे से नीचे उतर ऑगनाई में आकर देखा—अन्दर से आये हुए एक नौकर को कितने ही आदमी घेरे खडे हैं। नौकर कह रहा है—मालकिन ने कहा कि बेटा आ गया, आ गया, अगर दो वर्ष पहले आ जाता तो उनके मन के साथ कोई दु:ख न जाता। वे (पति) सुख से स्वर्ग जा सकते।—जितनी ही मालकिन रोती है उतने ही बाबू भी रोते हैं। दोनों की ऑखों के ऑसू नहीं रुकते।

इन लोगों को जाते देख ऑगन में स्थित लोगों ने भी धीरे धीरे अपने घर की ओर जाना आरम्भ किया। छोटा-बडा झुण्ड बॉध बॉध कर लोग रास्ते में तर्क-वितर्क करते चले। जिन दूकानों, बैठकों और देवी के मन्दिर में सन्ध्या के अनन्तर दस पॉच आदमी आकर बैठते थे उन सब जगहों में लोगों का खासा, जमाव है, और आपस में सभी कुछ कुछ बातचीत कर रहे हैं। सभी जगह तर्क का विषय यही एक है—जो आये हैं वे सचमुच बाबू हैं या नही। यह तर्क विशेष कर नई उम्र वालों के ही बीच हो रहा है। इनमें कितने ही कह रहे हैं—बाबू नही, कोई ठग है। कोई कोई इस मत का खण्डन भी कर रहे हैं। जिनके बाल पके हैं, वे हॉ या ना कुछ नहीं बोलते, उन कच्चे केश वालों की बहस, चुपचाप सुन रहे हैं। जिनके सिर के बालों के साथ साथ मूँछ और दाढी भी सफेद हो गई है उनमें कितने ही सिर हिला कर कह रहे हैं—निस्सन्देह भवेन्द्र बाबू हैं—ठग जो

लिए एक प्रकार से अथाई का काम देता था। आठ दस आदमी उनके साथ ही साथ आये थे। उन लोगों को दालान में विठा कर पटनायक जी ने घर में जाकर जलपान करने में मन लगाया।

कोई आध घण्टे के बाद पटनायक जी बाहर निकले। दालान के अँधेरे बरामदे में खडे होकर उन्होंने सुना, सुरेश तिवारी—जिनकी मूँछ दाढ़ी दोनों पकी हैं—कह रहे हैं "अच्छा, अगर वह भवेन्द्र बाबू नहीं है तो उसने हावडा स्टेशन पर हजारों मनुष्यों के बीच दीवान जी को कैसे पहचान लिया ?"

रामदास हाथ हिला कर उत्तेजित स्वर में बोला—आप इतना भी नहीं समझते ? जो आदमी इतनी बडी सम्पत्ति को हथियाने के लिए प्रपञ्च रच कर आया है, वह इतनी भूमिका बाँध कर भी न आवेगा ? पहले ही से देख सुन कर सब बातें ठीक कर ली होंगी।

वृद्ध तिवारी बोले—अच्छा, तो सोलह वर्ष पहले बाबू साहब की आँख आने और पीले रङ्ग का रूमाल रखने की बात उसे कैसे मालूम हुई ? चिट्ठी तो तुमने स्वय पढी है।

रामदास—कैसे मालूम हुई, यह पूछते हो ? जानने के सैकड़ों उपाय हैं। ये दीवान जी कितनी ही जगह जाते आते हैं—कृष्णनगर जाते हैं, कलकत्ते जाते हैं। कितने ही लोगों से मिलते जुलते हैं—कितनी ही बा॰ करते हैं। कहीं इस बात की चर्चा की होगी। धूर्तराज ने उस बात को अब अपने काम में लगा दिया है। नहीं तो चिट्ठी में वह बात लिखने की जरूरत ही क्या थी ? ऐसी बात चिट्ठी में रहने ही से एकाएक लोगों का विश्वास होगा, इन बातों को सोच विचार कर ही चिट्ठी लिखी गई है।

तिवारी—तुम चाहे जो कहो, मेरा तो पूरा विश्वास है कि यह भवेन्द्र बाबू ह।

रामदास गोस्वामी—कलकत्ते का पका जालिया है।

विश्वेश्वर बरामदे में खड़े खड़े ये सब बातें सुन रहे थे वे दालान के भीतर न जाकर अन्दर लौट गये और बेटे को भेज कर रामदास गोस्वामी को भीतर बुलवा लिया।

रामदास के आने पर उसे एकान्त में ले जाकर कहा—सुनें तो, तुम्हारी इतनी उम्र हुई, तो भी तुम को कुछ ज्ञान न हुआ। तुम्हारी समझ की बलिहारी!

रामदास ने समझा था, शायद घर में आज जलपान के लिए कोई नई चीज तैयार हुई है, उसी के लिए बुलाहट हुई है। क्योंकि, कभी कभी ऐसा हो जाता था। किन्तु पटनायक जी के मुँह का विकृत भाव देख कर वह कुछ सहम गया। उसने सङ्केत में पूछा—क्यों, क्या हुआ है?

पटनायक ने कहा—विश्वर, सब के बीच में तुम जालिया जालिया क्यों कहते हो? जिनसे उसका सम्बन्ध है उन्होंने उसको भवेन्द्र ही समझ लिया है, देखा नहीं! दीवान जी को विश्वास हो गया है। मालकिन को भी विश्वास हो गया। अब तुम उसे जालिया किस बिरते पर कहते हो?

गोस्वामी—अगर मेरी वैसी ही धारणा है तो मैं न कहूँ?

विश्वेश्वर ने मुँह बना कर कहा—कहना हो तो अपने घर जाकर कहो। मेरे दालान में बैठ कर ये बातें मत बोलो।

रामदास गोस्वामी इस दफे कुछ डर गया। विश्वेश्वर बाबू के क्रोध के कारण को समझ कर वह दबे स्वर में बोला—अगर आप मना करते हैं तो न कहूँगा।

विश्वेश्वर ने अब अपेक्षाकृत कुछ कोमलता से कहा—

असली हो या नकली, वह लाख रुपये सालाना आमदनी की मिलकियत का मालिक बन बैठा है। गाँव का जमींदार है। तुम जो उसे ठग कहते हो, यह बात क्या उसके कान में नहीं पड़ेगी? जब वह सुनेगा तब क्या वह इस गाँव में तुम्हें रहने देगा? यह तिवारी तो एक अखबार है—कल ही जाकर सब बात बक देगा। तब?

गोस्वामी डर गया। "अरे!" कह कर चुप हो रहा।

विश्वेश्वर कहने लगे—अगर वह वास्तव में ही वञ्चक हो तो और भी उससे डर कर चलना चाहिए। जो उस पर सन्देह करेगा उसे वह भारी दुश्मन समझेगा। उसे क्या वह सहज ही छोड़ेगा?

गोस्वामी—हाँ, आप का कहना सही है।

विश्वेश्वर—तब तुम्हें इतना तर्क-वितर्क करने की जरूरत क्या? तुम्हें कुछ उसके लड़के लड़की के साथ अपने लड़के लड़की का ब्याह नहीं करना है। सच्चा है या झूठा, यह मालकिन जाने या वह रानी जाने। हमारे तुम्हारे सिर में इसकी व्यथा किस लिए? "खाओ पीओ मौज करो।" दूसरे की बात में दखल क्यों दें। "कोउ नृप होइ हमें का हानी।" इस बात को खूब याद रखना। अच्छा, अब जाओ, बाहर बैठ कर उन लोगों से इधर-उधर की और बातें करो। मैं भी आता हूँ।

गोस्वामी सिर खुजलाते हुए बाहर गये। पाँच मिनट के बाद विश्वेश्वर बाबू भी वहाँ पहुँचे। प्राय साथ ही साथ टोले के बलदेव मिश्र ने आकर कहा—आप लोगों ने कुछ सुना है?

सभी ने उत्सुक होकर पूछा—क्या?

"पिछले पहर मेरी माँ डेवढ़ी पर गई थी। वह जो दो-एक

बात सुन आई है, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो आया है वह असल में भवेन्द्र बाबू ही है।

सभी ने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा—कैसे ? कैसे ?

बलदेव तब जमकर बैठा और बोला—तो सुनिए, मैं कहता हूँ। भवेन्द्र बाबू ज्योंही पालकी से उतरे त्योंही मालकिन उन्हें छाती से लगा कर अन्दर ले गईं, यह तो आप लोग देख ही आये हैं। बरामदे में पैर धोने के लिए पानी, चौकी, खड़ाऊँ आदि सामान रक्खा था। बाबू पैर धोने के लिए चौकी पर बैठे। रामा नामक नौकर कन्धे पर तौलिया रक्खे सामने आ खड़ा हुआ। उसने बाबू को प्रणाम किया। बाबू उसके मुँह की ओर देख कर बोले—"तू तो रामा है न ?" रामा की आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे।

विश्वेश्वर बाबू ने कहा—बहुत ठीक। तब तो भवेन्द्र बाबू ही हैं। कोई सन्देह नहीं। पुराना नौकर है न, देखते ही पहचान लिया।

दो तीन आदमी बोल उठे—फिर, इसके बाद ?

मिश्र महाशय ने कहा—इसके बाद मालकिन ने कहा—"देखा रामा! तूने कहा था, 'इतने दिन बाद बाबू मुझे क्या पहचान सकेंगे ?' अब बोल। तूने इसे गोदी खेलाया, दिन दिन भर अपने साथ रख कर टहलाया, बुलाया, तुझी को नहीं पहँचानेगा ?" यह सुन कर बाबू बोले—"एक चिह्न कर गया था, पहचानूँगा क्यों नहीं ?"

मालकिन ने पूछा—क्या चिह्न था ? बाबू ने कहा—"रामा से ही पूछो न, माँ"। रामा दाहिनी ओर कपाल को हाथ से टटोलने लगा। बाबू ने कहा—जिस साल मेरा जनेऊ हुआ था उसी साल की बात है। एक दिन तीसरे पहर मैंने और कविराज के —के गिरीश ने प्याज की फुलौरी मोल लेकर स्कूल के पास

पोखर के घाट पर बैठ कर चुपचाप गाई थी। रामा किसी काम से उधर गया था। उसने खाते देख लिया। देखते ही बोला—"श्याम बाबू, आप एकबारगी किरिस्तान हो गये? मालिक से जाकर कहता हूँ।" यह सुनते ही खिसिया कर मैंने एक ईंट फेंक कर मारी। वह इसके दाहिनी ओर कपार में लगी। लगते ही लोहू बहने लगा। यह 'अरे बापरे' कह कर उसी जगह बैठ गया। मैं और गिरीश दोनों झट इसे घाट पर पानी के पास ले गये और वहाँ बिठा कर अच्छी तरह लोहू धो दिया। फिर रुमाल को पानी में भिगो कर पट्टी बाँध दी। तब वह होश में आया। मालकिन ने कहा—"हाँ, हाँ, ठीक कहते हो, अब याद आया। एक दिन रामा सिर में पट्टी बाँध कर आया था। किन्तु मुझ से तो कहा था कि अमरूद के पेड़ पर से गिर पड़ने से सिर में चोट आ गई है।" रामा ने कहा—हाँ माँ, मैंने यही कहा था। मुझे डर था कि कहीं आप सरकार से न कह दें, इसी से यह झूठ बात आप से कह दी थी।

दालान भर के सभी लोग मन्त्रमुग्ध की भाँति, ये बातें सुन रहे थे। दो मिनट तक निस्तब्ध रह कर फिर सब लोगों ने बातचीत आरम्भ कर दी। किसी ने कहा—"अब कोई सन्देह नहीं रहा।" कोई बोल उठा—"मैं तो शुरू से ही यही कहता हूँ।" तिवारी ने रामदास की ओर देख कर व्यङ्ग के साथ कहा—क्या जी गोसाईं, तुम कुछ नहीं बोलते? चुप क्यों हो?

रामदास—नहीं तिवारी जी, मेरे ही समझने में भूल थी, मैं मानता हूँ। आप लोग बहुदर्शी हैं—बहुत कुछ देखा-सुना है। आपने जो कहा था, वह अक्षरशः मिल गया।

पटनायक बोले—सलाह पूछने के लिए दस पाँच गाँव के लोग इन्हीं वृद्ध तिवारी जी के पास आते हैं। क्यों आते हैं?

तुम्हारे पास कोई नहीं आता, मेरे पास कोई नहीं आता। इनके पास क्यों आता है ?

इस प्रश्न का उत्तर किसी ने नहीं दिया। केवल तिवारी महाशय प्रसन्न होकर सिर हिलाने लगे। इसके उपरान्त भवेन्द्र को कब किसने क्या करते देखा था, क्या कहते सुना था, अपने अपने हृदय-रूपी स्मृति समुद्र को बार बार आलोडन कर सभी एक एक बात निकालने लगे। इसी तरह गपशप होते होते पहर भर रात बीत गई, तब एक एक कर सभी उठे और अपने अपने घर को गये।

रास्ते में अब भी कितने ही लोग जा आ रहे हैं। कहीं कहीं स्त्रियों का झुण्ड भी आते दिखाई देने लगा। ये सब मालकिन की आश्रिता हैं, डेवढ़ी से लौटी आ रही हैं।

रामदास गोस्वामी घर आकर भोजन करने को बैठा। उसकी सहधर्मिणी पास ही बैठी हाथ में पंखा ले हवा करते करते बोली —बाबू साहब के यहाँ से आप को निमन्त्रण आया है।

"क्यों, कैसा निमन्त्रण ?"

"बाबू साहब के यहाँ कल श्री सत्यनारायण की कथा होगी। घर भर का निमन्त्रण है।"

गोस्वामी सिर झुका कर बोला—सत्यनारायण हमारे सिर-माथे पर रहें। हम निमन्त्रण में नहीं जायँगे।

स्त्री ने अचम्भे के साथ पूछा —क्यों ?

गोस्वामी इधर-उधर देख कर धीरे से बोला—न जाने कहाँ का ठग भवेन्द्र बन कर आगया है। उसकी जात का ठिकाना क्या ? कौन जाने वह किस जाति का है ? उसके घर भोजन करके क्या जाति नष्ट करूँगा ?

गृहिणी शारदा ने कहा—ठग कैसा ? सभी तो कहते हैं कि असली है।

गोस्वामी ने झिडक कर कहा—अच्छा, अगर उसकी सत्यता पर तुम्हें विश्वास हैं तो तुम चली जाना। बहू जी की पत्तल का प्रसाद मजे में पा लेना। सावित्री व्रत करने का फल होगा।

"क्यों न होगा! बहू जी क्या सावित्री नहीं हे ? वे सावित्री के ही समान हैं। नहीं तो बताओ, सोलह वर्ष का खोया पति किसी स्त्री को कभी मिला है ?"

गोस्वामी—हाँ, आज ही से उसे सावित्री का आसन मिला है। सत्यवान् भी अच्छा मिल गया।

शारदा—आप का मन तो यों ही सदा सन्देह से भरा रहता है। अभी छ महीने तक तो उससे बहूजी की भेंट भी न होगी।

"क्यों ! भेंट क्यों न होगी ?"

"सुना नहीं ?"

"नहीं, क्या बात है ?"

शारदा कहने लगी—यही कुछ देर हुई, इस घर की मँझली काकी बाबू साहब के यहाँ से लोटी हैं। वे कहती थीं, बैठक के ऊपर वाले कमरे में भवेन्द्र बाबू का बिछौना हो रहा हे। सुना है, बाबू एक व्रत कर रहे हैं। सात वर्ष तक वह व्रत किया जाता हैं। उनके साढ़े छ वर्ष तो हो गये, और छ महीने बीतने पर उस का उद्यापन होगा। तब तक वे सन्यासी ही की तरह रहेंगे। मालकिन ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, कितना ही रो कर कहा—"सोलह वर्ष तक तुमने बहुत जप तप किया है। एक व्रत पूरा न हुआ तो न सही, इसके लिए चिन्ता ही क्या ! मैं अब तुम्हारा गेरुआ कपडा न देख सकूँगी।" इस पर शायद बाबू ने

कहा है—माँ, यह व्रत पूर्ण हो जायगा तो मेरी १२० वर्ष की आयु होगी। इतने दिन कष्ट सह कर छः महीने के लिए उसे नष्ट कर दूँ!—यह सुन कर मालकिन राज़ी होगई हैं। अभी वे गेरुआ पहने रहेंगे—हविष्य भोजन करेंगे—स्त्री का स्पर्श नहीं करेंगे।

रामदास गोसाँई ने अब कोई मतामत प्रकट नहीं किया, चुपचाप भोजन करके उठ बैठा। मन में कहने लगा—बड़ टेढ़ा मामला है। कौन जाने सच्चा भवेन्द्र है या नहीं। कुछ भी समझ में नहीं आता।

---

[६]

गोपाल भोजन के अनन्तर माँ से सोने की आज्ञा लेने गया। कहा—माँ, मैं अब सोने जाऊँ ?

माँ—बेटा, एक बात कहती हूँ। मानोगे ?

"क्या ?"

बहू से एक बार भेंट करते जाओ। भेंट करने में क्या दोष है ?

गोपाल झंझट में पड़ा। क्योंकि उसने व्रत धारण करने का बहाना किया है। इसका कारण और कुछ नहीं—सिर्फ यही कि बहूजी के साथ कुछ दिन मुलाकात न हो। इस बेमौके की जगह उसके। मन में कुछ संकोच था। जब वह भवेन्द्र बन कर आया है तब सर्वतोभाव से भवेन्द्र तो बनना ही पड़ेगा—तो भी कुछ समय टल जाय तो अच्छा है। जड़काले में स्नान करने के लिए जाकर लोग जैसे पानी के पास बैठ कर कुछ विलम्ब करते हैं वैसा ही भाव गोपाल के मन का भी था।

उसे चुप देख कर कमला ने कहा—वह रानी तो हमारी सती सावित्री है। उसका मुँह देखते ही दुःख से मेरी छाती दरक जाती है। अगर आज तुम उससे भेंट नहीं करोगे तो उसके मन में बड़ी चोट लगेगी। यह बात तुम नहीं समझते ?

गोपाल—जब तक व्रत समाप्त न हो ले तब तक ऐसा करना ठीक होगा ?

"ठीक क्यों नहीं है ? इसमें तो कोई दोष नहीं है। तुम ने तो कहा है, स्त्री का स्पर्श निषिद्ध है। वह अभी तुम्हें न छूएगी। वह तुम से दूर ही रहेगी। दूर ही से तुम्हें प्रणाम करके,

तुम्हें नजर भर देख कर, अपना जी ठंडा करेगी। मुँह से एक आध मीठी बात करने में क्या दोष है ?"

उनका आग्रह देख कर गोपाल राजी हो गया। बहू जी को देखने के लिए उसके मन में कुछ कम कुतूहल न था।

"तो यहीं उसको बुलाये देती हूँ।" कह कर माँ जी उठ गईं।

यह कमरा गोपाल के रहने के लिए आज ही सजाया गया है। बहू जी के कमरे से कितना ही असबाब, तसवीरें और पुस्तकें आदि यहाँ लाई गई हैं।

माँ के चले जाने पर गोपाल ने बत्ती तेज कर दी। क्षण भर में रेशमी कपड़े की धीमी फरफराहट और भूषणों की मन्द झनकार सुन कर, उस ने दरवाजे की ओर देखा—एक अर्धावगुण्ठित युवती आ रही है। चौखट लाँघ कर वह कमरे में पैर रखते ही रुक गई। नीचा सिर कर के सलज्ज भाव से खड़ी हो रही।

गोपाल कुरसी पर बैठा था। वह उठ कर खड़ा हो गया, बोला—आओ।

बहू जी धीरे धीरे कुछ दूर और आगे बढ़ आई। गोपाल के सामने गले में आँचल लपेट घुटने टेक हाथ जोड़ कर धरती में सिर भिड़ाने का उसने उपक्रम किया।

गोपाल समझ गया कि यह प्रणाम करने को उद्यत है। तब उसने व्यग्र होकर कहा—ठहरो, ठहरो, प्रणाम मत करो—अभी मैं अशौच में हूँ।

बेचारी दुविधा में पड़ गई। उसने कहना चाहा—'मेरे लिए आप किसी भी दशा में अशुचि नहीं हैं।' किन्तु यह बात वह मुँह से न निकाल सकी। गोपाल की ओर देख कर केवल "कोई हर्ज नहीं।" कह कर उसने प्रणाम किया।

गोपाल ने उसका कोमल कण्ठ-स्वर सुना—अश्रुजल से पवित्र दोनों आँखें देखीं,—इस कारण उसके सिर से तलुवे तक मानो एक बिजली का तार दौड गया।

बहू जी उठ खड़ी हुई। सामने रक्खे हुए सोफा को दिखा कर गोपाल ने कहा—"बैठो।" रत्नकला उस पर बैठ गई।

उसके बैठने पर गोपाल ने पूछा—कैसी हो?

कोमल स्वर में उत्तर मिला—अच्छी हूँ।

दो मिनट तक दोनों चुप रहे। फिर गोपाल ने विवश होकर पूछा—तुम को मेरा स्मरण है?

रत्नकला सिर झुकाये हुए ही बोली—जी हाँ।

फिर दोनों चुप। निःशब्द रात है। भीतर से बाहर तक कहीं किसी तरह का शब्द सुनाई नहीं देता। इसी समय घड़ी में टन् टन् कर ग्यारह बज गये।

घड़ी की आवाज बन्द होने पर गोपाल ने पूछा—सब सुन चुकी हो न?

रत्नकला—सुन चुकी हूँ।

"अभी छः महीने तक मुझे इसी तरह रहना पड़ेगा।" अब की बार गोपाल के कण्ठ से कुछ नैराश्य की ध्वनि व्यंजित हुई।

रत्नकला के दोनों होंठ हिलने लगे, मानो वह कुछ कहने को हो। किन्तु मुँह से कोई बात नहीं निकली। आँचल के एक छोर को बायें हाथ में पकड कर, नीची दृष्टि किये, रेशम के फूलों की जाँच में मानो उसने ध्यान लगा दिया।

गोपाल ने कहा—तुम दुःखित तो न होगी?

इस दफे बहू जी ने सिर उठाया। मुस्कुरा कर गोपाल के मुँह की ओर देख कर पूछा—क्यों?

रत्नकला के दोनों नेत्र यह दूसरी वार गोपाल के ऊपर स्थापित हुए। उस दफे अश्रुजल से पवित्र थे, और इस दफे थे हास्यच्छटा से विकसित। गोपाल का सिर घूमने लगा। उसको चुप देख रत्नकला अत्यन्त मीठे स्वर में वोली—यदि आप के दर्शन सन्ध्या समय एक वार प्रतिदिन हो जाया करें तो दुःखित न हूँगी।

गोपाल ने देखा कि रत्नकला का मुँह स्नेह, सरलता, और पवित्रता से चमचमा रहा है। स्त्री के मुँह में ऐसी दिव्य ज्योति उसने इसके पूर्व कभी नहीं देखी थी। स्त्रियों में इतनी सुकुमारता इतना स्नेह, इतनी भक्ति उसके लिए एकदम नया दृश्य है।

अब क्या कहना चाहिए, गोपाल व्याकुल होकर यही सोच रहा था, पर कोई वात उसके चित्त पर नहीं चढती थी। वह चाहता था कि रत्नकला अब किसी तरह यहाँ से चली जाय, तभी कुशल है। परन्तु क्या कह कर वह उसे विदा करे, यह उसके ध्यान में नहीं आता था। उसके मन का भाव समझ कर रत्नकला कोमल स्वर में वोली—आप वहुत थके हुए हैं, रात भी वहुत हो गई, अव सोने को जाइए।

गोपाल ने एक ठंडी साँस लेकर कहा—हाँ, अव जाता हूँ। कल फिर भेंट होगी।

वाहर के कमरे के ऊपर सूनसान कोठे में दूध के फेन सदृश मुलायम विछौने पर गोपाल लेट गया। देर तक उसे नींद नहीं आई। केवल रत्नकला के मनोहर रूप का वह मन ही मन ध्यान करने लगा।

[७]

गोपाल की जब नींद टूटी तब धूप निकल आई थी। तीन ओर की दीवारों में दो दो बडी बडी खिडकियाँ हैं, सब खुली हैं। बिछौने पर लेटा हुआ गोपाल खिडकी की राह से बाहर की ओर देखने लगा। आम, कटहल, जामुन और अमरूद आदि के अनेक पेड दिखाई दे रहे हैं। आम के पेडों में अनेक आकार के छोटे बडे आम झूल रहे हैं—अधिकांश अभी हरे हैं। किसी किसी ने कुछ रङ्ग भी पकडा है। जामुन के पेड भी हरे, लाल और काले रङ्ग के फलों के बोझ से झुक गये हैं। बाग के इन पेडों को गोपाल देखने लगा और सोचने लगा—ये सब मेरे हैं, सब का मालिक मैं ही हूँ।

जिस कमरे में गोपाल सोया है उसे उसने रात को अच्छी तरह नहीं देखा था, अब स्थिर हो कर ध्यान से देखने लगा। बहुमूल्य वस्तुओं से कमरा सुसज्जित है। कुछ अन्तर पर एक बहुत बडी गोलाकार सगमर्मर की टेबल है। वह लकडी के नक्काशी-दार मोटे पाये की तीन मजबूत शाखों पर सुशोभित है। दोनों ओर, दीवार के आमने-सामने, चार दीवालगीर हैं। एक बहुत बडा झाड कडी से लटक रहा है, यह अभी गिलाफ से ढका हुआ है। दो खिडकियों के बीच की दीवार के सहारे एक बडा आइना खडा है, उसमें गोपाल ने पलँग सहित अपने सम्पूर्ण अवयव का प्रतिबिम्ब देखा। इसका फ्रेम (चौखटा) सुन-हरा है। दीवारों में इधर उधर कितने ही चित्र टँगे हैं। ये सभी

विलायती हैं। गोपाल गौर के साथ असबाव को देखने लगा और मन ही मन कहने लगा, यह सभी मेरा है—सभी मेरा है।

पलँग से उतर कर दरवाजा खोलते ही दो सेवक सामने हाज़िर हुए। उन्होंने गोपाल को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। एक नौकर उसे साथ लेकर हाथ-मुँह धोने की जगह ले गया और दूसरा शयन-गृह की निगरानी के लिए रह गया।

कुछ देर में गोपाल ने लौट कर देखा—दीवान जी उसके इन्तज़ार में बैठे हैं। उन्होंने कहा—"चलो बाबू, गङ्गा-स्नान करने चलो। नाई देर से बैठा है, भद्र करा लो"। सेवक ने बाहर के बरामदे में एक कुरसी रख दी, उस पर बैठ कर गोपाल ने हजामत बनवाई।

स्नान कर लौटते लौटते आठ बज गये। गोपाल को अन्दर पहुँचा कर दीवान जी कचहरी जाने को उद्यत हुए। गोपाल ने कहा—आप कहाँ चले? यहीं पूजा पाठ करके कुछ जलपान कर लीजिए।

दीवान जी ने कहा—नहीं बाबू, मुझे बहुत कामों की झंझट है। मैं घर जा कर ही नित्य कृत्य करूँगा। अभी कचहरी का काम देखने जाता हूँ। आप कुछ जल-पान कर के आइए, तब तक मैं बैठूँगा।

गोपाल—नहीं, आप अभी मेरी प्रतीक्षा में बाहर न बैठें, सीधे घर जायँ और जल पान करके आवें। दोपहर को आज आप यहीं भोजन करें।

"बहुत अच्छा, यहीं भोजन करूँगा।" कह कर दीवान जी चले गये।

गोपाल पूजा के कमरे में जा कर अपने आसन पर बैठा। कमला देवी पास ही बैठ कर चन्दन घिस रही थीं।

उनको यहाँ बैठी देख गोपाल बड़ी विपत्ति में पड़ा। ब्राह्मण का लड़का था, गायत्री अभी तक भूला न था। वह मन्त्र याद था—किन्तु सन्ध्या के मन्त्र का उसे एक अक्षर भी याद न था। जब उसका जनेऊ हुआ था तब एक वर्ष तक उसने नियमपूर्वक सन्ध्यावन्दन किया था, किन्तु उसके बाद उसने एकदम उसकी चर्चा छोड़ दी। कब जल ले कर सिर पर छिड़कना होता है, कब किस मन्त्र से नाक बन्द करनी पड़ती है, कब आँख मूँद कर ध्यानस्थ होना चाहिए, कब दोनों हाथों में जनेऊ लेकर अञ्जलि-बद्ध हो सूर्योपस्थान करना चाहिए—यह कुछ भी उसे याद न था। माँ के सामने सन्ध्या करने की नकल करने से शायद वह उसी समय उसकी भूल पकड़ लें, इसी से गोपाल ने आसन पर बैठ कर सन्ध्या करना छोड़ १०८ बार गायत्री मन्त्र का जप करके उठना चाहा।

कमला—बेटा, पूजा हो गई?

"हाँ माँ, हो गई। हमको तो सिर्फ शिव-गायत्री का ही अधिकार है न।"

"अच्छा, तो अब कुछ जलपान कर लो।"

जलपान करके गोपाल अन्दर की बैठक में जाकर हुक्का पीने लगा। उसके मन में आशा थी कि बहुत करके बहू जी से अभी भेंट होगी। इसी से वह बीच बीच में उत्सुक दृष्टि से द्वार की ओर देख रहा था। किन्तु बहू जी तो आई नहीं, आया एक नौकर। उसने कहा—सरकार, कचहरी में दीवान जी बुलाते हैं। हुज़ूर से मुलाकात करने के लिए बहुत लोग आये हैं। एक बार चलते तो अच्छा होता।

गोपाल ने गम्भीर भाव से कहा—अच्छा, खबर कर दो कि आते हैं।

गोपाल ने पहले ही अनुमान कर लिया था कि आज

बहुत लोग मुलाक़ात करने आवेंगे। उन लोगों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, यह भी सोच विचार कर स्थिर कर रक्खा था। आज की यह भेंट उसके लिए भीषण परीक्षा थी, विशेष आशङ्का की यही जगह थी। गाँव के जो लोग भेंट करने आये हैं उनमें कोई कोई ऐसे भी होंगे, जो भवेन्द्र के विशेष परिचित होंगे, किन्तु अपनी जीवनी में उन लोगों के सम्बन्ध में उसने कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया।

गोपाल कपार ठोक कर बाहर निकला और आगत व्यक्तियों के बीच में बैठ गया। वह बड़ी सावधानी से बातचीत करने लगा। दीवान जी बीच बीच में एक-आध व्यक्ति का परिचय देने लगे। भवेन्द्र के जीवनचरित से जहाँ कुछ सहायता मिली वहाँ गोपाल सद्व्यवहार करना नहीं भूला। बाल्यकाल का कुछ कुछ परिचय देकर गोपाल ने उनका जी भर दिया। सौभाग्यवश स्थानीय मिडिल स्कूल के हेडमास्टर भी आये थे। वे नये आदमी थे। गोपाल ने उन्हीं के साथ विशेष रूप से बातचीत करना आरम्भ किया। स्कूल की हालत अभी कैसी है, कितने छात्र हैं, किस जाति के छात्र अधिक हैं, पढ़ाई कैसी होती है, स्कूल में किन किन चीजों की कमी है, वार्षिक परीक्षा का फलाफल कैसा हुआ था, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर गोपाल ने बड़े ध्यान से सुना और शीघ्र ही एक दिन आकर स्कूल देखने का वादा किया। इस तरह आध घंटा बीता। समय अधिक होते समझ कर आगत सज्जनगण क्रमश एक एक कर उठ गये। थोड़ी देर में प्राय बाहर के लोगों से घर खाली हो गया। गोपाल ने लम्बी साँस ली। किसी तरह उसकी जान में जान आई।

सब के चले जाने पर दीवान जी बोले—श्याम बाबू, लग भग दो वर्ष हो गये, मालिक हम लोगों को अनाथ कर स्वर्ग-

लोक को चले गये। इन दो वर्षों में जमींदारी का या दफ़्तर का जो कुछ काम था सब मैंने ही किया है। देखने-सुनने वाला तो कोई था नहीं। मैं अब बुड्ढा हुआ, क्या जानूँ, यदि मुझ से कुछ भूल चूक ही हो जाय। इन दो वर्षों के कागज-पत्रों को तुम एक बार देख-सुन लेते तो अच्छा होता।

गोपाल—मैं आप का हिसाब किताब क्या देखूँगा? मैं क्या जानता हूँ—क्या समझता हूँ? आप ने जो कुछ किया है, वही इतने दिनों से हुआ है और जो आप करेंगे वही अब भी होगा।

दीवान जी—काम मैं बेशक करता हूँ, आज तीस वर्ष से करता हूँ। जिस साल आप का जन्म हुआ था उसी साल बाबू साहब ने मुझे दीवान का पद स्थायी रूप से दिया था। इधर दो वर्ष के भीतर यदि मुझ से कुछ भूल हुई होगी तो कागज पत्र जाँचने से आपको मालूम हो जायगी।

गोपाल ने हँस कर कहा—आप मुझे हिसाब किताब में जितना पण्डित समझते हैं, मैं उतना नहीं हूँ। अगर होता भी तो क्या? आप भूल चूक की बात कहते हैं, सो यदि हुई ही होगी तो वह किसी न किसी दिन फिर आप की दृष्टि पर चढ जायगी।

दीवान जी—सुनो बाबू, आँखों की ज्योति क्या सदा एक सी बनी रहती है? मैं अब बुड्ढा हुआ। साठ वर्ष की मेरी उम्र हो गई। तुम एक बार सब देख-सुन लेते तो मैं निश्चिन्त हो जाता। रुपया पैसा बहुत बुरी चीज है, विकट इलजाम का घर है।

गोपाल—है तो ऐसा ही। इसी कारण तो मैं भाग गया था। परन्तु अपने सिद्धान्त पर स्थिर नहीं रह सका, फिर लौट आना पड़ा। आप लोगों को नहीं भूल सका। जब मैंने आप ही

आपने का तिरस्कार करा दिया है तब चाँदी सोने की बेडी पहिननी ही होगी। अभी दो-चार दिन ठहरिए।

गोपाल ने मुँह से यह बात कह तो दी, किन्तु ज़र जवाहिरात कितना क्या है, विशेष कर नकद रुपया कितना है,—यह जानने के लिए उसका जी तडफडा रहा था।

दीवान जी—दो-चार दिन अभी आप आराम कर लीजिए। मैं आज ही कागज़ पत्र दिखाना नहीं चाहता। स्वर्गीय बाबू साहब का वार्षिक श्राद्ध हो जाय, उसके बाद पहला काम कलक्टरी में दाखिल खारिज के लिए और जज साहब के यहाँ सार्टिफिकेट के लिए दरख्वास्त देना है। कम्पनी का जो कुछ मामला है उसके लिए कोई चिन्ता नहीं। उस पर मालिक की दस्तखत मौजूद है। हाँ, बङ्गाल बैङ्क में जो रुपया जमा है वह सार्टिफिकेट दाखिल किये बिना आपके नाम से जमा न होगा।

गोपाल ने बाहर से निर्लिप्तभाव दिखला करके पूछा—बङ्गाल बैङ्क में कितना रुपया है?

दीवान जी—पचास

"और कम्पनी का कागज़

यद्यपि मैं गृहस्थाश्रम में लौट आया हूँ तथापि जमींदारी का काम देखना सुनना मेरे लिए विशेष रुचिकर न होगा। उस काम के देखने में मेरा जितना समय जायगा उतना यदि पूजा-पाठ, शास्त्र चिन्ता और तीर्थ भ्रमण में व्यतीत होगा तो मैं विशेष सुखी रहूँगा।

दीवान जी—"यह आप क्या कहते हैं? ऐसा करने से काम कैसे चलेगा! अपनी जमींदारी आप न देखेंगे तो कौन देखेगा? मैं बूढ़ा हुआ, इस जिन्दगी का ठिकाना क्या? न जाने किस दिन आँख मूँद कर चल दूँ। आप लौट आये, इस समय यदि बाबू साहब जीते रहते, तो आप को सब समझा-बुझाकर, दिखा-सुना कर हम दोनों वृद्ध काशीवास करते।" इस समय दीवान जी का कण्ठ कुछ रुद्ध सा हो गया। स्वर काँपने लगा। वे कम्पित स्वर से बोले—किन्तु यह नहीं हुआ, मैं अकेला रह गया।

दीवानजी का भावान्तर देख कर गोपाल भी यथासाध्य सुस्त होकर चुप हो रहा। मुँह नीचा करके कुछ देर में बोला—आप धर्म कर्म करेंगे, अन्तिम अवस्था का उचित कार्य्य करेंगे, उस में मैं बाधा डालूँगा, ऐसा पामर मैं नहीं हूँ। मैंने जो कहा था उसका मतलब यही है कि मेरा भी मानसिक खिंचाव उसी ओर है—रुपये पैसे, धन-सम्पत्ति की ओर नहीं।

दीवान जी ने कहा—अच्छा बाबू, जब वह उम्र हो तब आप भी वही कीजिएगा। अभी संसार-धर्म का पालन कीजिए। ईश्वर यदि दो-चार बाल-बच्चे दें तो उन्हें लिखा पढ़ा कर होशियार करना। जब वे अपना काम सभालने योग्य हो जायँ तब आप भी चौथेपन का कार्य सम्पन्न करना। यह तो अच्छी ही बात है।

'यदि ईश्वर दो-चार बाल बच्चे दें'—इतना सुनते ही

गोपाल को रात की देखी वह जो की सूरत याद आगई। वह जी की वह मुस्कराहट और आँसू से भरे नेत्र तथा प्रफुल्ल मुख उसकी नजरों में झूलने लगा। उसको दुबारा देखने की आशा से गोपाल ने कुछ देर तक महल में प्रतीक्षा की थी, किन्तु दिन में उसकी वह आशा विफल हुई। भोजन के अनन्तर शायद वह मुँह फिर देखने को मिलेगा—यह नई आशा उसके मन को ढाढस देने लगी।

कुछ समय के अनन्तर नौकर ने खबर दी, भोजन तैयार है। तब दीवान जी को साथ ले गोपाल अन्दर गया।

[८]

भोजन के अनन्तर गोपाल ने दीवान जी को ले जाकर अपने कमरे में बिठाया। अर्दली का चपरासी रामा तम्बाकू भर कर दे गया। आराम-कुरसी पर लेट कर दीवान जी तम्बाकू पीने लगे। गोपाल एक गद्देदार कुरसी पर बैठ कर उनसे गपशप करने लगा। पास ही एक तिपाई पर चाँदी के डिब्बे में पान इलायची भरी रक्खी थी। गोपाल बातचीत भी करता था और बीच बीच में पान का बीड़ा भी खाता जाता था।

अधिकांश बातचीत जमींदारी के सम्बन्ध की ही हुई। दीवान जी ने कहा—दाखिल खारिज वगैरः के लिए दरख्वास्त देने के बाद एक बार कलक्टर साहब से भेंट करना आवश्यक है।

गोपाल ने पूछा—किस पोशाक में जाना पड़ेगा?

दीवान जी—मैं भी तो यही सोचता हूँ। गेरुए कपड़े पहन कर जाना तो ठीक नहीं मालूम होता।

गोपाल—जब मैं मठ में था तब तो गेरुए कपड़े पहन कर ही साहब सूबा से भेंट करने जाता था। मैं उस समय महन्त था, वे लोग भी इस बात को समझते थे।

"क्या क्या पहिनते थे?"

"गेरुआ रङ्ग की धोती, उसी रङ्ग का अँगरखा, उसके ऊपर गुलाबी रङ्ग का रेशमी चोगा। सिर पर गेरुआ मुरैठा, और उसी रङ्ग का पायताबा, सिर्फ जूता गेरुआ नहीं—बादामी पहनता था।"

"वह पहनावा आप साथ लाये हैं?"

"जी नहीं।"

"तो, न हो तो फरमायश देकर कलकत्ते से वैसी पोशाक बनवा लीजिए। कुछ असबाब भी तो खरीदना पड़ेगा।"

गोपाल—जी हाँ, एक बार कलकत्ते जाना आवश्यक है। खजाने में अभी कितने रुपये हैं? एक मोटरकार मोल लाने की इच्छा है।

दीवान जी—मोटरकार! उसका तो दाम बहुत ज्यादा है।

दीवान जी का स्वर सुन कर गोपाल समझ गया कि ये मना करना चाहते हैं। इसी से वह चतुराई के साथ बोला—अभी कीमती नहीं खरीदूँगा। इन दिहाती सड़कों पर दस-पन्द्रह हजार की मोटर खराब भी हो जायगी। अभी छ:-सात हजार में मामूली मोटर ले लूँगा।

दीवान जी—हाँ, इतना रुपया तो तहवील से ही मिल सकेगा। तो कब जाने का इरादा है? मैं भी दफ़्तर के कामों का उसी हिसाब से बन्दोबस्त करूँ। अभी हाथ में जो दो-एक काम हैं उन्हें जल्द खतम कर डालूँ।

गोपाल ने सोचा, यह फिर क्या आफत आई। ये मेरे साथ जाना चाहते हैं। तब तो बना-बनाया काम बिगड़ जायगा। यह कैसे होगा? कलकत्ते में परिचित लोगों के साथ भेंट हो सकती है। अगर कोई मुझे देखकर सहसा पूछ बैठे—"कहो गोपाल किधर से?" तब तो सब मिट्टी हो जायगा। इसीसे उसने कहा—"अभी निश्चय नहीं किया है कि कब जाऊँगा। कल भी जा सकता हूँ।" उसके मन का भाव यह था कि शायद इतना शीघ्र हाथ का काम निबटा कर दीवान जी कलकत्ते न जा सकें।

दीवान जी ने कहा—यदि आप कल रवाना हों तो आपके साथ जाने में मुझे कोई असुविधा न होगी। उधर से लौट

आने पर उन कामों को कर लूँगा। पाँच-सात दिन से अधिक विलम्ब तो न होगा?

गोपाल कुछ सोचने का सा भाव दिखा कर बोला—जी हाँ, विलम्ब हो सकता है। कम से कम दस बारह दिन लगेंगे। कृष्णपक्ष की चौथ को पिता जी का एकोद्दिष्ट श्राद्ध होगा। उसका भी तो प्रबन्ध करना होगा। इतने दिनों तक यहाँ आपके न रहने से यह काम कैसे चलेगा।

दीवान जी उसके मन की बात को ताड़ गये। श्याम बाबू उनको साथ ले जाना नहीं चाहता। इससे वे मन ही मन क्षुब्ध हुए। गोपाल ने अपने को अत्यन्त सदाचारपरायण ब्रह्मचारी बतलाया है—इससे दीवान जी गोपाल की आपत्ति के कारण का निर्णय करने में समर्थ न हुए। किन्तु करें क्या, कुछ उपाय नहीं। आज सबेरे ही मालकिन ने उन्हें विशेष रूप से सावधान कर कहा था—"एक बात पर खूब ध्यान रखिएगा। अभी कुछ दिन भवेन्द्र को अकेला कहीं जाने न दीजिएगा। यदि कृष्णनगर या कलकत्ते या और कहीं जाना चाहे तो आप बराबर उसके साथ रहिएगा। मन की गति कब कैसी होगी, यह कोई नहीं कह सकता। कहीं फिर न भाग जाय।" इसलिए दीवान जी को भी कौशल से काम लेना पड़ा। उन्होंने कहा—आपने अच्छी याद दिलाई। अँधेरे पाख की चौथ को श्राद्ध होगा, यह तो मुझे याद ही न था। उसके लिए अधिकांश सामग्री का प्रबन्ध तो कलकत्ते से ही कर लेना है। घी, मैदा, चीनी, मेवा और मसाले आदि सब चीजें तो कलकत्ते में ही मिलेंगी। कार्य के दो एक दिन पहले चार-पाँच हजार बम्बइया आम, दस हजार लीची, कुछ केले और अन्यान्य फल खरीद कर भेज देने का किसी को भार दे आना होगा। रसोई बनाने और पूड़ी

छानने के लिए कुछ ब्राह्मण चाहिए। अभी से उसका बन्दोबस्त करना होगा।

गोपाल—पूड़ी छानने के लिए कलकत्ते से ब्राह्मण लाना पड़ेगा? क्या यहाँ आदमी नहीं मिलेंगे? बाल्यावस्था में तो मैंने देखा है, कोई कार्य होने पर गाँव के ही लोग आकर सब प्रकार की रसोई तैयार कर देते थे।

दीवान जी—अब वह बात नहीं है। सोलह वर्ष पहले आप जो देख गये थे वह जमाना गया। तब की बात ही और थी। उस समय हरेक टोले-महल्ले में दो-चार उत्साही, परोपकारी, सुशील ब्राह्मण मिलते थे। कहीं कोई विशेष कार्य होने पर वे अपने आप काम करने लग जाते थे। वे लोग पहले समझते थे कि हमारे हाथ की बनी चीज दस-पाँच सुपात्र ब्राह्मणों के मुँह में पड़ेगी, यह हमारा सौभाग्य है। किन्तु अब सोचते हैं—क्या हम रसोईया ब्राह्मण हैं, क्या हम किसी के नौकर हैं? अब ऐसे काम को वे अपमानजनक समझते हैं।

गोपाल ने देखा, दीवान जी कलकत्ते साथ गये बिना न मानेंगे। खैर, जब जैसा होगा देखा जायगा। अब वहू जी का खाना-पीना हो गया होगा—इनके जाने से वह आ सकती है। इसी से कुछ समय तक चुप रह कर गोपाल ने मुँह के पास हथेली लगा कर जमहाई ली।

दीवान जी ने इस पर लक्ष्य कर के कहा—अच्छा तो मैं इस समय जाता हूँ, आप आराम कीजिए। यहीं बिछौना कर देने को कह दूँ?

गोपाल—बहुत अच्छा, कह दीजिए।

"रामा, ओ रामा" पुकारते पुकारते दीवान जी चले गये।

गोपाल की आशा पूर्ण हुई। थोड़ी देर के बाद घूँघट काढे, दृष्टि नीची किये, सकुचाती हुई बहू जी उस कमरे के भीतर आई। वह जरीदार किनार की सफेद साड़ी और गुलाबी रङ्ग की रेशमी अँगिया पहने हुए थी। हाथों में सोने की चार-चार चूड़ियाँ और पैरों में चाँदी के नूपुर थे।

रत्नकला को देख गोपाल जरा सकपका कर बोला—कहाँ जा रही हो?

रत्नकला अचम्भे के साथ बोली—कहीं तो नहीं।

गोपाल ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—नहीं, नहीं, यही पूछता हूँ कि इतनी देर तक कहाँ थी?

"पूजा के घर में थी।" कह कर रत्नकला अलग चुपचाप खड़ी रही।

गोपाल ने कहा—बैठो।

रत्नकला ने सलज्ज भाव से खुले द्वार की ओर देखा। गोपाल ने उसके मन का भाव समझ कर परदे को गिरा दिया, फिर कुरसी पर बैठ कर रत्नकला को दूसरी कुरसी पर बैठने का इशारा किया। वह कुरसी पर बैठ गई और अपना एक हाथ दूसरे हाथ पर रख कर सिर झुकाये हुए बोली—तो आप कलकत्ते जायँगे?

गोपाल—हाँ, जी तो चाहता है।

कुछ देर तक चुप रह कर बहू जी ने कातर स्वर से कहा—अभी ऐसी क्या जल्दी है?

गोपाल अपराधी की भाँति बोला—कई काम है।

इस बार रत्नकला ने सिर उठाया और डबडबाई हुई आँखों से गोपाल की ओर देख कर कहा—माँजी रो रही हैं सो।

गोपाल ने उत्कण्ठित स्वर से पूछा—माँ क्यों रो रही है?

रत्नकला—आप अभी क्यों जाते हैं? दीवान जी तो जा ही रहे हैं। आपको जिन चीजों की जरूरत हो, लिख कर उन्हें दे दीजिए। वे लेते आवेंगे।

गोपाल ने धीरे धीरे कहा—कुछ कपडे सिलवाने होंगे, खुद न जाने से—।

रत्नकला ने कहा—बस, इतने से काम के लिए आप वहाँ जाने का कष्ट उठावेंगे? दीवान जी कलकत्ते की सब से बडी दूकान के होशियार दरजी को अपने साथ लिये आवेंगे। कई प्रकार के कपडों का नमूना भी लेते आवेंगे। आप यहीं बैठे कपडे पसन्द कर दरजी को नपा दीजिएगा।

जरा ठहर कर—"अच्छा, यही सही। अगर माँ दुःखित होती है तो मैं अभी न जाऊँगा।" कह कर गोपाल ने डिब्बे से पान का एक बीडा निकाल कर खाया। डिब्बे को रत्नकला की ओर बढा कर कहा—लो, पान खाओ।

रत्नकला ने धीरे धीरे अपने काँपते हुए हाथ को बढा कर एक बीडा ले लिया। उसे हाथ ही में लिये रही, खाया नहीं।

गोपाल ने पूछा—तुम भोजन कर चुकी? माँ खा चुकी?

"जी नहीं। खाने को जा रही थी, इसी बीच में दीवान जी से आपके कलकत्ते जाने की बात सुन कर रोने लगीं।"

गोपाल ने मुस्कुरा कर कहा—मालूम होता है, इसी से माँ ने तुमको भेज दिया है।

रत्नकला ने सिर हिला कर सूचित किया—हाँ।

"ऐसा न होने से शायद तुम अभी नहीं आती" कह कर गोपाल मुस्कुराने लगा।

रत्नकला ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। केवल उस के होठों पर कुछ हँसी की झलक दिखाई दी।

इतने में रामा ने बाहर से कहा—बहू जी, बड़े बाबू का बिछौना किस कमरे में होगा?

"मैं आती हूँ"—कह कर बहू जी ने गोपाल से पूछा—माँ के कमरे में आप का बिछौना कर देने को कहूँ या यहीं आराम कीजिएगा?

गोपाल ने कहा—यहीं लेट रहूँगा।

इस कमरे में पलँग आदि कुछ न था। बहू जी ने द्वार के पास जाकर कहा—रामशरण, तुम्हारे मालिक इसी कमरे में आराम करेंगे। एक पलँग लाकर यहीं बिछौना कर दो।

रामा चला गया। रत्नकला फिर कुरसी पर आ बैठी। दो एक बातें करके गोपाल ने कहा—अब फिर किस समय तुम से भेट होगी?

"क्यो?"

यह कहते समय बहू जी के होंठ जरा काँप उठे। यह गोपाल की दृष्टि से छिपा नहीं रहा। वह बोला—तुम्हारे दर्शन की लालसा लगी रहती है इसी से।

रत्नकला फिर होठ कँपा कर जरा मुस्कुराहट के साथ बोली—इस्!

गोपाल—क्यों? क्या विश्वास नहीं हुआ?

रत्नकला ने सिर हिलाकर जताया—नहीं।

गोपाल—विश्वास न होने का कुछ कारण भी तो सुनूँ?

रत्नकला चुप हो रही। गोपाल के बहुत हठ करने और कसम

दिलाने पर वह बोली—मुझे छोड़ कर जो आप कलकत्ते जा रहे थे।

गोपाल—दो ही दिन के लिए तो जाता था।

"वाह! अभी आप को अच्छी तरह देखा भी नहीं, इतने में फिर चलने की ठान दी।"

रामा बाहर से बोला—पलँग लाया हूँ सरकार।

गोपाल ने कहा—अच्छा, तुम भोजन करने को जाओ। बहुत देर हो गई। मैं दो घण्टे के बाद सो कर उठूँगा। तब धूप भी कुछ मन्दी हो जायगी। तुम आकर मुझे अन्दर के बग़ीचे में टहलाने के लिए ले चलना।

"बाग में टहलने चलिएगा?"

"तुम आओ तो हम तुम साथ साथ चलें।"

रत्नकला का मुँह लज्जा से लाल हो गया। उसने कहा—दोनों आदमी एक साथ नहीं।

"तो मैं पहले चला जाऊँगा, तुम पीछे से आ जाना।"

"नहीं—दिन में! लोग देख कर भला क्या कहेंगे?"

गोपाल ने खिन्न होकर कहा—तुम न जाओगी तो मैं जाकर क्या करूँगा?

रत्नकला ने कहा—आप आइएगा। मैं पहले ही से वहाँ पहुँच जाऊँगी।

"जरूर।"

"जरूर।"

"कहीं भूल न जाना।"

"आप न भूलिएगा" कह कर रत्नकला मुस्कुराती हुई चली गई।

एक दासी के साथ साथ रामा भीतर आकर बड़े बाबू का पलँग बिछाने लगा।

---

[१०]

दिन के चौथे पहर गोपाल से बाग में रत्नकला की भेट हुई, किन्तु केवल पाँच मिनिट के लिए। गोपाल ने इधर उधर घूम-फिर कर रत्नकला को ढूँढ निकाला। परन्तु वह मारे लज्जा के सिमट कर बैठ रही। किसी ओर से आकर कहीं कोई देख न ले, इस आशङ्का से उसके नेत्र चञ्चल हो उठे और छाती धडकने लगी। उसकी यह अवस्था देख गोपाल ने उसे छुट्टी दे दी। वह पेडों की ओट से अपने को छिपाती हुई अन्दर चली गई। गोपाल बाग की शोभा देखता हुआ टहलने लगा।

सन्ध्या होने के कुछ पूर्व अन्दर महल के पिछवाडे के दरवाजे से कनकलता और शशिकला दोनों गङ्गा-तट की ओर चलीं। कनकलता जब शुरू शुरू में आई थी तब वह शशिकला के साथ बहुत मिलती जुलती न थी। शशिकला उस समय अपने दुःख के भार से बडी शोकाकुल और म्रियमाण थी। कनकलता भी बहूजी के मन को अपने हाथ में करने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहती थी। किन्तु जब से बहूजी कनक के प्रति अप्रसन्न होने लगी हैं तब से कनक ने धीरे धीरे शशिकला के साथ मेल जोल बढाया है। इधर कई दिनों से तो कनक या शशिकला को बहू जी से मिलने का बहुत ही कम अवसर मिला है। इसलिए दोनों में कुछ विशेष घनिष्ठता हो गई है। कनक बडी चालाक और बुद्धिमती थी। वह अच्छी तरह समझ गई थी कि शशिकला का जीवन एक गूढ रहस्य की यवनिका के भीतर छिपा हुआ है। वह रहस्य क्या है? उसका उद्घाटन करने की कई दिनों से विशेष चेष्टा करके भी वह कृतकार्य नहीं हो सकी।

सूर्यास्त हो गया है। गङ्गा की निर्मल धारा में स्नान करके दोनों युवतियाँ किनारे आईं। सीढी पर बैठ कर दोनों शरीर को मलने लगीं।

शशिकला ने कहा—तो बहू जी खूब खुश हुई हैं ?

कनक—ऐसी वस्तु पाकर कौन खुश नहीं होता। क्या तुम न होगी ?

शशिकला को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसकी भौंहें कुछ ऊपर को चढ गईं। कनक गुनगुना कर गाने लगी—

आय गये घर आज कन्हाई।

दुख की रात बीत गई सिगरी भई रैन सुखदाई।
निरख पीय मुख चन्द चार छबि उर शीतलता छाई॥
मानव जन्म सफल करि मान्यो भरि भुज कण्ठ लगाई।
जनसीदन जीवन-फल पायो हरिपद प्रीति बढाई॥

"यह तो बताओ, बडे बाबू की यह कैसी अक्ल है ? यह व्रत ही था—छ महीने तक यदि इतना परहेज ही रखना था तो आने में इतनी शीघ्रता क्यों की ? छ महीने के बाद ही चले आते ! यह आना और न आना एकसा है। देखो न, कैसा अन्याय है।"

शशिकला—क्यों ? अन्याय क्या है ? घर में बूढी माँ हैं। यदि वे छ महीने के भीतर ही चल बसतीं ! तब तो बेटे का मुँह न देखने पातीं।

"मैंने माता की बात नहीं सोची, बहू जी ही का खयाल किया है।"

शशिकला—छ महीने पहले घर आगये, यह क्या बहू जी के लिए अच्छा नहीं हुआ ? स्वामी की सेवा करना, स्वामी का दर्शन पाना, यह क्या स्त्रियों के लिए कम सौभाग्य है ?

कनक—नहीं, नहीं, इतनी परिडताई दिखलाने की जरूरत नहीं। मान लो, अगर वह भवेन्द्र न हो, कोई दूसरा ही हो?

यह सुन कर शशिकला काँप उठी। उसने कहा—राम राम, ऐसी बात भी कोई मुँह से निकालता है? ये भवेन्द्र बाबू न होते तो घर के लोग क्या अब तक सन्देह नहीं करते?

कनक ने कहा—कभी कभी ऐसा हो जाता है। कोई बहुत दिन से लापता है या उसके मरने की ख़बर उड़ गई है, ऐसी अवस्था में कोई ठग, धन-सम्पत्ति के लोभ से, वही आदमी बन कर आ गया। एक बार हिन्दी रङ्ग-भूमि (थियेटर) में इसी तरह के एक नाटक में मैं—इसी तरह का एक नाटक मैंने देखा था।

शशिकला—पहले किसी ने नहीं पहचाना?

कनक—किसी ने नहीं।

"घर में स्त्री थी?"

"थी, और वह भी युवती।"

"जो आया था, उसका कोई इस तरह का नियम व्रत भी था?"

"नहीं, सो नहीं था।"

शशिकला ने हँस कर कहा—अगर ये सचमुच ठग होते तो इनका भी कोई व्रत नियम नहीं होता।

कनक—इनका ठग न होना इस बात से प्रमाणित नहीं होता। बल्कि यदि ये ठग हों तो यह अवश्य प्रमाणित होता है कि नाटक के उस बेईमान वञ्चक से यह जीता-जागता वञ्चक अधिक बुद्धिमान् है।

शशिकला ने कहा—छि:, ऐसी बात मन में भी नहीं लानी चाहिए। वह जी हमारी सतीमूर्ति हैं। भगवान् क्या ऐसे निठुर निर्विवेकी हो सकते हैं?

स्नान कर चुकने पर सूखे कपडे पहन दोनों, सीढ़ियों पर, धीरे धीरे पैर रखती हुई ऊपर गई । कोमल स्वर में बातचीत करती हुई दोनों बाग के रास्ते अन्दर महल की ओर जाने लगीं। शशिकला आगे और कनक पीछे थी।

कुछ आगे बढ कर बाग के वृक्षों की आड से बाहर होते ही शशिकला सहसा खडी हो गई। कनकलता ने आगे जाकर देखा, कुछ अन्तर पर गोपाल खडा है। वह इन दोनों को देखते ही झट मुँह मोड पीछे की ओर लौट गया और धीरे धीरे उसी तरफ टहलने लगा।

कनकलता ने देखा, शशिकला का चेहरा पीला पड गया है, उसके हाथ पैर काँप रहे हैं, कलेजा धडक रहा है। उसने कनक की ओर देख कर विस्मय-भरे स्वर में पूछा—ये कौन हैं ?

शशिकला का भाव और चेष्टा देख कनक ने कुछ अचम्भे में पड कर कहा—और कौन होगा ?—वही बाबू है।

शशिकला—बाबू ?—कौन बाबू ?

"श्याम बाबू, बडे बाबू, और भवेन्द्र बाबू जो कहो, सब यही है,—या जो भवेन्द्र बाबू बन कर आया है वही है।"—कह कर कनक साकांक्ष दृष्टि से शशिकला के मुँह की ओर देखने लगी।

शशिकला ने कहा—तो जो भवेन्द्र बाबू बने हैं ये वही हैं ?

कनकलता के मन का सन्देह और भी बढ गया। वह करीब करीब सत्य के समीप आ पहुँचा। कनक ने कहा—ये वही हैं यह मैं नहीं जानती। तुम जानो या वे जानें।

शशिकला चित्रवत् खडी होकर एक दृष्टि से कनक के मुँह देखने लगी। बहुत देर के बाद बोली—मैं नहीं समझ सकी, तुम क्या कहती हो।

कनक ने हँस कर कहा—नहीं जी, कोई ऐसी बात तो मैं

नहीं कहीं। यही पूछा है कि आज कौन तिथि है। ,चलो, चलो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी ?

अन्दर जाकर दोनों अपनी अपनी कोठरी में गईं। कनकलता अकेली बैठ कर शशिकला के सन्दिग्धभाव पर आकाश-पाताल की बात सोचने लगी। किन्तु आज की इस घटना का कोई निर्णय न कर सकी। कनक ने इतना तो निश्चय कर ही लिया कि ये दोनों षड्यन्त्र करके यहाँ नहीं आये हैं। और, परस्पर इन दोनों के परिचित होने में भी सन्देह नहीं। तो यह आदमी ठग है या सचमुच भवेन्द्र है ? महन्ती करते समय शायद शशिकला के साथ इसका परिचय हुआ हो और इसी के विच्छेद से कदाचित् उसे घर आने की सूझी हो। वह इन बातों का कुछ भी निर्णय नहीं कर सकी।

रात के नौ बजे गोपाल भोजन करने बैठा। गरमी बहुत मालूम होने के कारण खुली छत पर चौका लगाया गया। सामने एक बड़ी सी लालटेन जल रही है। कुछ दूर पर एक ,अँधेरी कोठरी में, खुली खिड़की के पास खड़ी हो, शशिकला स्थिर दृष्टि से गोपाल की ओर देख रही थी। इसी समय दबे पैरों पीछे से आकर कनक ने उसकी आँखें मूँद लीं।

शशिकला बोली—कनक दीदी !

,कनक ने कहा—दीदी ! दीदी !—तुम से क्या मैं उम्र में बड़ी हूँ जो मुझे दीदी कहती हो ?

शशिकला अधीर होकर बोली—छोड़ो, छोड़ो, आँखों पर से हाथ हटा लो।

"नहीं, हाथ नहीं हटाऊँगी। एक रईस का लड़का खाने को बैठा है और तुम उसकी थाली में नजर डाल रही हो ! बेचारे को बदहज़मी हो जायगी।"

शशिकला ने कनक के दोनों हाथ पकड़ कर रूखे स्वर में कहा—ओफ् ! हाथ हटाओ, यह क्या कर रही हो ?

कनक ने हाथ हटा कर कहा—लो देखो, जी भर कर देख लो। जिसके साथ जिसका जी लग जाता है उसका मुँह देखने से भी सुख मिलता है। "जाको मन रम जाहि सों ताहि ताहि सों काम।" अब यह बताओ, इनसे तुम्हारी कहाँ गपशप हुई थी ?

शशिकला—गपशप !

"हाँ हाँ, गपशप,—परिचय-मुहब्बत, बातचीत—कहाँ हुई थी ?"

"कौन कहता है ?"

"कहता कौन है ? उन्होंने खुद कहा है।"

"किससे ?"

"बहूजी से।"

शशिकला अचम्भे के साथ बोली—बहू जी से क्या कहा है ?

"यही कि इस स्त्री को मैं पहचानता हूँ।"

शशिकला ने दृढ़ता भरे स्वर में कहा—बहूजी से यह बात कही है ? कभी नहीं।

कनक ने कहा—तो जी खोल कर असल बात क्यों नहीं कहतीं ?

शशिकला चुपचाप वहाँ से चल दी। वह अपनी कोठरी में जा, बिछौने पर धड़ाम से गिर कर, तकिये में मुँह छिपा कर रोने लगी।

उस दिन, रात को, भोजन आदि के अनन्तर बहुत रात तक कनकलता की बन्द खिड़की के छेद से रोशनी बाहर निकल रही थी। बिछौने पर बैठ कर उसने, सोने के हिरन को, एक बड़ी लम्बी चिट्ठी लिख कर लिफाफे में डाल एक बजे रात को बत्ती बुझाई।

चौथा भाग

[१]

कलकत्ते के उत्तरी भाग में, एक दो-मंजिले मकान के कमरे में बैठ कर भूपेन्द्रनाथ उर्फ स्वर्ण-मृग ध्यान लगा कर एक पत्र पढ रहा था। उसके सामने टेबल पर डाक से आया हुआ एक खुला लिफाफा पडा है। पहली चिट्ठी पढ कर भूपेन्द्र ने दूसरा पत्र उठाया। यह पहली चिट्ठी की भाँति बहुत लम्बा-चौडा नहीं है। इसमें नीचे लिखी हुई सतरें थीं—

वासुदेवपुर,
ज्येष्ठ सुदी ५

प्रिय भूपेन्द्र बाबू,

आज आपकी चिट्ठी आई। मैंने जैसा सन्देह किया था, आप ने भी वैसा ही किया है। यह जान कर प्रसन्न हुई। मुझ से आपने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर अब तक मैं कुछ भी संग्रह नहीं कर सकी। कल दीवान जी कलकत्ते जायँगे। वहाँ पाँच-सात दिन ठहरेंगे। उनका वहाँ का पता—नं० ६५ मानिकतला स्ट्रीट है। हो सके तो उनसे भेंट कीजिएगा और जो कुछ कहना-सुनना हो, कहिए-सुनिएगा। आप लिखते हैं, 'कुछ दिन और भी मेरा यहाँ रहना आवश्यक है।' किन्तु आजकल वह जी मुझ पर प्रसन्न नहीं हैं। उनके "सहचर" मिल गये हैं, अब "सहचरी" की आवश्यकता नहीं। आप दीवान जी से चर्चा छेड कर पूछिएगा। बस।

आपकी अनुगता
कनक।

पत्र पढ़ कर भूपेन्द्र ने घड़ी की ओर देखा—तीन बजे हैं। सोचा, जाऊँ, अभी जाने से जरूर ही भेंट होगी। देर करके जाने से शायद वे बाहर चले जायँ।

भूपेन्द्र ने कुरसी से उठ आलमारी खोली। कई एक कपड़े निकाल कर उन्हें वह गौर से देखने लगा। देखा, एक बहुत पुरानी चपकन है, छाती के पास कुछ फटी भी है। उसी को पसन्द किया। कई जोड़े धोतियों में जो कम दाम की जीर्णप्राय थी उसे बाहर निकाल कर आलमारी बन्द कर दी।

वह धोती और फटी चपकन पहिर कर और मैली सी शान्तिपुरी चादर कन्धे पर डाल कर भूपेन्द्र सीढ़ी से नीचे उतरा। मकान से बाहर होने के पूर्व उसकी दृष्टि छतरी पर पड़ी। वह बहुत बढ़िया थी। उसमें चाँदी की मूँठ लगी थी। छेदाराम नौकर को वहाँ बैठा देख कर बोला—तुम्हारे पास छतरी है?

"जी हुजूर।"

"ले आ।"

छेदाराम दौड़ कर छतरी ले आया। भूपेन्द्र ने देखा वह पुरानी और सस्ते दाम की है, इससे पसन्द आगई। अपनी छतरी छेदाराम के हाथ में देकर कहा—यह ऊपर रख आओ। तुम्हारी मैं लिये जाता हूँ।

छेदाराम विस्मित होकर मालिक का मुँह देखने लगा। जब उसकी दृष्टि उनकी फटी चपकन और मैली चादर पर पड़ी तब तो उसे और भी अचम्भा हुआ। कारण क्या है, अनुमान करने की चेष्टा करने लगा। "जाओ न, मुँह फैला कर खड़े क्यों हो रहे?" कह कर भूपेन्द्र चला गया। छेदाराम ऊपर जाकर बड़ी देर तक बैठे बैठे सोचता रहा। वह इतने दिन से यहाँ नौकरी

करता है, इस भेद से तो उसने बाबू को कभी बाहर जाते नहीं देखा। सोचते सोचते उसे एक बात याद हो आई। 'उसके गाँव के शिवदास मोदी ने भी एक दफे ऐसा ही किया था। शिवदास की दूकान खूब चलती थी। उसके गोले की बड़ी शोहरत थी। आस पास के गाँवों के लोग उसी की दूकान से सौदा खरीदते थे। रुपये से बढ़ कर कोई भूषण नहीं, उसके प्रभाव से शिवदास का चेहरा कुछ अच्छा दीखता था और बदन भी बिना ही तेल के चिकना मालूम होता था। उसी अवसर पर एक दिन उसके नाम इनकम-टैक्स का नोटिस आया। शिवदास बड़ा चतुर आदमी था। वह बखूबी समझ गया कि ऐसा चेहरा देखने से हाकिम एक भी न सुनेगा। इसी से उसने दो दिन स्नान नहीं किया। मामूली तरह से कुछ खाकर चेहरे को फीका बना लिया। फटे-पुराने कपड़े पहन दरिद्र का सा भेष बना कर वह कचहरी को गया। इनकम टैक्स आफिसर के सामने खड़ा होकर ऐसे कातर स्वर से रोया-गिड़गिड़ाया कि हाकिम ने उसका टैक्स एकबारगी माफ़ कर दिया।' इस घटना का स्मरण होते ही छेदाराम को थाह मिल गई। बड़े अनुभवी की भाँति सिर हिला कर बोला—समझ गया। बाबू इनकम-टैक्स के हाकिम का दरबार करने जा रहे हैं।

इधर भूपेन्द्र ने सदर रास्ते पर पहुँच कर देखा, धर्मतला की ओर ट्रैम गाड़ी जा रही है। पास में पैसा था, तब भी वह ट्रैम पर नहीं चढ़ा। उस धूप में छतरी लगाये पैदल ही चला।

थोड़ी देर में भूपेन्द्र मानिकतला में ६५ नंबर के मकान के पास पहुँचा। एक उड़िया आदमी को देख कर पूछा—यह मकान किसका है?

उसने कहा—सुबोध बाबू का।

"बाबू रघुनाथसिंह यहाँ आये हैं ?"

"कौन रघुनाथसिंह ?"

"वासुदेवपुर रियासत के मैनेजर ।"

तब अर्दली ने कहा—ओ ! वासुदेवपुर के दीवान जी

"हाँ, हाँ !"

"आये हैं ।"

"उनको मेरे आने की इत्तिला कर दो ।"

"क्यों ?"

"काम है ।"

"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"इसी शहर से ।"

"क्या कहूँ ?"

"कहना, भूपेन्द्र बाबू आये हैं। आप से भेंट करना चाहते हैं।"

"अगर पूछें, कौन भूपेन्द्र बाबू ?"

"भूपेन्द्र बाबू वकील ।"

वकील की बात सुन कर अर्दली को कुछ आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—तो आप वकील हैं ?

भूपेन्द्र ने मुस्कुरा कर कहा—हाँ, किन्तु मेरे बदले यदि तुम वकील होते तो अच्छा होता। खासी जिरह कर रहे हो।

अर्दली इस परिहास का मर्म समझ कर बोला—अच्छा, आप इस कमरे में बैठिए, मैं दीवान जी को ख़बर देता हूँ।

कमरे में जाकर भूपेन्द्र टेबल के पास एक कुरसी पर बैठ गया। कमरा साधारण रीति से सुसज्जित है। दीवारों में सुन्दर सुन्दर चित्र टँगे हैं। बीच में एक बहुत बड़ा तैल-चित्र है। नीचे चटाई बिछी हुई है। टेबल के एक तरफ एक चौकी है, जिस पर जाजिम के ऊपर सफेद चाँदनी बिछी हुई है। उसके बीच में

मसनद, और मसनद के दोनों ओर तकिये रक्खे हुए हैं। टेबल के ऊपर कई हिन्दी मासिक-पत्र पड़े थे। उनमे से एक उठा कर भूपेन्द्र पढ़ने लगा। कविराज सिद्धनाथ की बेतुकी तुकवन्दी पढ़ने में बहुतेरा जी लगाया पर न लगा। इतने में अर्दली लौट आया और बोला—वकील साहब, दीवान जी तो सोते हैं।

"कब तक उठेंगे ?"

"अब बहुत विलम्ब नहीं है। आप थोड़ी देर बैठिएगा ?"

"हाँ, वे जब जागें तब उनको मेरे आने की इत्तला कर देना।"

"तम्बाकू ले आऊँ ?"

"नहीं, बड़ी गरमी है, पखा चला दो।"

बिजली का पखा चला कर अर्दली चला गया। भूपेन्द्र अब मासिक पत्र फेंक, बदन को झुका, टेबल पर दोनों हाथों के बीच सिर रख कर सोच-समुद्र में गोते खाने लगा। सोचने लगा—जो चाहा था वह नहीं हुआ। बहू जी के विधवा-विवाह की बात व्यर्थ हो गई। कहाँ का कौन, जिसका कुछ पता नहीं, एकाएक आकर बाबू बन बैठा है। कनक ने तो लिखा है, उसका दृढ विश्वास है कि वह आदमी सच्चा भवेन्द्र नहीं। तो वह शशि कला कौन है ? गङ्गा की धारा में वह कर आई और एकदम बहू जी की सखी बन गई। ये दोनों प्रपञ्च करके आये हैं, इस बात पर कनक विश्वास नहीं करती। मैं समझता हूँ, शायद यह कनक की भूल है। जरूर दोनों प्रपञ्च करके आये हैं। विधवा-विवाह तो भाग्य में नहीं लिखा है, यदि इस भवेन्द्र का भी कुछ पता लगजाता कि यह कौन है तो भी कुछ काम निकल जाता। अभी कम से कम लाख रुपये की तो मुझे बड़ी आवश्यकता है। यदि इस पोल को खोल सकूँ तो भवेन्द्र से जाकर कहूँ—"बाबू

साहब, मुझे सब भेद मालूम हो गया। साक्षी सबूत सब मौजूद है। अब एक लाख रुपये निकालिए। एक लाख नक़द रुपया तो मुझे नजराना चाहिए। और एक हजार रुपया मासिक नियत हो जाने ही से मेरा काम चल जायगा। स्वीकार हो तो उत्तम, नहीं तो कहो थाने में जाऊँ।" एक हजार रुपया मासिक मिल जाने से किसी तरह मेरा गुजारा हो जायगा। बहूजी से ब्याह कर सकता तो सोलह आने का मालिक होता। जब वह नहीं हुआ तो इतना ही सही—'आग लगन्ते झोपडा जो निकले तो लाभ।'

चिन्तास्रोत में अपने चित्त को प्रवाहित करके भूपेन्द्र यों ही भाँति भाँति के दु स्वप्न देखने लगा। देखते देखते घडी में टन् टन् करके चार बज गये। बाहर बर्फ वाला अपने साधे हुए स्वर में आवाज देता हुआ चला गया "बर्फ चाहिए"। अब पूर्वोक्त उडिया अर्दली आया और द्वार पर खडा होकर बोला—दीवान जी उठ बैठे, मैंने खबर कर दी।

कोई दस मिनट के बाद दीवान जी अपने विपुल-कलेवर को लिये चट्टी-जूता पहने, खुले बदन झूमते झामते, कमरे में आ पहुँचे।

भूपेन्द्र कुर्सी छोड कर बोला—मुझ को पहचानते हैं न?

दीवान जी ने कहा—भूपेन्द्र बाबू! प्रणाम। बैठिए, बैठिए। कहिए, क्या हाल है?

भूपेन्द्र—आशीर्वाद। आपकी दया से सब अच्छा है। क्या हुजूर का आना आज ही हुआ है?

"जी हाँ, आज सबेरे नौ बजे आया हूँ। आपको मेरे आने की खबर कैसे मिली? कनकलता ने लिखा होगा।"

"जी हाँ। आपका स्वास्थ्य तो अच्छा है?"

"अरे बाबा! साठ वर्ष की उम्र हुई, अब मेरे स्वास्थ्य की क्या पूछते हो? अपनी बात कहो, कैसे रहते हो? पच्छिम जाने को थे, सो क्या हुआ? कहाँ जाने का इरादा है?"

"अभी तक तो कहीं जाने का निश्चय नहीं किया।"

"देरी क्यों कर रहे हो?"

भूपेन्द्र ने मुँह उदास करके कहा—द्रव्याभाव। पच्छिम जाकर वकालत का जाल फैलाने के लिए कुछ रुपया चाहिए। आईन की किताबें खरीदने ही में कम से कम तीन सौ रुपये लगेंगे। इसके सिवा अच्छे कपड़े, टेबल, कुरसी और आलमारी सब चीजें चाहिएँ। इसके बाद कहीं जाकर बैठते ही तो मुवक्किलों की भीड़ लगेगी नहीं। बहुत नहीं तो पाँच छ महीने के लिए डेरे का खर्च भी साथ ले जाना होगा।

दीवान जी ने मन ही मन कहा—आईन में तुम्हारी जैसी निपुणता है उसको देखते हुए पाँच छ महीने के लिए क्यों, पाँच छ वर्ष के लिए भी डेरा-खर्च साथ ही ले जाना अच्छा होगा। प्रकाश में कहा—मास्टरी करते हो न?

"जी हाँ, चालीस रुपये मासिक वेतन पर एक स्कूल में मास्टरी करता था। अब कुछ दिन से ५०) पाता हूँ। मौसाजी के डेरे में रहता हूँ। कष्ट सह कर, जहाँ तक होता है, कम खर्च करता हूँ। कुछ रुपया हाथ आ जाने ही से चल दूँगा।

"कहाँ जाओगे, कुछ निश्चय किया है?"

"जी हाँ, एक तरह से निश्चय ही समझिए। गया जाऊँगा।"

"गया?—अरे कृष्णदास, कहाँ गया। तम्बाकू तो भर ला—बाबू! गया जाओगे? अच्छी जगह है, तीर्थस्थान है। उधर मामला-मुकद्दमा खूब होता है?"

भूपेन्द्र ने मुस्करा कर कहा—उतना कम भी नहीं, वहाँ एक बात का बड़ा सुभीता है।

दीवान जी बोले—वहाँ की तम्बाकू बहुत अच्छी होती है।

भूपेन्द्र ने ज़रा हँस कर कहा—जी नहीं, मैं तम्बाकू की बात नहीं कहता। वहाँ एक बड़ा सुभीता यह है कि अगर वकालत जम गई तब तो कोई बात ही नहीं, अगर नहीं जमी तो कमीशन पर काम करके भी निर्वाह कर सकूँगा। वहाँ बटवारे के मुकदमे ख़ूब चलते हैं, वकीलों को पूरा कमीशन मिलता है। सुना है वहाँ जूनियर वकील भी दो-तीन सौ रुपये महीना कमीशन पा जाते हैं। ऐसा सुभीता और किसी ज़िले में नहीं।

दीवान जी बोले—तो यही बेहतर है। गया ही जाओ।

"जी हाँ, इसी से आप के पास एक बात पूछने आया हूँ।"

इतने में कृष्णदास, हाथ में गुड़गुड़ी लिये, चिलम फूँकते फूँकते वहाँ हाज़िर हुआ। होठों से नाल दाब दो-चार बार हुक्का गुड़गुड़ा कर दीवान जी ने पूछा—हाँ, क्या बात?

"यही पूछ रहा था कि बाबू जी घर आ गये हैं—बहू जी को अब भी कनक की जरूरत होगी?"

दीवान जी ने फिर भी दो-चार बार धुवाँ खींच कर कहा—"यह मैं कैसे कहूँ? बहू जी जाने।" दीवान जी जानते थे कि बहूजी आजकल कनक से नाराज़ हैं।

भूपेन्द्र ने मुँह उदास करके कहा—"आप बड़े प्रतिष्ठित पुरुष हैं। मेरी बहन आपके आश्रय में थी, इससे मैं निश्चिन्त था। कनक जितने दिन वहाँ रहती उतने दिन मैं कष्ट सह कर भी कुछ रुपया जमा कर सकता। वह अगर वहाँ से चली आवेगी तो मुझे कोई मकान भाड़े पर लेना पड़ेगा। पचास रुपये मासिक घर का ही खर्च न चलेगा, बचेगा क्या? बल्कि जो चार पैसे

जमा हैं वह भी हाथ से निकल जायँगे। तब वकालत करना या अपनी अवस्था की उन्नति करना मेरे लिए आकाश-कुसुम हो जायगा। मास्टरी करके आध पेट खाकर ही जीवन बिताना पड़ेगा।" यह कह कर भूपेन्द्र ने सिर नीचा करके लम्बी साँस ली।

उसकी दीन दशा देख दीवान जी के मन में दुःख हुआ। कुछ देर तक वे चुपचाप धूम्रपान करते रहे, फिर बोले—अच्छा, तुम इसके लिए चिन्ता मत करो। मैं जाकर, बहूजी से पूछूँगा। अगर वह कहेंगी कि कनकलता की अब आवश्यकता नहीं तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा जिससे तुम्हारी बहन दो-एक वर्ष तक वहाँ और रह सके। मैं प्रबन्ध कर दूँगा। इस के बाद तुम गया जाकर वकालत करना, वकालत जम जाने पर उसे ले जाना।

भूपेन्द्र का चेहरा खुशी से खिल गया। उसने, मन ही मन सोचा—खैर। एक काम तो हुआ। अब कल्पित भवेन्द्र के सम्बन्ध में दो-चार बातें पूछ देखूँ। इसलिए इधर उधर की दो चार बातें करके भूपेन्द्र ने पूछा—"बाबू साहब, क्या बराबर काशी में ही थे?" काशी से ही उनकी पहली खबर आई थी, यह भूपेन्द्र को कनक की चिट्ठी से मालूम हो गया था।

दीवान जी ने कहा—नहीं, काशी में बहुत दिनों से नहीं थे। घर आने के कुछ पूर्व तीर्थयात्रा के लिए काशी आ गये थे।

भूपेन्द्र उत्साहित हो कर बोल उठा—काशी! अहा!! काशी बड़ा ही सुन्दर स्थान है। जब मेरे पिता जी जीवित थे तब हम लोग छ सात महीने तक काशी में रहे थे। दशाश्वमेध घाट के पास ही हमारा डेरा था। सन्ध्या होने के अनन्तर दशाश्वमेध घाट पर जा कर बैठने से फिर वहाँ से उठने को जी नहीं चाहता था। हाँ, तो बाबू साहब काशी में कहाँ ठहरे थे?

"दशाश्वमेध घाट के पास एक धर्मशाला में।"

"धर्मशाला में ? दशाश्वमेध घाट के पास हमारे एक परिचित हैं। वे धर्मशाला के मैनेजर हैं। उनका नाम रामेश्वर भैया है। वडे सज्जन हैं। बाबू किसकी धर्मशाला में थे ?"

यह प्रश्न सुन कर दीवान जी के हुक्के की गुडगुडाहट बन्द हो गई। वे कुछ सन्दिग्ध भाव से भूपेन्द्र के मुँह की ओर देखने लगे। फिर बोले—"यह तो मैंने बाबू से नहीं पूछा। क्यों ? कुछ प्रयोजन है ?" तब भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि भूपेन्द्र के ऊपर थी।

भूपेन्द्र समझ गया। उसने तुरन्त बात बदल दी। दस मिनट के बाद उसने कहा—तो अब इजाजत दीजिए। आप तो अभी ठहरेंगे ?

"हाँ, चार-पाँच दिन रहूँगा। कई काम हैं। उन सब को कर के जाऊँगा।"

"अच्छा, फिर आकर आप से भेंट करूँगा। इन दिनों तो आप यहाँ स्थिर नहीं रहेंगे। अगर आने पर आप से भेंट न हो, मैं लौट जाऊँ, तो मेरी यही अन्तिम प्रार्थना है। गरीब की बात न भूलिएगा।" कह कर भूपेन्द्र उठ खडा हुआ।

"चल दिये ? अच्छा फिर आना। प्रणाम।"

भूपेन्द्र चला गया। दीवान जी ने नौकर को फिर एक चिलम भर लाने की आज्ञा दी।

[२]

घर जा कर भूपेन्द्र सोचने लगा कि यह दीवान भोला-भाला नहीं है। इसे भुला कर इस के पेट से बात निकाल लेना एकदम असंभव है। जमींदारी का काम करके जिसने बाल पकाये हैं, कितने ही लोगों को ठगा है, कितने ही जज मजिस्ट्रेटों की आँखों में धूल झोंकी है, उसी की आँख में धूल डालने की चेष्टा करना पागलपन है। इसलिए अब दूसरा उपाय देखना होगा।

सांझ होने के बाद भूपेन्द्र नित्य बाहर घूमने जाता था। दोस्तों के यहाँ जा कर आमोद विनोद करके बहुत रात बीते घर लौटता था। आज वह बाहर नहीं गया। अपनी बैठक में आराम कुरसी पर लेट कर हिकमत सोचने लगा।

भूपेन्द्र बड़े संकट में है। कलकत्ते में ऐसा विरला ही धनी महाजन होगा जिसका भूपेन्द्र कर्जदार न हो। किसी किसी ने तो नालिश करके डिगरी करा ली है—किसी किसी की नालिश अभी विचाराधीन है। कितने ही महाजन नालिश की धमकी दे रहे हैं—जिन्होंने डिगरी करा ली है वे किस दिन कुर्की जारी करा कर माल असबाब कुर्क कराने आवेंगे इसका निश्चय नहीं। महीने दो महीने के भीतर कम से कम पचास-साठ हजार रुपया हाथ में न आने तो उसके उद्धार का कोई उपाय नहीं। भूपेन्द्र सिर पर हाथ लगा कर केवल इन्हीं बातों को सोचने लगा।

छेदाराम ने चाय ला कर बाबू की यह दशा देखी। मन ही

मन कहा—जिस काम के लिए बाबू गये थे वह काम नहीं बना। सुविधा नहीं हुई, कुछ माफी नहीं मिली!

रात को भूपेन्द्र ने नाम-मात्र का भोजन किया। बिछौने पर लेट रहा, पर नींद नहीं आई—केवल करवट बदलने और सोचने लगा।

जब रात आधी जा चुकी तब वह बडे उत्साह के साथ उठ बैठा। आप ही आप बोला—अच्छा उपाय सूझ गया है बत्ती जला कर, कागज कलम ले कर, लिखने बैठा—

हिन्दी-साहित्य में युगान्तर

अचिन्तितपूर्व, अभावनीय, अत्युपादेय

नूतन व्यवस्था

इतिहास, पुरातत्त्व, भ्रमणवृत्तान्त, जीवनचरित और जनश्रुति का एक अपूर्व ग्रन्थ

भारतीय जमींदारचरितमाला।

निर्मल जल, मधुर फल और अनाज के हरे हरे पौधों से शोभायमान इस भारतभूमि में लक्ष्मी के सुयोग्य सेवक जमींदार लोग ही सच्चे भूषण हैं। इनकी वंशावली का इतिहास ही भारत के इतिहास का मुख्य अंश है। आज हम उस इतिहास का उद्धार करने के लिए कटिबद्ध हुए हैं। इस महाग्रन्थ में भारत के बहुतेरे जमींदार वंशों का आमूल इतिहास प्रकाशित हो रहा है। उसके साथ साथ जमींदारों के विख्यात पूर्व पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित देव-मन्दिर, धर्मशाला, चिकित्सालय, विद्यालय और जलाशय आदि के विवरण सहित चित्र भी दिये जायँगे। हमारे प्रतिनिधियों ने भारत के गाँव गाँव में जाकर सब मसाला

इकट्ठा कर लिया है। जो कसर रह गई है वह भी झटपट पूरी की जायगी। प्रधान प्रधान जमींदारों के वर्तमान वशजों का सचित्र जीवनचरित भी पुस्तक में रहेगा। डेढ़ हजार पृष्ठों से अधिक, प्राय तीन सौ हाफटोन चित्रों से सुशोभित, इस विशाल और महा प्रयोजनीय ग्रन्थ का प्रकाशन बहुव्ययसाध्य है। हम जिस अकातर भाव से परिश्रम और प्रचुर द्रव्य व्यय कर रहे हैं उस हिसाब से पुस्तक का मूल्य १०) रक्खा जाय तो भी अधिक नहीं होगा, किन्तु हमारा उद्देश पुस्तक बेच कर द्रव्य बटोरने का नहीं। हमारा उद्देश्य तो है देश का उपकार करना। छपाई आदि का व्यय ४) रुपया लेकर हम जन समाज में इस महा ग्रन्थ को वितरण करेंगे। भादों की जन्माष्टमी के भीतर पत्र लिख कर जो ग्राहक होना स्वीकार करेंगे उन्हीं के लिए यह नियम है—उसके बाद मूल्य बढ़ा दिया जायगा। क्वार में पुस्तक प्रकाशित हो जायगी। जो पहले मूल्य भेजेंगे वे लोग ४) रु० में ही घर बैठे पावेंगे। डाक महसूल और वी० पी० खर्च भी उन्हें देना नहीं होगा।

कलकत्ता पब्लिशिङ्ग कम्पनी

४५ हरिमोहन पाल की गली, कलकत्ता।

यह मसविदा तैयार करने पर भूपेन्द्र का गरम दिमाग कुछ ठण्डा हुआ। तब वह बत्ती बुझा कर सो रहा।

दूसरे दिन सवेरे उठ कर मुँह-हाथ धो चाय पानी पीकर भूपेन्द्र बाहर गया। मसजिदबाड़ी स्ट्रीट के एक छापेखाने में जाकर प्रिन्टर से कहा—"महाशय, मेरा यह विज्ञापन शीघ्र छाप दीजिए।" उसने पूर्वोक्त लिखित पत्र प्रिन्टर को दिखाया।

प्रिन्टर ने देख कर कहा—कब चाहिए?

"आज ही दस बजे के भीतर।"

प्रिन्टर ने सिर हिला कर कहा—दस बजे के भीतर नहीं हो सकता। शाम को दे सकता हूँ। कै हजार छपाना है ?

"सौ प्रतियाँ।"

"सिर्फ एक सौ ?"

"हाँ।"

प्रिन्टर कुछ देर तक सोचने और बीच बीच में भूपेन्द्र का मुँह देखने लगा। फिर बोला—अच्छा, अभी सौ प्रतियाँ छपा, बाँट कर देखिएगा—यदि लाभ देख पड़ेगा तो और अधिक छपाइएगा। क्यों, यही बात है न ?

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—हाँ, यही बात है।

अपनी इस तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देकर प्रिन्टर के मन में कुछ आत्मश्लाघा उत्पन्न हुई। वह बोला—अच्छा एक बात और कहूँ ?

"क्या ?"

यह जो लिखा है कि पुस्तक का छपना शुरू हो गया है सो यह एक व्यवहार-मात्र है। छपाई अभी बिलकुल ही शुरू नहीं हुई। यदि वैसी माँग आयेगी तब छपाना आरम्भ कीजिएगा, नहीं तो यहीं तक।

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—तारीफ है आप की बुद्धि की। आप ने असल बात पकड़ ली है।

प्रिन्टर बहुत खुश हुआ। बोला—जी हाँ, यही काम करते करते बाल पके हैं। अच्छा, आप ग्यारह बजे आइए। इतने में दो प्रूफ देख कर हम रख देंगे। आप आखिरी प्रूफ देख कर आर्डर दे दीजिएगा। आप के सामने ही बारह बजे के भीतर विज्ञापन छप जायँगे। कागज के लिए एक रुपया पेशगी देते जाइए।

भूपेन्द्र एक रुपया दे कर वहाँ से चला गया। चितपुर रोड में उसका एक परिचित फोटोग्राफर था। नाम उसका भुवनचन्द्र था। भूपेन्द्र उस फोटोग्राफर की दूकान में गया।

भूपेन्द्र को आते देख भुवन ने कहा—आइए, आइए, आज बहुत दिनों पर दर्शन दिये हैं।

भूपेन्द्र ने कुरसी पर बैठ कर कहा—एक जरूरी काम से आया हूँ। देहात में जाओगे?

"कब?"

"आज साँझ की गाड़ी से। खासी दक्षिणा मिलेगी।"

"जाऊँगा। क्या करना पड़ेगा?"

"एक जमींदार का फोटो खींच कर लाना होगा और उनसे पूछ पूछ कर उनका जीवनचरित भी लिख लेना होगा।

भुवन—मामला क्या है?

भूपेन्द्र हँसते हँसते बोला—सारे देश में ढिंढोरा पिट गया है। तुम को अब तक मामला मालूम नहीं। मैं पुस्तक छपवा रहा हूँ, तुम नहीं जानते?

"कौन पुस्तक?"

"'भारतीय जमींदार-चरितमाला'—जितने बड़े बड़े जमींदार हैं, उनका उसमें जीवनचरित और चित्र रहेगा।"

"बिकी होगी?"

"इस अरसे में पाँच सात सौ आर्डर आ गये हैं। कितने ही जमींदारों ने ग्राहक होकर अपना सचित्र जीवनचरित लिख भेजा है। किसी जमींदार ने दस, किसी ने बीस, किसी ने पचास जिल्दें लेना स्वीकार किया है।'

भुवन ने हँस कर कहा—बन्धु-बान्धवों में मुफ्त बाँटेंगे।

जाल तो अच्छा रचा है। हृदय के आप बड़े प्रौढ़ हैं। मुझे कहाँ जाना होगा, बताइए।

"वासुदेवपुर।"

"वासुदेवपुर कहाँ है?"

भूपेन्द्र ने तब भुवन को वासुदेवपुर जाने के सम्बन्ध में सब बातें समझा दीं। जमींदार का नाम और संक्षिप्त परिचय देकर कहा—तुम कल वहाँ पहुँच जाओगे। जहाँ तक शीघ्र हो सके, काम निकाल कर चले आना। तीन चार दिन से अधिक विलम्ब न हो।

"क्यों? विलम्ब होने से क्या होगा?"

"उस जमींदार का एक बूढ़ा दीवान है। वह बड़ा धूर्तराज है। उसके रहते कोई काम न होगा। वह सब बात बिगाड़ देगा। उसकी गैरहाजिरी में यदि पचीस पुस्तकों की मंजूरी करा सकोगे तो समझ रक्खो, उसके पहुँच जाने पर एक से अधिक का हुक्म नहीं मिलेगा।"

"समझ गया। अब बताइए, उनसे पूछ कर क्या क्या लिख लाना होगा।'

"विज्ञापन छापा जा रहा है। एक बजे तुम को लाकर दे दूँगा। पहले वह विज्ञापन बाबू के पास भेज देना फिर उनका चित्र उतार लेना—अनेक प्रकार की पोशाकों में—कम से कम चार-पाँच चित्र खींच लेना। और जीवनचरित के सम्बन्ध में विशेष कर ये सब बातें जानते आना।" कह कर भूपेन्द्र उसको उचित उपदेश देने लगा।

जाते समय कहा—एक बात और है। खबरदार, भूल कर भी मेरा नाम न लेना। अगर पूछे कि यह सब कौन करता है तो जो तुम्हारे मन में आवे, कोई नाम, कह देना। समझ गये न?

"समझ गया।"

"अगर मेरा काम कर आओगे तो जो तुम्हारी फीस होगी वह तो मिलेगी ही,—इसके अलावा मैं अलग पुरस्कार देकर तुमको खुश कर दूँगा। आज साँझ की गाडी से तुम्हारा जाना पक्का हुआ न ?"

"जी हाँ।"

"यह लो, राह-खर्च के लिए रुपये और कुछ फीस भी।" कह कर भूपेन्द्र ने भुवन के हाथ में दस दस रुपये के तीन नोट दिये।

चौथे दिन लौट कर भुवन स्टेशन से सीधा भूपेन्द्र के घर गया। कहा—महाशय, ऐसी जगह में भी कोई किसी को भेजता है ?

"क्यों, क्या हुआ ?"

"हुआ कुछ भी नहीं। दो दिन तक तो बाबू का दर्शन ही नहीं हुआ। जभी खोज करता तभी सुनता कि बाबू अन्दर महल में हैं। कल सवेरे बाबू से भेंट हुई। वह मेरे जाते ही बोला। मैंने पहले ही उसके पास विज्ञापन भेज दिया था।"

"क्या बोला ?"

"कहा—यह सब तुम लोगों की वञ्चना है। देश में इतने बडे बडे राजे महराजों के रहते मेरे पास क्यों आये हो ? चित्र लेना हो, जीवनचरित लिखना हो, तो बडे बडे रजवाडों में जाओ। बर्दवान है, कूचविहार है, नाटोर है, कासिमबाजार है और त्रिपुरा है—वहाँ न जाकर मेरे पास क्यों आये ? मैं न तो अपनी तसवीर खींचने दूँगा और न जीवनचरित ही बताऊँगा।"

भवेन्द्र असली भवेन्द्र नहीं है, इस सम्बन्ध में भूपेन्द्र को अब कोई सन्देह नहीं रहा।

दिन के पिछले पहर उसी दिन उसने श्रीराम जी के पास

जाकर कहा—गरमी की तातील होने से स्कूल बन्द हो गया है बहुत दिनों से कनक को भी नहीं देखा। अगर आप की आज्ञा तो आप के साथ वासुदेवपुर चलूँ।

दीवान जी ने अनुग्रह-भरे स्वर में कहा—अच्छी बात चलो। मैं परसों जाऊँगा। मेरे साथ चलो।

भूपेन्द्र दीवान जी के साथ वासुदेवपुर जा पहुँचा।

[२]

भूपेन्द्र जिस समय वासुदेवपुर पहुँचा उस समय साँझ होने में देर न थी। जिस कोठरी में पहले वह ठहराया गया था उसी में उसने अपनी गठरी रक्खी। एक नौकर ने उसके हाथ-पैर धोने के लिए पानी ला दिया। कुछ समय बाद अन्दर से तश्तरी में जलपान की वस्तुएँ आईं। जलपान करके भूपेन्द्र कचहरी के बरामदे में एक बेञ्च पर अकेला चुपचाप बैठ गया। कनक से एक बार भेंट करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। परन्तु भीतर कौन खबर दे। दीवान जी हैं नहीं। बाबू से भेंट करके वे अपने घर चले गये हैं। किसी से सुना है—वे अब आज न आवेंगे। कल सवेरे उनके दर्शन होंगे।

अकेले बैठे बैठे भूपेन्द्र का जी ऊब गया। इससे उठ कर बरामदे में टहलने लगा। आज शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी है, किन्तु आकाश में कुछ कुछ बादल रहने से चाँदनी धुँधली सी दिखाई दे रही थी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि गाँव की सड़कों पर घूम आवे। किन्तु अधिकांश सड़कों के दोनों ओर जंगल है। देहात में साँप का डर रहता है। इसी से शहर के रहने वाले युवक को देहात में घूमने का साहस नहीं हुआ। वह बरामदे में ही कुछ देर घूम फिर कर फिर बेञ्च पर बैठ गया। बैठ कर मन में भाँति भाँति की बातें सोचने लगा। शशिकला का गङ्गा में बह कर आना, बाग में भवेन्द्र को देख कर उसका भाव बदलना, भोजन करने को बैठे हुए भवेन्द्र की ओर रात में छिप कर देखना, उसके बाद कनक के साथ उसकी बातचीत,—कनक के

पत्र से यह सब वृत्तान्त भूपेन्द्र को ज्ञात था। सब बातों पर वारम्बार विचार करके उसके मन में दृढ़ विश्वास हो गया है कि शशिकला का वह कर आना दैवाधीन घटना नहीं है। नकली भवेन्द्र और शशिकला के बीच अवश्य ही कोई षड्यन्त्र-विषयक गूढ़ रहस्य है। भवेन्द्र का परिचय मिलना अवश्य कठिन है, किन्तु शशिकला का ठीक ठीक परिचय मालूम हो जाने से भवेन्द्र की भी पोल खुल जायगी। कनक से एक वार मिलना बहुत ही आवश्यक है। तत्काल उसका कोई मौका न मिलने से भूपेन्द्र छटपटाने लगा।

भूपेन्द्र जिस बैठक में था उसके पास ही कचहरी का कमरा था। भूपेन्द्र ने वहाँ दो-चार आदमियों को बैठे देखा। सोचा, यहाँ अकेले बैठ कर क्या करूंगा? चलूँ, उन लोगों से कुछ देर तक गपशप करके जी बहलाऊँ।

भूपेन्द्र उन लोगों के साथ इधर उधर की गपशप करने लगा। रात के दस बजे दफ़्तर के कर्मचारियों के साथ बैठ कर भोजन करने के बाद फिर कमरे में लौट आया। देखा, नौकर सीढ़ी पर बत्ती लिये खड़ा है, कोई जल्दी से ऊपर जा रहा है, कोई नीचे उतर रहा है। वह समझ गया कि ऊपर के कमरे में बाबू साहब के लिए पलँग बिछाने की तैयारी हो रही है।

थोड़ी देर में लालटेन लिये हुए एक दरबान के पीछे पीछे अन्दर से आता हुआ कोई दिखाई दिया।

गोपाल को बरामदे की ओर आते देख भूपेन्द्र झट उठ खड़ा हुआ। समीप आने पर उसने जरा झुक कर बाबू को नमस्कार किया।

गोपाल ने पूछा—आप कौन हैं?

दरबान ने लालटेन को कुछ ऊपर उठाया। गोपाल ने देखा यह शख्स अत्यन्त सुन्दर, सोने की सी मूर्ति ही, है।

अब भूपेन्द्र ने अपना नाम बताया। विस्मय-भरी दृष्टि से उसके मुँह की ओर देख कर गोपाल बोला—आप दीवान जी के साथ कलकत्ते से आये हैं न?

"जी हाँ—मेरी बहन—"

गोपाल ने बात काट कर कहा—मैं जानता हूँ। वह—आप भोजन कर चुके?

"जी हाँ।"

गोपाल ने नौकरों के मुँह की ओर देख कर कहा—बाबू के सोने का सब प्रबन्ध कर दिया है न?

नौकर—जी हुजूर।

"कहाँ?"

"जिस कोठरी में झाड़ लालटेन आदि काँच का सामान है उसके पास ही जो छोटी सी कोठरी पश्चिम-उत्तर के कोने में है, उसी में। बाबू एक बार और आये थे तब उसी में सोते थे।"

गोपाल—"हाँ, मैं जानता हूँ। आपको किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है? कुछ सकोच न कीजिएगा।" भूपेन्द्र को उत्तर देने का अवसर न दे कर गोपाल ने दरवान को आगे बढ़ने का इशारा कर कहा—चलो देखें, बिछौना कैसा किया है।

गोपाल का यह व्यवहार भूपेन्द्र के लिए एकदम आशातीत था। बाबू को आते देख कर उसने सोचा था कि ये नमस्कार का प्रत्यभिवादन कर बिना कुछ कहे ऊपर वाले कमरे में चले जायँगे। लाख रुपया जिसकी सालाना आय है वह पचास रुपया मासिक पाने वाले एक स्कूल मास्टर के भोजन और शयन आदि की सुविधा असुविधा की खोज इस तरह करे, यह भूपेन्द्र की कल्पना से बाहर की बात थी। वह हतज्ञान की भाँति बाबू के पीछे पीछे आकर अपनी निर्दिष्ट कोठरी में गया।

गोपाल ने कोठरी को चारों ओर ध्यान से देखा। बिछौने की ओर देख कर कहा—यह पुरानी मसहरी कहाँ से ला कर दी है ? और न थी ?

नौकर ने कहा—कल बदल दूँगा।

"और—एक कलसी पानी नहीं रख दिया ? गरमी का मौसम है। अगर रात में प्यास लगे तो थोड़े से पानी के लिए ये किसको पुकारेंगे ? जाओ, एक बड़ा जल और गिलास लाकर रख दो। चौकी को जरा और इधर खिसका दो तो दोनों ओर की खिड़कियों से हवा आकर लगेगी—गरमी ज्यादा पड़ने लगी है न।"

नौकरों ने तुरन्त चौकी खिसका दी। दो-तीन हाथ की दूरी पर सिरहाने की तरफ एक, और पार्श्व में दूसरी—लोहे की छड़ों से घिरी हुई—बड़ी खिड़की पड़ी। देख-भाल कर गोपाल ने "अब विश्राम कीजिए। रात बहुत बीती।" कह कर प्रस्थान किया।

बाबू के चले जाने पर भूपेन्द्र बड़ी देर तक सिर पर हाथ रक्खे चौकी की कोर पर बैठा रहा। सोचने लगा—बाबू ने ऐसा विनीत व्यवहार क्यों किया ? उनके मन में कोई गूढ अभिसन्धि तो नहीं है। उनको मेरे मन का अभिप्राय किसी तरह लक्षित तो नहीं हो गया ? मेरा परिचय पूछा—मेरे आधी बात कहते न कहते झट बोल उठे—'जानता हूँ।' इतना बड़ा यह कमरा है, नित्य कितने लोग आते हैं, जाते हैं। कौन आया, कौन गया, किस घर में कौन सोया, इन बातों की खबर रखना बाबू के लिए क्या अस्वाभाविक नहीं है ? यदि बाबू के मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ हो तो वे मुझ को सहज ही नहीं छोड़ेंगे। मेरे प्राणों के भी गाहक बन बैठें तो क्या आश्चर्य है !

भूपेन्द्र ने उस खुली खिड़की की राह से झाँक कर देखा, ... हट जाने से चाँदनी साफ निकल आई है। बड़ी खिड़की

के बाहर की नीची भूमि में अनेक प्रकार की छोटी छोटी घास उपजी है। कमरे से कुछ ही दूर पर बँसवाडी है। बाँसो के परस्पर रगड खाने से भाँति भाँति के मधुर शब्द निकल रहे है। दूसरी ओर की खिडकी के बाहर, छ-सात हाथ के अन्तर पर, साधारण जङ्गल है जिसमें अधिकांश बघडी और सेहुँड के पेड एक दूसरे से सटे हुए हैं। उनके पीछे बहुत ऊँचे पेड खडे है,जो चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में भली भाँति पहचाने नहीं जाते। उस ओर से झींगुरों की झनकार लगातार सुनाई दे रही है। एक प्रकार की सुगन्ध भी उस ओर से आ रही है। भूपे द्र देहात का रहने वाला होता तो समझ जाता कि यह अडूसे के फूल का गन्ध है। उस ओर देख कर भूपेन्द्र के मन में कुछ कुछ भय होने लगा। सोचा—मैं यहाँ अकेला सोया हूँ। अगर कोई इस जङ्गल से आकर मुझे पकड कर ले जाय तो! उसने झट उठ कर भीतर से किवाड बन्द कर दिया। फिर चौकी पर बैठ कर सोचने लगा—अगर मैं नींद में सो जाऊँ और बाबू का कोई आश्रित जङ्गली डकैत हाथ में तीर धनुष लिये इस जङ्गल से निकल आवे और इस खुली खिडकी की छडो के बीच से तीर चला कर मेरे सिर को बेध दे? यह सोचते ही भूपेन्द्र भय से काँप उठा।

उस गहरी रात में—एकान्तशायी भूपेन्द्र के पापी मन में क्रमश सन्देह बढ़ने लगा। फिर सोचा—फोटोग्राफर भुवन ने यहाँ आकर, मेरे मना कर देने पर भी, कोई बात जाहिर तो नहीं कर दी या दीवानजी ने आकर बाबू से कह दिया है कि आपके सम्बन्ध में भूपेन्द्र मुझ से बहुत टेढी मेढी बात पूछता था। तब तो बचने का कोई उपाय नहीं। अवश्य ही गुप्त रीति से मुझे मार डालने का बन्दोबस्त हुआ है। मेरे सोने की क्या व्यवस्था हुई है, सो केवल वही देखने के लिए—मेरी असुविधा

दूर करने के लिए कुछ बाबू नहीं आये थे। मेरी देह में हवा लगेगी, सिर्फ इसी लिए चौकी खिसकाने की व्यवस्था नहीं हुई है। खिडकी के सामने सिरहाना होने से तीर मारने में सुभीता होगा, यही उनका मतलब था।

भूपेन्द्र फिर सोचने लगा, अब क्या किया जाय? किवाड खोल कर धीरे धीरे बाहर भाग जाना ही ठीक होगा। फिर खयाल हुआ—अगर इनका मतलब मेरा खून करने ही का है तो उन्होंने पहरा भी जरूर बिठा दिया होगा। पहरेदार मुझ को भागते देख लाठी से मेरा सिर फोड देगा। अगर भागना ही है तो कल दिन में भागूँगा। इस प्रकार सोच विचार कर भूपेन्द्र ने दोनों खिडकियों को अच्छी तरह बन्द कर दिया। चिराग लेकर देखा खिडकी के किवाड मजबूत साखू की लकडी के हैं, कब्ज़ा, चट कनी आदि भी हलकी नहीं है। द्वार के समीप रोशनी ले जाकर देखा, दरवाजे के किवाड और सॉकल आदि भी खिडकी ही की भाँति सुदृढ है। सहसा बाहर से तोड कर कोई भीतर नहीं आ सकेगा। भूपेन्द्र ने फिर सॉकल को अच्छी तरह हिला-डुला कर देख लिया। तब कुछ स्थिर होकर मसहरी के भीतर घुसा, सोया नहीं, बिछौने पर बैठा रहा। बन्द घर में, जेठ मास की कडी गरमी में, सहसा नींद आने की भी सम्भावना न थी। वह पखे से हवा करते करते ऊँघ कर कभी सोता कभी बैठता था। यों सोते-बैठते उसने दफ़र की घडी में क्रमश· बारह, एक, दो, और तीन की घटी सुनी।

इसके बाद वह सो गया। सोया भी बहुत देर तक नहीं। एक भयङ्कर स्वप्न देख कर जाग उठा। उस समय बाहर कौवे बोलने लग गये थे। खिडकी के छिद्र से प्रात काल का प्रकाश में आ रहा था।

सात बजे दीवान जी आये। भूपेन्द्र ने बहन से भेंट करने की इच्छा उनसे प्रकट की। दीवानजी ने कहा—अच्छा, मैं बन्दोबस्त करता हूँ।

एक घंटे के बाद अन्दर से एक दासी आकर भूपेन्द्र को बुला ले गई। एक कोठरी में जाकर के देखा, एक कुरसी रक्खी हुई है। उसी के पास कनकलता प्रसन्न मुख से खड़ी है। "आइए" कह कर उसने भूपेन्द्र का स्वागत किया। भूपेन्द्र को पहुँचा कर दासी चली गई।

भूपेन्द्र ने कनक के पास जाकर मन्द स्वर में कहा—गृहस्थ के घर में रह कर क्या अभिनय करना एकदम भूल गई?

कनक ने मुस्कुराकर कहा—क्यों?

"मैं तुम्हारा भाई—गुरुजन—पूजनीय—कितने दिन बाद आया हूँ। मुझे प्रणाम नहीं किया? दासी ने क्या समझा होगा?"

कनक ने हँस कर कहा—"समझा होगा कि कलकत्ते के लोगों में ऐसा ही व्यवहार होता है। छोटे-बड़े का लिहाज वे लोग धीरे धीरे उठाते जा रहे हैं। बैठिए!"—कह कर कुरसी की ओर इशारा किया। पास ही एक चौकी पर दरी बिछी थी। उसी के किनारे बैठ कर कनक बोली—मुझ को अब यहाँ और कितने दिन रखिएगा? मेरा तो जी ऊब गया!

"क्यों, यहाँ तुम्हें कुछ कष्ट होता है?"

कनक खुले द्वार की ओर जरा ध्यान से देख कर अभिनय के ढङ्ग पर बोली—स्वाधीनता लुट जाने से कौन जीना चाहता है?

भूपेन्द्र ने भी चकित दृष्टि से द्वार की ओर देख कर झट कहा—घबराओ मत, अब देर नहीं है। नाटक करना मत भूलो। अब भी तुम बहुत कुछ कर सकती हो।

कनक ने बाई जी की तरह सलाम करके कहा—उस्ताद जी, आप ही की बदौलत।

परस्पर शारीरिक कुशल प्रश्न होने के बाद भूपेन्द्र कुछ देर तक चुप रहा।

कनक ने कहा—आप क्या सोच रहे हैं?

"नहीं, कुछ तो नहीं। तुम्हारी बहू जी की क्या खबर है?"

"बहूजी तो तन्मय हो रही हैं।"

"कैसे?"

"कैसे क्या? नये प्रेम में पड़ कर जैसे होता है।"

"सुना है, उन दोनों में भेंट-मुलाकात नहीं होती।"

"रात में नहीं, दिन में तो होती है। दो-तीन दिन से देखती हूँ, तीन-चार बजे से साँझ होने के बाद एक आध घंटे रात तक भीतर के बागीचे में चटकीली चाँदनी में दोनों टहल फिर कर खूब जी बहलाते हैं।"

भूपेन्द्र—इसमें दोष ही क्या है?

"नहीं जी, दोष नहीं, आप बड़ी आशा लगाये थे। अब हताश हो गये। हताश की दशा पर कुछ लिख डालिए।" कह कर अभिनयकारिणी के सुर में मुँह ऊपर करके बोली—

> "अरे दुष्ट शठ देशाचार! तूने कैसा किया विचार।
> किसका धन किसको दे हाथ! किया भाई जी को निराश॥"

फिर कृत्रिम दुःख से सिर नीचा करके आँचल के छोर को हाथ में ले झूठमूठ आँसू पोंछने लगी।

भूपेन्द्र ने कहा—अभी अभिनय रहने दो। काम की बात करो। ये लोग कौन हैं, कुछ पता मिला?

"कैसे मिलेगा? मैं खुफिया पुलिस तो हूँ नहीं।"

"पहले कहाँ रहता था, यह कुछ नहीं सुना?"

"पश्चिम में किसी मठ का महन्त था।"

"उस मठ का नाम क्या है? वह मठ कहाँ है?"

"यह मैं कैसे जानूँगी?"

"यह जी से इतनी गपशप होती है—क्या उसने यह बात नहीं कही? यह बात तो तुम उससे पूछ कर भी जान सकती थी। मठ का महन्त था, यही बात तुमने कैसे जानी?"

"काशी से इन्होंने दीवान जी को जो चिट्ठी लिखी थी उसी में लिखा था। वह चिट्ठी दीवान जी ने मालकिन को पढ़ कर सुनाई थी।"

"उस चिट्ठी में मठ का नाम नहीं लिखा था?"

"चिट्ठी तो मैंने सुनी नहीं। मालकिन ने कहा था, मठ की महन्ती,छोड़ काशी में आकर टिका है।"

"वह चिट्ठी कहाँ है? दीवान जी मालकिन को दे गये या अपने साथ लेते गये?"

"यह नहीं कह सकती।"

"मालकिन किस कमरे में सोती है? उनका बक्स और पिटारी आदि सामान कहाँ है?"

कनक ने हँस कर कहा—क्यों, मुझ को क्या रोहिणी बनना पड़ेगा?

"एक बार बनने की चेष्टा करके देखो तो।"

"जब पकड़ी जाऊँगी तब गोविन्दलाल कहाँ मिलेंगे? मुझे तुरन्त पुलिस के सिपुर्द कर दिया जायगा तब?"

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—गोविन्दलाल तो तुम्हारे पास ही है। उसको हाथ में करना क्या बड़ी बात है? धन-सम्पत्ति कुछ कम नहीं—एक लाख रुपया सालाना आमदनी है। तुम्हारे सदृश एक रोहिणी प्राप्त होने ही से तो उसकी रक्षा है। अच्छा, अभी इस बात को जाने दो। इस शशिकला के सम्बन्ध में अब तुम्हारा क्या विश्वास है? क्या वह पहले ही से इस नकली भवेन्द्र को चीन्हती है?

"हाँ, मेरा तो यही विश्वास है।"

"तो अवश्य ही ये दोनों प्रपञ्च रच कर आये हैं। एक ठग इतना बड़ा जाल फैला कर अकेला कभी नहीं आवेगा। अन्दर महल में उसका एक जासूस जरूर होना चाहिए। मेरी समझ में शशिकला ही उसकी जासूस है।"

कनक ने कहा—अगर यही बात है तो उस दिन बग़ीचे में बाबू को पहले पहल देख कर वह इस तरह क्यों चौंक उठी? जो अनहोनी होती है वही देख सुन कर लोग चौंकते हैं।

भूपेन्द्र—मेरे मन में भी पहले यही आशङ्का हुई थी, किन्तु बहुत सोच विचार कर मैंने इस प्रश्न का एक उत्तर निकाला है।

"क्या?"

"जिस समय उन दोनों ने प्रपञ्च रचा होगा उस समय यह निश्चय नहीं किया गया होगा कि वह ठग-सन्यासी बन कर आवेगा। यही स्थिर हुआ होगा कि साधारण भेस से ही यहाँ आवेगा। कहेगा, मैं सन्यासी था, सो सब छोड़-छाड़ कर फिर घर लौट आया हूँ। उन दोनों में यह सलाह होने के बाद ही शशिकला नाव से आकर जनाने-घाट पर उतर पानी में डूब मरने का स्वाँग धर कर किनारे पड़ रही होगी। इसके दो ही महीने बाद नकली भवेन्द्र भी आ पहुँचा है। शशिकला को

रवाना कर चुकने के बाद शायद उसने सोचा होगा—'सन्यासी भेस से जाना ही अच्छा है। अभी छ महीने तक जप-तप, ब्रह्मचर्य आदि का ढोंग दिखाने से फिर कोई किसी तरह का सन्देह नहीं करेगा।' शशिकला जो चौंक उठी थी वह नकली भवेन्द्र को देख कर नहीं बल्कि उसका सन्यासी रूप देख कर।"

भूपेन्द्र की बात पूरी होने पर कनक दो मिनट तक गाल पर उँगली लगा कर कुछ सोचने लगी, पीछे बोली—भूपेन्द्र बाबू, आप ठीक कहते हैं।

भूपेन्द्र ने कहा—यदि तुम बातचीत में चतुराई से शशिकला का कुछ परिचय निकाल सको तो—

कनक बात काट कर झट बोल उठी—तो आपका काम सफल हो।

"जरूर। दोनों दगाबाजों में एक का असली पता मिलने से दूसरे का भी सारा वृत्तान्त प्रकट हो जायगा।"

कनक ने उत्तेजित स्वर में कहा—अगर यह बात है तो मैं आपकी सहायता कर सकती हूँ।

भूपेन्द्र—कर सकती हो?

"कर सकती हूँ। मैं जानती हूँ कि शशिकला के बाप का घर कहाँ है।"

"कहाँ है, कहाँ है? कैसे जाना?"

"एक दिन बात ही बात में उसने 'बचपन में मैंने अपने बसन्तपुर में'—कह कर फिर बात को सँभाल लिया।"

"वहाँ उसके बाप का घर है या ससुर का—यह तुमने कैसे जाना?"

"उसने कहा न—बचपन में।"

भूपेन्द्र भौंहें सिकोड़ कर और कुछ सोच कर बोला—बाप

का ही घर हो सकता है। यदि ससुर का घर होता तो उस में भी कोई क्षति नहीं। वसन्तपुर कहाँ है, कुछ अन्दाज कर सकती हो ?

"बातचीत से तो वह बर्दवान जिले की ही रहने वाली मालूम होती है। 'र' को 'ड' और 'ड' को 'र' कहती है। हम सब साडी पहिरती हैं, वह सारी पहिरती है। हम कपडे ओढती हैं, वह कपरे ओढती है।" कह कर कनक हँसने लगी।

भूपेन्द्र ने कुछ देर सोच कर प्रसन्न हो कनक की पीठ थपथपा कर कहा—शाबाश कनक! शाबाश!! इस दफे अँधेरे में रास्ता मिला।

"अब क्या कीजिएगा ?"

"मैं आज ही कलकत्ते लौट जाऊँगा। पोस्ट आफिस की किताब से पता लगाऊँगा कि वसन्तपुर कहाँ है। फिर वहाँ जा कर गुप्त रीति से अनुसन्धान करूँगा।"

"किन्तु याद रखिएगा, शायद इसका असली नाम शशिकला नहीं है।"

"यह मुझ से कहने की जरूरत नहीं। उस गाँव की कौन स्त्री चैत के पूर्व थी और चैत के बाद से गाँव में नहीं है—इस का पता लग जाने ही से सब बात मालूम हो जायगी।"

कनक ने कुछ सोच कर कहा—यदि ऐसा हो—पाँच-सात वर्ष उसे घर छोडे हो गया हो—यहाँ दूसरी जगह से आई हो—कलकत्ते या कृष्णनगर से ?

भूपेन्द्र ने दहने हाथ से सिर दाब कर कहा—हाँ, तब तो मुश्किल होगी। अच्छा, जो साडी पहिरे वह यह कर यह साड़ी है ?

"हाँ, है तो। क्यों ?"

"वह साड़ी मुझे दे सकती हो ?"

"वह साड़ी उसके कमरे में कल भी मैंने अरगनी पर देखी है।"

"किसी बहाने से ला कर क्या मुझे वह नहीं दे सकती हो ?"

"क्या कीजिएगा ?"

"वसन्तपुर के धोबी को वह साड़ी दिखलाने से पता लगेगा कि वह किसकी साड़ी है। वह साड़ी तो मुझे जरूर चाहिए।"

"मैं विधवा स्त्री हूँ। लाल किनारे की साड़ी किस बहाने माँग लाऊँ ?"

"अच्छा, एक बार ला कर सिर्फ मुझे दिखा दो।"

"हाँ, यह हो सकता है।" कह कर कनक उठी और कुछ देर में वह साड़ी कपड़े में छिपा कर ले आई।

भूपेन्द्र ने बड़े गौर के साथ साड़ी के चारों कोनों की जाँच की। एक कोने में धोबी का लगाया हुआ चिन्ह देख पड़ा। उसने झट पाकेट से चाकू निकाल कर उस चिह्नित अंश को काट लिया।

कनक बोली—ह ! यह क्या किया ?

भूपेन्द्र ने कुछ उत्तर न दे कटे हुए अंश को अपने पाकेट में रख लिया। इसके बाद साड़ी के कटे हुए किनारे को उँगली से खींच खींच कर कुछ सूत निकाल कर फेंक दिया। कहा—लो, अब कटा हुआ नहीं जान पड़ता। फटा हुआ सा जँचता है। जाओ, साड़ी को जहाँ की तहाँ रख आओ। मैं अब जाता हूँ। दोपहर के बाद यहाँ से चल दूँगा।

"आज ही ?"

"हाँ, आज ही।"

"मुझे और यहाँ कितने दिन रहना पड़ेगा ?"

" बहुत हुआ तो दो महीने। इस अरसे में इस नक़ली भवेन्द्र की सारी गति-विधि नहीं जान सका तो मेरा नाम भूपेन्द्र नहीं।" कह कर भूपेन्द्र उत्साह-भरे मुँह से उठ खड़ा हुआ। पाकेट से कुछ नोट निकाल कर कहा—यह लो, अपनी दो महीने की तलब । और दो महीने तुम तकलीफ सह कर यहाँ रहो । इतने ही समय में कार्य्य-सिद्धि समझो।

दूसरे दिन कलकत्ते पहुँच कर भूपेन्द्र जाँच करने पर उतारू हो गया। वर्द्धवान ज़िले में एक, छपरा ज़िले में एक, और पुर्निया में एक, कुल तीन बसन्तपुर हैं। इसलिए वह निस्सन्देह हो वर्द्धवान ज़िले के बसन्तपुर में जा पहुँचा।

[५]

बसन्तपुर गाँव का डाक-घर ठीक बाजार के बीच में था। एक बज गया है। आकाश बादल से घिरा हुआ है। हवा इस तरह बन्द हो गई है कि पेड़ के पत्ते तक नहीं हिलते। मारे गरमी के जी व्याकुल हो उठता है। डाक आने का समय हो गया है। दफ्तर के बाहर बरामदे में बैठ कर डाक-बाबू इन्तजार कर रहे हैं। डाक आने पर चिट्ठी, मनीआर्डर आदि डाकिये के जिम्मे करके अपने डेरे पर जाकर विश्राम करेंगे। मनिहारी स्टेशन से घोड़ा-गाडी पर डाक आती है, चार मुसाफिरों के बैठने के लिए भी उस गाडी में जगह है। दो-दो रुपये सवारी के हिसाब से भाड़ा लगता है।

खिडकी की राह से आफिस के भीतर की घडी देख पडती है। एक बज कर दस मिनट हुए, पन्द्रह मिनट हुए, तथापि डाक की गाडी का दर्शन नहीं। पोस्ट-मास्टर कुरसी पर बैठे बैठे ऊँघ कर झुकते हैं, बीच बीच में जाग कर सतर्क दृष्टि से घडी की ओर देखते हैं। टेबल के ऊपर से वी० पी० रजिस्टर उठा कर हवा करते हैं, जम्हाई लेते हैं, और फिर झुक कर गिरते गिरते पर हो जाते हैं।

गरमी क्रमश और भी बढ़ चली। अब डेढ़ बज गया। खटाऊँ की खट-खटाहट से डाक-बाबू की आँख खुल गई। वे सावधान हो बैठे। देखा, पाठक महाशय हैं। आज शनिवार है, 'बङ्गवासी' आने का दिन है। कुरता पहने, बगल में छतरी दबाये, पान चबाते चबाते प्रभुनाथ पाठक ने आकर दर्शन दिया। पूछा—बाबू, डाक आ गई?

डाक-बाबू ने कहा—आइए पाठक जी, बैठिए। अरे मानिक लाल! भीतर से बाबू को एक कुरसी ला दो। डाक तो अभी तक नहीं आई।

पाठक ने कुरसी पर बैठ कर कहा—आज इतनी देरी क्यों हुई?

"क्या मालूम, शायद रेलगाड़ी लेट आई हो।"

दो एक बातें होने के अनन्तर पिउन की ओर देख पाठक ने कहा—एक चिलम तम्बाकु पिलाओ।

पिउन तम्बाकु भरने गया। प्रभुनाथ पाठक ने कहा—पिछले हफ्ते का हिन्दी-बङ्गवासी पढा है?

डाक-बाबू—जी नहीं।

"यूरप के एक प्रदेश में अभी भयानक युद्ध हो रहा है। अँगरेजों की अवस्था शोचनीय है।"

डाक-बाबू बड़ी उदासीनता के साथ बोले—सो क्या?

"हाँ साहब, बात ही ऐसी है। अब क्या होगा, कोई नहीं कह सकता। क्या हुआ है, जानते हैं?"—कह कर झट मनी-आर्डर का सादा फार्म ले उस पर पाठक जी ने युद्धक्षेत्र का एक नक्शा खींच डाला। गत सप्ताह के बङ्गवासी के अनुसार अँगरेजों की सेना कैसी सङ्कटापन्न अवस्था में है, यही समझाने लगे। डाक आने में विलम्ब होने से उनकी अवस्था कैसी संकटापन्न हो रही है, इसी सोच के बोझ से डाक-बाबू दबे जा रहे थे। अँगरेजी सेना के सङ्कट पर कौन ध्यान दे। वे पाठक जी की बात बात में हाँ हाँ करते जाते थे, पर सोचते थे डाक आने में विलम्ब होने की बात। सारी बात समझा चुकने पर पाठक ने कहा—आप मेरी बात का विश्वास न करेंगे। अँगरेजों का

क्या हुआ, इस विषय को सोचते सोचते एक सप्ताह से रात को मुझे अच्छी नींद नहीं आती।

इतने में पिउन तम्बाकू भर कर ले आया। डाक बाबू ने पिउन के हाथ से चिलम ले हुक्के पर रख पाठक जी को हुक्का दिया। वे बेफिक्र होकर हुक्का पीने लगे। इतने में डाक लाने वाली गाडी की घडघडाहट सुन पडी।

धीरे धीरे गाडी डाक घर के सामने आ खडी हुई। पसीने से सराबोर घोडे खडे होकर हाँफने लगे। गाडी से तीन मुसाफिर उतरे—दो गाँव के ही थे, एक अपरिचित व्यक्ति था। अपरिचित की आँखों पर चश्मा लगा था। बाल घुँघराले थे। उसका गोरा रङ्ग और सुन्दर गठन देख कर डाक बाबू और प्रभुनाथ पाठक उसके मुँह की ओर एक टक देखने लगे। यह और कोई नहीं, पाठकों का पूर्वपरिचित वही स्वर्णमृग भूपेन्द्र है।

गाडी के ऊपर से पिउन ने डाक की थैली उतार ली। कोचवान और उसके सहकारी आरोहियों ने गाडी से असबाब उतार दिया। दोनों साथियों से भूपेन्द्र ने कहा—"जरा आप ठहरिए।" और फिर अपनी पेटी खोल कर एक छपा हुआ कागज बाहर निकाला। उन दोनों के हाथ में उसकी एक एक प्रति देकर कहा—"यह पुस्तक छप रही है। बडे काम की है। अनुग्रह पूर्वक इस विज्ञापन को पढ देखिए।" इसके बाद डाकघर के दालान में आकर विनीत भाव से नमस्कार किया और—"महाशय, आप लोग भी देखें" कह कर एक विज्ञापन डाक-बाबू के हाथ में और एक प्रभुनाथ के हाथ में दिया। वहाँ एक स्टूल था, भूपेन्द्र बिना किसी के कहे उस पर बैठ गया।

पाकेट में चश्मे का खोल ढूँढते ढूँढते पाठक ने कहा—महाशय का शुभ नाम?

"श्री भूपेन्द्रनाथ।"

"घर ?"

"कलकत्ते में।"

"कहाँ जाना होगा ?"

"अभी तो आप ही के गाँव में आया हूँ।"

"किसके यहाँ ?"

"किसी के यहाँ नहीं, और सभी के यहाँ।"

"किस मतलब से आना हुआ है ?"

"एक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा हूँ। विज्ञापन देखने ही से सब ज्ञात होगा। उसी पुस्तक के लिए मसाला संग्रह करने की इच्छा से घूम रहा हूँ। दो-चार ग्राहक भी बनाने का इरादा है।" कह कर भूपेन्द्र पोस्ट-मास्टर और पाठक के मुँह की ओर विनय भरी दृष्टि से देखने लगा। पोस्ट-मास्टर बिना कुछ बातचीत किये डाक की थैली का बन्धन काटने लगे।

प्रभुनाथ पाठक चश्मा लगा कर विज्ञापन को आँख के सामने रख कर पढ़ने लगे—

हिन्दी-साहित्य में युगान्तर

अचिन्तित पूर्व, अभावनीय, अत्युपादेय

नूतन व्यवस्था।

इत्यादि सम्पूर्ण विज्ञापन पढ़ कर पाठक ने कहा—क्वार की प्रतिपदा को छप कर निकलेगा ?

"जी हाँ।"

"अगर आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।" कह कर पाठक जी गम्भीर भाव धारण कर चुप हो रहे। मानो उनके मन का भाव यही था—राम राम, कलिकाल में क्या क्या अनाचार आरम्भ हुए हैं।

भूपेन्द्र ने कहा—कहिए ?

पाठक—महीने की पहली तिथि तो अच्छा दिन नहीं है—पितृपक्ष है न।

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—इसी लिए तो इसी तिथि को निकालने का विचार किया है।

पाठक ने दुविधा में पड़ कर पूछा—इसका मतलब ?

भूपेन्द्र—पितृपक्ष में जो बाहर निकलता है वह फिर लौटता नहीं। यह शास्त्र का वचन है न ?

"जी हाँ।"

"मेरी पुस्तकें पितृपक्ष की पड़िवा को निकल कर सब की सब बिक जायँ। पाँच-सात वर्ष बाद पुस्तक विक्रेताओं की आलमारी से या दफ़्तरी मियाँ की दूकान से दाग़ लगी, झींगुर की खाई, कटी फटी अवस्था में फिर मेरे घर लौट न आवें, यही मेरी कामना है।" कह कर भूपेन्द्र दोनों हाथ जोड़ पाठक के मुँह की ओर देख कर मुस्कुराने लगा।

इसकी रसीली बातचीत सुन और विनीत भाव देख कर पाठक जी प्रसन्न हुए। बोले—यहाँ आप क्या मसाला सग्रह करेंगे ?

घोड़ा-गाड़ी में जो मुसाफिर साथ आये थे उनसे भूपेन्द्र ने गाँव की कुछ कुछ खबर सुन ली थी। इसलिए उसी के सहारे कहा—सुना है, आप के जमींदार राय साहब बड़े ऊँचे वंश के हैं। शारदाचरण बाबू के वंश का वृत्तान्त—बहुत नहीं यही दो पत्र

और उनका कुछ जीवन-चरित—मान लीजिए, चार पाँच पत्र संग्रह करना पड़ेगा। उनसे भेंट हो सकेगी?

इसी समय एक आदमी कार्ड मोल लेने आया। भूपेन्द्र ने उसको भी एक विज्ञापन दिया। प्रभुनाथ पाठक ने जवाब दिया—सवेरे आठ नौ बजे के बाद बाबू प्राय. कमरे में बैठते हैं, उसी समय जाना ठीक होगा। आप यहाँ कितने दिन रहेंगे?

"चार-पाँच दिन रहना पड़ेगा। आस-पास के गाँवों में भी जा कर विज्ञापन बाँटूँगा। यहाँ कोई मकान किराये पर मिलेगा?"

"मकान? यहाँ किराये का मकान कहाँ? यह क्या आपका कलकत्ता शहर है?"

पोस्ट-मास्टर ने डाक की जाँच करके कहा—कृष्णदास बाबू का बङ्गवासी तो आज नहीं आया।

पाठक चौंक कर बोल उठे—ऍंय्! नहीं आया?

"जी नहीं, केवल शारदा बाबू का 'बंगाली' आया है। और किसी का कोई कागज नहीं आया।"

अँगरेजी न जानने वाले बेचारे प्रभुनाथ ने हताश होकर कहा— नहीं आया?

भूपेन्द्र—क्या आप इस सप्ताह का बङ्गवासी खोजते हैं?

"जी हाँ, है?"

"है। बङ्गवासी है, प्रजामित्र है, प्रियवादी है। कल आते वक्त गाड़ी में समय काटने के लिए हैरिसन रोड के मोड पर से एक एक प्रति ले आया था।"

पाठक जी ने मानों कृतार्थ होकर कहा—कहाँ है, देखें?

"मेरे ट्रंक में" कह कर भूपेन्द्र ने बक्स खोल कर तीनों समाचार-पत्र निकाल करके पाठक महाशय के हाथ में दिये। उन्हें पाकर वे मारे ख़ुशी के उछल पड़े। हँसी से उनका चेहरा

खिल गया। उन्होंने कहा—देखो, इसी को कहते हैं, जब भगवान् देता है तब छप्पर फाड कर देता है। एक कागज के लिए जी छटपटा रहा था सो एक साथ तीन तीन मिल गये। अच्छा बाबू, इन पत्रों को मैं घर ले जाकर पढ़ूँगा। फिर आप को लौटा दूँगा। कोई हर्ज तो नहीं? आप कहाँ रहेंगे?

भूपेन्द्र—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। आप कहते हैं, भाडे पर घर नहीं मिलता—

पाठक जाने को तैयार हो गये थे। बोले—"उसका प्रबन्ध हो जायगा। भाई, आप सज्जन पुरुष हैं। मैं अपने ही घर पर आप को ले जाता। मेरी बैठक में एक ही कमरा है। कई दिन हुए, मेरी बहन के जमाई आये हैं। साथ में उनके एक मित्र भी हैं। वहाँ रहने में आप को कष्ट होगा। ये जो पेड दिखाई देते हैं, इन की आड में जो यह उजला सा घर देख पडता है वह हमारे स्कूल का घर है। मैं स्कूल कमेटी का मेम्बर हूँ। मिडिल-स्कूल है, स्कूल की दशा अच्छी है। गत वर्ष एक लडके ने पास करके ५) रु० वजीफा पाया है। इन दिनों गरमी की तातील होने से स्कूल बन्द है। चलिए, इसी स्कूल में आपको एक कमरा दिलवा देता हूँ। वहीं रहिए और मुझ गरीब के घर जो रूखा-सूखा हो उसे ग्रहण कीजिए। मैं भी ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम श्री प्रभुनाथ पाठक है।" कह कर उन्होंने ब्राह्मणत्व का प्रमाण स्वरूप, कुरते का बटन खोल, जनेऊ निकाल कर दिखा दिया।

भूपेन्द्र ने उनको नमस्कार कर कहा—अच्छा तो मैं स्कूल में रहूँगा। किन्तु भोजनादि के लिए आपको कष्ट देना—

पाठक ने बीच ही में कहा—कुछ कष्ट नहीं, मैं तो आपको कलिया, पुलाव, कबाब, कोफ्ता खिलाऊँगा नहीं। ये सब चीजें भला देहात में कहाँ? हम लोग जो खाते हैं वही साधारण दाल-

भात खिलाऊँगा। हमको इसमें कोई कष्ट नहीं अलबत्ता आपको कष्ट हो सकता है।

भूपेन्द्र—मैं भी तो दाल-भात और रोटी खाकर ही रहता हूँ। रोज रोज कलिया-पुलाव खाने को कहाँ मिलेगा? मैं भी गरीब आदमी हूँ। नहीं तो पुस्तक क्यों छपवा रहा हूँ? पेट ही के लिए तो यह व्यापार किया है।

"अच्छा तो चलिए। मैं अभी एक कमरा खाली करा दूँगा। बिछौना तो आपके साथ ही है। तीन-चार बेञ्चें एकत्र कर लेने ही से चौकी का काम निकल जायगा। स्कूल का दरबान है। जाति का मल्लाह है। आपको एक लोटा पानी ला दे सकेगा। मेरा घर भी वहाँ से दूर नहीं है। चलिए।" एक मजदूर को बुला कर उसके सिर पर ट्रंक और बिछौने की गठरी रखवा कर भूपेन्द्र को साथ ले पाठक जी आगे आगे चले।

रास्ते में जाते जाते जिसको पढ़ा-लिखा हुआ देखा उसी को भूपेन्द्र ने एक विज्ञापन दे दिया।

पाठशाला में पहुँच कर सब प्रबन्ध करके पाठक जी बोले—तो मैं अब जाता हूँ। रसोई चढ़ा देने को कहता हूँ। रसोई तैयार हो जाने पर आपको बुला भेजूँगा।

भूपेन्द्र ने कहा—मैंने कुछ खा पी लिया है। यह समय भोजन करने का नहीं है। अब एक ही बार रात में भोजन कर लूँगा।

पाठक—बहुत अच्छा, सन्ध्या होने के बाद लालटेन लेकर मेरा लड़का आवेगा। उसके साथ आइएगा। अभी मैं जाता हूँ।

भूपेन्द्र—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। यदि मेरा एक और उपकार कर दे सकें तो—

"क्या?"

"कपड़े मैले हो गये हैं। कलकत्ते से चलते समय बदमाश धोबी कपड़े नहीं लाया। जो मौजूद थे वही लेकर चल दिया। यहाँ अच्छा धोबी है?"

"जी हाँ, यहाँ एक धोबी है। उसका नाम नीलाम्बर है। नाम भी नीलाम्बर, काम भी नीलाम्बर—यथा नाम तथा गुण।"

"यह क्या?"

"कपड़ा खूब साफ नहीं धोता। देहाती धोबी क्या आपके कलकतिया धोबी की बराबरी कर सकता है?"

"सही है, अभी किसी तरह काम चला लेना होगा। कृपा कर, नीलाम्बर को खबर भेजवा दीजिए।"

"अच्छा, घर जाकर उसे अभी बुलवा भेजता हूँ। तो जाता हूँ—" कह कर, दुर्लभ रत्न की भाँति उन समाचार-पत्रों को हाथ में लिये, आनन्द से झूमते हुए पाठक महाशय अपने घर की ओर चले।

भूपेन्द्र ने चूल्हा जला कर चाय के लिए पानी चढ़ा दिया। रोटी मक्खन, मेवा और मिठाई आदि सामान उसकी टिफिन-टोकरी में मौजूद था।

आलू-बैंगन की तरकारी मँगा कर खाई है। इस सप्ताह के बङ्गवासी, प्रजा-मित्र, प्रियवादी और वसुमती ये चारों पत्र निकलते ही भेज देने के लिए भूपेन्द्र ने कलकत्ते पत्र भेज दिया है—प्रभुनाथ पाठक भी दिन गिन रहे हैं।

चौथे दिन दोपहर को, खा-पी कर, भूपेन्द्र डाक घर गया। कलकत्ते से एक पैकेट और विज्ञापन छप कर आने की बात थी। डाकबाबू उसी समय भोजन करके पान चबाते हुए घर से बाहर आये। डाक की गाड़ी आने म अभी कुछ देर है। दोनों बाबू बैठ कर गपशप करने लगे। इतने में शिवगञ्ज थाने के दारोगा साहब घोड़े पर चढ़े वहाँ आ पहुँचे।

"दारोगाजी हैं—आइए, आइए—अरे कोई है! मानिकलाल, आफिस के भीतर से कुरसी ले आओ।" कहते कहते डाकबाबू उठ खड़े हुए। एक रनर (हरकारे) ने जाकर घोड़े की लगाम पकड़ी। दारोगाजी घोड़े से उतर पड़े।

भूपेन्द्र ने देखा, दारोगाजी की उम्र कम है। चौबीस पचीस वर्ष से अधिक न होगी। खाकी रङ्ग की सरकारी पोशाक के सबब से ही कुछ भयङ्कर देख पड़ते हैं, नहीं तो हैं हँसमुख और सुन्दर युवक। डाकबाबू ने कहा—आप कहाँ से आ रहे हैं?

"पास ही एक गाँव में गया था—कुछ तहकीक़ात करनी थी।" कह कर जेब से रुमाल निकाल कर दारोगाजी माथे का पसीना पोंछने लगे।

डाकबाबू—मालूम होता है, अभी तक आपने भोजन नहीं किया?

"जी नहीं।"

"यहीं स्नान कीजिए—मैं रसोई चढ़ाने को कह देता हूँ।"

दारोगाजी विनय की हँसी हँस कर बोले—नहीं, नहीं

उसकी जरूरत नहीं। प्यास बहुत लगी है—एक गिलास ठण्डा पानी मँगवा दीजिए।

"पानी ?—नहीं, नहीं, थोडा सा शरवत—नीबू का रस मिला कर लाता हूँ।"

"इतना कष्ट किस लिए ?"

"कुछ कष्ट नहीं। मैं जाता हूँ, शरवत बनाने को कहे आता हूँ। भूपेन्द्र बाबू, तब तक आप दारोगाजी से बातचीत कीजिए।" कह कर डाकबाबू भीतर चले गये।

दारोगाजी भूपेन्द्र की ओर कुरसी घुमा कर बोले—आपका पूरा नाम क्या है ?

"भूपेन्द्रनाथ त्रिपाठी।"

दारोगाजी ने कहा—मेरा नाम विश्वमोहन मुखोपाध्याय है। आप को तो पहले यहाँ नहीं देखा।

"मैं यहाँ चार दिन से हूँ। पहले कभी इस प्रान्त में नहीं आया था। आप इस थाने में कब से हैं ?"

"दो वर्ष हुए। मैं पहले पहल दारोगा होकर यहीं आया हूँ।"

इस तरह बातचीत हो रही थी, इतने में डाकबाबू लौट आये। बोले—शरबत लिये आ रहा है। भूपेन्द्र बाबू से क्या क्या गपशप हुई ?—भूपेन्द्र बाबू! दारोगाजी को अपना एक विज्ञापन दीजिए न ? ये उस जमाने के दारोगा नहीं हैं—नये संसार के दारोगा हैं। खूब पढ़े-लिखे हैं। इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है।

भूपेन्द्र—विज्ञापन तो अब नहीं है। सब बँट गये। डाक से आने को हैं।

पूछा—कैसा विज्ञापन ?

—ये एक पुस्तक छपा रहे हैं।

दारोगा—कैसी पुस्तक? क्या आप ग्रन्थकार हैं? कोई काव्य है या उपन्यास?

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—काव्य भी नहीं, उपन्यास भी नहीं। एक तरह का इतिहास—'भारतीय जमींदार-चरितमाला।'

पोस्टमास्टर का नौकर एक गिलास नीबू का शरबत ला कर सामने आ खड़ा हुआ। दारोगाजी उसके हाथ से गिलास ले शरबत पी कर स्वस्थ हुए।

भूपेन्द्र ने जेब से पान का डिब्बा निकाल कर दारोगाजी के आगे रक्खा।

दारोगा ने कहा—थैंक्स! मैं पान नहीं खाता।

भूपेन्द्र—यह क्या? आप पान नहीं खाते? पान खाना तो पुलिस का प्रधान कार्य है।

"हमारे दारोगाजी यह पान नहीं खाते और वह पान भी नहीं खाते। गवर्नमेंट ने इन सब पढ़े लिखे सज्जनों को पुलिस में तैनात करके मुहकमे की मिट्टी कर डाला।" कह कर डाक बाबू खूब जोर से हँसने लगे। कुछ ठहर कर बोले—एक महाशय ने रुपया पैसा न रहने के कारण किसी दारोगा को पान खाने के लिए एक बछड़ा दिया था न?

दारोगा ने कहा—जी हाँ, यह एक पुरानी गप है।

इतने में डाक की गाडी आ पहुँची। भूपेन्द्र के नाम से विज्ञापनों का एक बण्डल आया था। पैकेट खोल कर भूपेन्द्र ने दारोगाजी को एक विज्ञापन दिया।

दारोगाजी उसे ध्यानपूर्वक पढ़ कर कुछ सन्दिग्धभाव से भूपेन्द्र का परिचय पूछने लगे। यहाँ आये के दिन हुए हैं, और कितने दिन रहना होगा? इतने दिनों में कहाँ तक काम निकला? इत्यादि। प्रस्तावित पुस्तक के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें

उसकी जरूरत नहीं। प्यास बहुत लगी है—एक गिलास ठण्डा पानी मँगवा दीजिए।

"पानी ?—नहीं, नहीं, थोडा सा शरबत—नीबू का रस मिला कर लाता हूँ।"

"इतना कष्ट किस लिए ?"

"कुछ कष्ट नहीं। मैं जाता हूँ, शरबत बनाने को कहे आता हूँ। भूपेन्द्र बाबू, तब तक आप दारोगाजी से बातचीत कीजिए।" कह कर डाकबाबू भीतर चले गये।

दारोगाजी भूपेन्द्र की ओर कुरसी घुमा कर बोले—आपका पूरा नाम क्या है ?

"भूपेन्द्रनाथ त्रिपाठी।"

दारोगाजी ने कहा—मेरा नाम विश्वमोहन मुखोपाध्याय है। आप को तो पहले यहाँ नहीं देखा।

"मैं यहाँ चार दिन से हूँ। पहले कभी इस प्रान्त में नहीं आया था। आप इस थाने में कब से हैं ?"

"दो वर्ष हुए। मैं पहले पहल दारोगा होकर यहीं आया हूँ।"

इस तरह बातचीत हो रही थी, इतने में डाकबाबू लौट आये। बोले—शरबत लिये आ रहा है। भूपेन्द्र बाबू से क्या क्या गपशप हुई ?—भूपेन्द्र बाबू ! दारोगाजी को अपना एक विज्ञापन दीजिए न ? ये उस जमाने के दारोगा नहीं हैं—नये संसार के दारोगा हैं। खूब पढ़े-लिखे हैं। इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है।

भूपेन्द्र—विज्ञापन तो अब नहीं हैं। सब बँट गये। आज की डाक से आने को हैं।

दारोगा ने पूछा—कैसा विज्ञापन ?

डाकबाबू—ये एक पुस्तक छपा रहे हैं।

दारोगा—कैसी पुस्तक ? क्या आप ग्रन्थकार हैं ? कोई काव्य है या उपन्यास ?

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—काव्य भी नहीं, उपन्यास भी नहीं। एक तरह का इतिहास—'भारतीय जमींदार-चरितमाला।'

पोस्टमास्टर का नौकर एक गिलास नींबू का शरबत ला कर सामने आ खड़ा हुआ। दारोगाजी उसके हाथ से गिलास ले शरबत पी कर स्वस्थ हुए।

भूपेन्द्र ने जेब से पान का डिब्बा निकाल कर दारोगाजी के आगे रक्खा।

दारोगा ने कहा—थेन्क्स ! मैं पान नहीं खाता।

भूपेन्द्र—यह क्या ? आप पान नहीं खाते ? पान खाना तो पुलिस का प्रधान कार्य है।

"हमारे दारोगाजी यह पान नहीं खाते और वह पान भी नहीं खाते। गवर्नमेंट ने इन सब पढ़े लिखे सज्जनों को पुलिस में तैनात करके मुहकमे को मिट्टी कर डाला।" कह कर डाक बाबू खूब जोर से हँसने लगे। कुछ ठहर कर बोले—एक महाशय ने रुपया पैसा न रहने के कारण किसी दारोगा को पान खाने के लिए एक बछड़ा दिया था न ?

दारोगा ने कहा—जी हाँ, यह एक पुरानी गप है।

इतने में डाक की गाड़ी आ पहुँची। भूपेन्द्र के नाम से विज्ञापनों का एक बण्डल आया था। पैकेट खोल कर भूपेन्द्र ने दारोगाजी को एक विज्ञापन दिया।

दारोगाजी उसे ध्यानपूर्वक पढ़ कर कुछ सन्दिग्धभाव से भूपेन्द्र का परिचय पूछने लगे। यहाँ आये के दिन हुए हैं, और कितने दिन रहना होगा ? इतने दिनों में कहाँ तक काम निकला है ? इत्यादि। प्रस्तावित पुस्तक के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें

पूछी। अन्त मे कहा—आप की इच्छा हो तो कुछ और विज्ञापन मुझे दे दीजिए। शिवगज में बहुत लोग आते हैं। थाने में—डाकघर में—स्कूल में ऐसी ऐसी जगहों में चिपकवा दूँगा। यह कह कर वे उठ खडे हुए।

दारोगाजी को बहुत धन्यवाद देकर भूपेन्द्र ने उनके हाथ मे कुछ विज्ञापन के फार्म दिये। उन्हे पाकेट में रख, पोस्ट-मास्टर को नमस्कार करके, दारोगाजी घोडे पर सवार हो चल दिये।

[७]

तीन दिन बाद सवाद आया कि शारदाचरण बाबू कुछ अच्छे हैं, आज पिछले पहर दिन को भूपेन्द्र से भेंट करेंगे।

प्रभुनाथ पाठक ने पहले ही से भूपेन्द्र को आश्वासन दे रक्खा था कि वे उसे अपने साथ बाबू के पास ले जायँगे। किन्तु आज डाक से तीन तीन समाचार-पत्र आये हैं। पाठक महाशय युद्ध-समाचार पढ़ने में ऐसे ध्यानस्थ हैं कि उन्हें सिर हिलाने की भी फुरसत नहीं, इसलिए चार बज जाने पर भूपेन्द्र अकेला ही जमींदार के घर की ओर चला। इस बीच में लोगों के मुंह से सुन कर उसने शारदा बाबू का जो जीवन-चरित लिख रक्खा था, वह साथ लेता गया।

दो मंजिले के एक सुसज्जित कमरे में बाबू साहब की बैठक है। नीचे फर्श बिछा है। उसके बीच में गलीचे पर मसनद के सहारे बाबू साहब बैठे हैं। चाँदी की गुड़गुड़ी के ऊपर सुनहरी चिलम में गया जी की खुशबूदार तम्बाकू जल रही है। मुँहनाल हाथ में लिये बाबू साहब मित्रों और मुसाहबों से बातचीत कर रहे हैं—बीच बीच में धूम्र पान भी कर रहे हैं। दीवाला में कई एक विलायती चित्र टँगे हैं। दो बड़े बड़े आइने और एक मार्बल पत्थर की धर्मघड़ी शोभा पा रही हैं। भूपेन्द्र वहाँ पहुँच नमस्कार कर खड़ा हुआ।

बाबू ने पूछा—आप ही का नाम भूपेन्द्रनाथ है?

"जी हाँ।"

"आइए, बैठिए। इधर कई दिनों से मेरी तबीयत बहुत ही खराब थी, इसी से न आप से भेंट ही कर सका और न आप

की कुछ खोज खबर ले सका। सुना है, आप हमारे स्कूल के कमरे में ठहरे हैं, कोई कष्ट तो नहीं होता ?"

"जी नहीं, कोई कष्ट नहीं होता, बड़े आराम से हूँ।" कह कर भूपेन्द्र विनयभरी दृष्टि से बाबू की ओर देखने लगा।

बाबू साहब दो-चार दफे हुक्का गुड़गुड़ा कर बोले—आपका घर तो कलकत्ते ही में है ? आपका विज्ञापन पढ़ा। आप पुस्तक छपा रहे हैं। क्या नाम है 'भारतीय जमींदार चरितमाला !'

भूपेन्द्र ने सिर हिला कर कहा—जी हाँ।

शारदा बाबू स्वर को गभीर कर सिर हिलाते आँख नचाते हुए बोले—जमींदार-चरितमाला ! माला ! माला !

सभासद्गण यह मौखिक भाव देख कर समझ गये कि बाबू व्यङ्ग कर रहे हैं—किन्तु व्यङ्ग का कारण कोई नहीं जान सका। तथापि वे लोग दबी हुई हँसी से परस्पर मुखावलोकन करने में नहीं चूके।

बाबू ने कहा—माला !—अच्छा माला कैसी होती है। फूलों की ही तो होती है ?

भूपेन्द्र ने कहा—फूलों की होती है—मोतियों की होती है—और भी—

शारदा बाबू ने बात काट कर कहा—अर्थात् अच्छी चीजों की ही होती है, सुन्दर सुन्दर पदार्थों की ही होती है। कहिए यही बात है न ? किन्तु अड़ूसे और कुरैया के फूलों की तो नहीं होती। हमारे इस बङ्ग बिहार प्रदेश में जो जमींदार बाबू हैं, उनके चरित्र को क्या आप माला तैयार करने योग्य सुन्दर और पवित्र वस्तु समझते हैं ?—यह कह कर बाबू ही ही कर हँसे और गुड़-गुड़ी पीने लगे।

भूपेन्द्र कुछ सोच कर बोला—आपने ठीक कहा है, सुन्दर

वस्तुओं की ही माला होती है। बुरी चीजों की नहीं। किन्तु जो माला गूँथता है, वह कुछ विवेचना भी करता है। हाथ के पास जो आजाता है, उसी को नहीं गूँथ डालता। फूल भी तो कई प्रकार के होते हैं। गुलाब, बेला, चमेली, जाही, जूही से लेकर जंगली फूल तक। परन्तु माली बेला, जुही और गुलाब आदि सुगन्धित फूलों को ही चुनता है। मैं भी उसी तरह विवेचना करके ही माला गूथने बैठा हूँ। यह देखिए, मैंने पहले कभी आप को नहीं देखा था—किन्तु आप का सौरभ मैं उतनी दूर कलकत्ते में बैठे ही बैठे पा गया। आप इस दिहात में जंगल के भीतर छिप कर खिले हैं सही परन्तु सुगन्ध को कैसे छिपावेंगे?

सुन कर शारदा बाबू मन्द मन्द मुसकुराने लगे। यह भली भाँति प्रकट हो गया कि उनका मन यथेष्ट रूप से प्रसन्न हो गया है। सभास्थित लोग प्रशंसा भरी दृष्टि से भूपेन्द्र की ओर देखने लगे। एक व्यक्ति ने कहा— वाह! उपमा तो आपने बहुत अच्छी दी। आपने बहुत ठीक कहा है। हमारे बाबू साहब के समान गुणवान् जमींदार इस प्रान्त में कोई है ही नहीं।

इसके बाद बाबू साहब बड़ी सहृदयता के साथ पुस्तक की बात पूछने लगे। पाँच पुस्तकें लेना उन्होंने स्वीकार किया। जीवनी के सम्बन्ध में भूपेन्द्र जो थोड़ा सा लिख लाया था, वह पढ़ कर सुनाया। बाबू ने बीच बीच में जो घटाने बढ़ाने का प्रस्ताव किया उसको भूपेन्द्र ने नोट कर लिया। दो तीन वर्ष का एक पुराना फोटो अन्दर महल में है, वह बाबू साहब कल सबेरे भूपेन्द्र के पास भेज देंगे।

इसके अनन्तर भूपेन्द्र ने कहा—आपके छोटे भाई नवीन बाबू का वृत्तान्त इसमें विशेष रूप से नहीं लिखा गया। उनसे एक बार भेंट हो सकती है?

बाबू साहब कुछ उदासी के साथ बोले—नवीन ? वह तो यहाँ नहीं है।

"वे कहाँ हैं ?"

"कलकत्ते।"

"कलकत्ते ! तब तो मैं स्वय जाकर उनसे भेंट करूँगा। उनका पता यदि कृपा करके—"

बाबू साहब ने कहा—उस दिन उसकी चिट्ठी आई है। क्या ठिकाना लिखा है—शायद घोष की गली, पैंसठ या पैंतीस नम्बर लिखा है—भूलता हूँ। मास्टर साहब !—

दूसरे कमरे से एक व्यक्ति सामने आ खड़ा हुआ। शारदा बाबू ने कहा—छोटे बाबू ने इस बार चिट्ठी में जो पता लिखा है वह एक कागज पर लिख कर इनको दे दो।

कागज लेकर भूपेन्द्र ने कहा—उस ओर तो मैं प्राय बराबर जाता हूँ। कलकत्ते पहुँचते ही मैं उनसे भेंट करूँगा। कल सबेरे चित्र भेज देने की कृपा आप करेंगे ही। अच्छा तो अब मुझे आज्ञा दीजिए। नमस्कार।

---

[८]

डेरे पर लौट कर भूपेन्द्र बड़े गोरख-धन्धे में पड़ गया। वह सोचने लगा—नवीनचन्द्र कलकत्ते में है। तब तो मेरा सब अनुमान झूठ हो गया। वह नक़ली भवेन्द्र तब कौन है? और शशिकला ही कौन है? नक़ली भवेन्द्र यदि नवीन नहीं है तो शशिकला के लीलावती होने ही की क्या सम्भावना? यदि शशिकला सचमुच लीलावती हो तो भवेन्द्र नवीनचन्द्र छोड़ और कौन हो सकता है? इन कई दिनों में भूपेन्द्र ने जो कुछ सिद्धान्त किया था, सभी उलट पलट गया।

रात में उसके भोजनार्थ पूरी तरकारी आई—परन्तु वह आधी पड़ी ही रही।

बहुत रात जाने पर एकाएक उसके मन में यह ख्याल पैदा हुआ—मैं एक बड़ी भूल कर बैठा हूँ। शशिकला का नेहर या ससुराल वसन्तपुर में है। सिर्फ़ इसी का भरोसा करके मैं इस पोस्ट आफ़िस वसन्तपुर में आया हूँ। शशिकला का वह वसन्तपुर यदि दूसरा हो जहाँ डाक घर न हो तो?

दूसरे दिन सवेरे उठ कर भूपेन्द्र ने नीलाम्बर धोबी को बुला भेजा—साड़ी का काटा हुआ कोना उसे दिखा कर वह संशय मिटावेगा। शकली की माँ से दो बातें पूछने का उपाय क्या है, यह भी भूपेन्द्र सोचने लगा।

इतने में थाने से एक कान्सटेबल ने आकर दारोगा जी का एक पत्र भूपेन्द्र को दिया। दारोगाजी ने लिखा है, विज्ञापन पढ़ कर कितने ही लोग पुस्तक के लिए आग्रह कर रहे हैं—यदि

आप दो चार दिन शिवगज में आकर रहें तो कुछ ग्राहक जुट सकते हैं।

दारोगाजी को धन्यवाद देकर भूपेन्द्र ने उत्तर में लिख दिया—"मैं शीघ्र आकर आपसे एक दिन मिलूँगा।" कान्सटेब्ल पत्र लेकर चला गया।

धोबी के घर से आदमी ने लौट कर कहा—आपके कपड़े अभी तैयार नहीं हुए, आज शाम को लेकर नीलाम्बर आवेगा।

भूपेन्द्र ने कटी मछली की भाँति छटपटा कर सारा दिन बिताया। शाम को शिवगज थाने से एक कान्सटेब्ल दारोगाजी का दूसरा खत लेकर पहुँचा। उन्होंने लिखा है, "कल सबेरे दो बड़े जमींदार थाने में आवेंगे। आशा है, वे आपकी पुस्तक के विशेष रूप से ग्राहक होंगे। इसलिए आप नौ-दस बजे के भीतर अवश्य थाने में आइए। आलस्य न कीजिए।" पत्र पढ़ कर भूपेन्द्र ने कान्सटेब्ल से कहा—"आप बाहर बैठिए, मैं चाय पीकर जवाब लिख देता हूँ।" कान्सटेब्ल बाहर बैठ गया।

भूपेन्द्र चाय पी रहा है, इसी समय नीलाम्बर धोबी धोये हुए कपड़ों की गठरी बगल में दबाये आ पहुँचा।

कपड़े गिन कर भूपेन्द्र ने कहा—अजी धोबी, इस टुकड़े को तो देखो। इसके कोने में जो चिह्न है, यह क्या तुम्हारे हाथ का है?

कपड़े का फटा टुकड़ा हाथ में ले नीलाम्बर ने चिह्न देखा। बाहर की ओर तजवीज करके देखा, कान्सटेब्ल पेड़ के नीचे बैठा है। वह सदिग्धभाव से भूपेन्द्र के मुँह की ओर देखने लगा।

भूपेन्द्र—यह चिह्न तो तुम्हारे ही हाथ का है। क्यों? यह किसकी साड़ी का कोना है, मैं यही जानना चाहता हूँ।

साड़ी की किनार नीलाम्बर ने देखते ही पहचान ली थी।

यह कृष्णदास उपाध्याय की लापता बेटी लीलावती की थी। उसके सम्बन्ध में जो अपवाद गाँव में फैला है उसे वह भली भाँति जानता था। इसलिए उसके मन में कुछ खौफ हुआ। वह थूक घोंट कर काँपते हुए स्वर से बोला—हुजूर, यह निशान—किसके हाथ का है, यह मैं कैसे कहूँगा। आपको यह कहाँ मिला?

भूपेन्द्र ने कड़े स्वर में कहा—मुझे कहीं मिला हो, तुम को इससे क्या काम? जो मैं पूछता हूँ उसका जवाब दो।

नीलाम्बर ने हाथ जोड़ कर कहा—हुजूर! मैं गरीब आदमी हूँ।

भूपेन्द्र ने घुड़क कर कहा—बदमाश, शैतान, साले! तू गरीब है या अमीर, यह कौन पूछता है? यह निशान तेरा लगाया हुआ है या नहीं, यह ठीक ठीक बतला।

घुड़की खाकर नीलाम्बर काँपने लगा। उसने कातर स्वर में कहा—बाबू साहब, क्या हुआ है?

भूपेन्द्र ने एकदम कह दिया—खून हुआ है।

नीलाम्बर रुँधे हुए कण्ठ से बोला—अय! बहुई का खून कर डाला है?

भूपेन्द्र ने जो जानना चाहा था वह जान लिया। तथापि निश्चय कर लेने के लिए उसने पूछा—हाँ, खून कर डाला है। तुम्हारी बहुई का नाम क्या था, बतलाओ।

-"नीलवती। उपाध्याय की बेटी नीलवती बहुई। हाय! हाय! किसने खून किया!"

भूपेन्द्र के मन का सब सन्देह दूर हुआ। वह दिल्लगी के तौर पर बोला—और कौन खून करेगा? तुम्हारे जमींदार शारदा बाबू के भाई ने खून किया है।

"छोटे बाबू ने? ओफ! यह तो हम लोगों ने तभी ताड़ लिया

था। अच्छा, तो बाबू साहब, अब उसका क्या होगा? क्या आप पुलिस हैं?"

भूपेन्द्र ने गम्भीरभाव से कहा—हाँ, मैं डिटेक्टिव पुलिस हूँ।

"क्या कहा सरकार!"

"डिटेक्टिव, डिटेक्टिव, तुम लोग जिसे खुफिया पुलिस कहते हो।" कह कर भूपेन्द्र दोनों हाथों से मूँछों पर ताव देने लगा।

नीलाम्बर ने फिर बाहर बैठे हुए कान्सटेब्ल की ओर देखा। आखिर वह भूपेन्द्र के दोनों पैर पकड गिडगिडा कर बोला—दुहाई हुजूर की, मैं गरीब आदमी कुछ नहीं जानता। मुझे गवाही-साखी के फसाद में न फँसाइएगा। बल्कि हुजूर के कपडे जो धोकर लाया हूँ उसकी धुलाई भी मैं नहीं चाहता—धुलाई का पैसा मैंने हुजूर को पान खाने के लिए दिया। दुहाई डिकटिव बाबू की, दया कीजिए।

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—अच्छा, जा, जा। खबरदार! ये बातें किसी से कहना मत।

नीलाम्बर अपने दोनों कान पकड कर जोर से मलते मलते बोला—हुजूर कभी नही। किसी से नहीं कहूँगा। जीभ काट कर कोई फेंक देगा तो भी नहीं—यह कह कर वह चल दिया।

बाहर आकर उसने डग लम्बी की। पीछे की ओर बारबार ताकता हुआ वह इधर-उधर घूमता-फिरता जमींदार महाशय के मकान के पिछवाडे के द्वार पर पहुँचा। भीतर जा कर देखा कि शारदा बाबू बरामदे में बैठ कर सान्ध्य-सन्ध्या करने के लिए हाथ पैर धो रहे हैं।

नीलाम्बर धडाम से नीचे गिर कर घुटने के बल बैठा और हाथ जोड कर बोला—हुजूर! हमारे माँ बाप हैं—आपही के अन्न

से हम लोग पले हैं—आप को एक खबर देने आया हूँ। बड़ी विपत्ति की बात है।

शारदा बाबू ने कहा—क्या रे नीला, क्या है?

नीलाम्बर ने रोते स्वर में कहा—हुजूर, खूनी मामला है। गाँव में पुलिस का क्या कहते हैं, वही आया है।

अचम्भे में आकर शारदा बाबू ने कहा—कौन आया है—क्या माजरा है? पुलिस का क्या आया है? साफ साफ बोल।

"हुजूर, नाम भूल गया हूँ। वह जो दीवालों पर कागज साटता फिरता है, सिर हिला कर बोलता है, गोरा है।"

शारदा बाबू और भी चकरा कर बोले—सिर हिला कर बोलता है—गोरा है, तू क्या बकता है रे? पागल तो नहीं हो गया?

नीलाम्बर ने लम्बी साँस लेकर कहा—"हुजूर, पागल होने ही के बराबर समझिए। हाँ, याद आया। डिकटिव, पुलिस का डिकटिव गाँव में आया है।" इसके बाद, स्कूल में जो कुछ बात हुई थी, सब कह सुनाई। आखिर हाथ जोड़ कर बोला—यह खबर जो मैंने दी है, यह जाहिर न हो। हुजूर! जाहिर होने से यह गरीब मारा जायगा। बहुत दिनों से हुजूर का नमक खाया है, उसी का खयाल करके खबर देने आया हूँ। छोटे बाबू के प्राण बचाने के लिए जो करना हो सो कीजिए। प्रणाम। सरकार, अब जाता हूँ।

नीलाम्बर के चले जाने पर शारदा बाबू का सायं-सन्ध्या करना बन्द हो गया। पोस्ट-आफिस में दारोगा के साथ भूपेन्द्र की भेंट होना और आज सबेरे उसके पास थाने से कान्सटेब्ल का आना शारदा बाबू सुन चुके थे। नवीन का कलकत्ते का पता जानने के लिए भूपेन्द्र ने जो व्यग्रता प्रकट की थी, वह भी

उनको याद हो आई। इसलिए उन्होंने धोबी के दिये हुए सवाद पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं पाया। टोमहल के ऊपर जाकर माँ-बहन आदि के साथ उन्होंने कुछ देर तक गुप्त परामर्श किया। फिर बैठक में आकर एक विश्वस्त कर्मचारी को बुला भेजा।

बड़ी देर तक सलाह करके नौ बजे रात को वह कर्मचारी बाहर गया। आध घंटे के बाद लौट कर उसने कहा—वह तो पाँच हजार रुपये से कम पर किसी तरह राजी नहीं होता। कहता है, खून का पूरा सबूत उसके हाथ में मौजूद है—केवल यही जानना बाकी था कि स्त्री कौन है, सो वह भी यहाँ आकर जान लिया। उसने कहा है, अभी आधा रुपया—ढाई हजार,—दाखिल करना होगा। प्रमाण न पाने की आखिरी रिपोर्ट देकर बाकी ढाई हजार लूँगा।

शारदा बाबू ने फिर अन्दर जाकर विचार किया। एक थैली में ढाई हजार रुपये (कुछ नोट और कुछ गिन्नियाँ) बन्द करके कर्मचारी के हाथ में दिये।

भूपेन्द्र ने गहरी रात में चुपचाप उन रुपयों को गिनकर अपने पास रख लिया और कर्मचारी को अभय देकर विदा किया। लेट कर वह आप ही आप हँसने और कहने लगा—इसी को कहते हैं, बिना पेड़ चढ़े ही फलों का गुच्छा हाथ आना।

[६]

भूपेन्द्र की आँखों में अधिक रात तक नींद नहीं आई। वह मन ही मन सोचने लगा—

"जब यहाँ तक आगे बढ़ आया हूँ तब किसी तरह अब पीछे न हटूँगा। यह नकली भवेन्द्र कौन है, इसका ठीक ठीक पता बिना लगाये नहीं छोड़ूँगा। जैसे होगा, उसका असली परिचय लेना ही होगा। पहले तो मैंने यही सोचा था कि यह नवीन नहीं है किन्तु इसका क्या निश्चय? 'कलकत्ते से एक चिट्ठी आई है, उसमें ठिकाना लिखा हुआ है।' केवल इसी से क्योंकर यह सिद्धान्त कर सकता हूँ कि नवीन वासुदेवपुर में जाकर भवेन्द्र नहीं बना है? मैं अभी इस वसन्तपुर में ही हूँ, कलकत्ते का ठिकाना लिख कर यदि किसी को एक पत्र लिखूँ,—और वह पत्र दूसरे लिफाफे में बंद करके कलकत्ते में किसी मित्रके पास भेज दूँ और उसे लिख दूँ कि इस पत्र को वहाँ के लेटर-बक्स में छोड़ दें तो यहाँ मेरे न रहने का क्या सुबूत है! इसलिए इस दफे कलकत्ते जाते ही मैं उसकी तलाश करूँगा—नवीन उस ठिकाने के मकान में रहता भी है या नहीं। अच्छा, यदि जा कर देखूँ, वह वहाँ मौजूद है, तो क्या करूँगा? यदि वह असली नवीन न होकर भवेन्द्र की तरह अपने को ही नवीन बतलावे तो इस के लिए नवीन का भी एक चित्र यहाँ से अपने साथ ले जाना जरूरी है। यह लीलावती यहाँ से किस रास्ते कहाँ कहाँ गई, क्या किया, इन सब बातों का पता लगाने ही से नकली भवेन्द्र का सच्चा परिचय मिल जायगा। जहाँ तक हो सके, इन बातों

का पता यहाँ से लगा लेना ही ठीक है। शकली की माँ से भी कुछ पूछ-ताछ करनी है। परन्तु वह क्या असल बात बतला देगी? लीलावती मारी गई है, मैं खुफिया पुलिस गुप्त रीति से यहाँ तहकीकात करने आया हूँ, कल यह बात सारी बस्ती में निःसन्देह फैल जायगी। इसलिए शकली की माँ के पेट से कोई बात निकालना कठिन हो जायगा। अगर मैं सचमुच पुलिस का आदमी होता तथा साथ में दो चार सिपाही और चौकीदार रहते, हथकडी रहती और हाजत में बन्द कर रखने का अधिकार रहता तो उसे धमका कर या समझा-बुझा कर किसी तरह उससे सब बात कहला लेता। किन्तु यह कुछ भी नहीं है, मैं तो वही हूँ—'ढाल न तरवार फतहखाँ सरदार'।

बिछौने से उठ कर भूपेन्द्र ने चिराग जलाया। कुछ देर तक घर के भीतर टहलता रहा। फिर दारोगा की लिखी पिछली चिट्ठी पर उसकी नजर पडी। उसे खोल कर भूपेन्द्र ने फिर एक बार पढा और आप ही आप कहने लगा—"यही तो असली पुलिस मौजूद है। मेरे पास रुपये भी यथेष्ट हैं। रुपये से वशीभूत करके इस दारोगा से ही काम निकाल सकता हूँ। किन्तु ये तो पान-तम्बाकू कुछ खाते नहीं।" कुछ क्षण यों ही टहल कर चिराग बुता भूपेन्द्र फिर लेट रहा।

लेट कर फिर सोचने लगा—पान नहीं खाते—कविता तो पढते हैं। मैं पुस्तकें छपवाता हूँ, सुन कर पहले ही पूछा, 'काव्य या उपन्यास'?—अच्छा, एक काम करना क्या ठीक न होगा? सुना है, वह कालेज का पढा हुआ नये खयाल का आदमी है। अगर मैं एक उत्तम प्रेम की कहानी सुनाऊँ—मैं आप ही उस कहानी का नायक बनूँ ... का उद्घाटन करने से कदाचित् मेरे साथ

फक्त बढ़ जाय तो फिर अवश्य ही उसका हृदय पसीजेगा और वह अपने कान्सटेब्ल, चौकीदार और हथकड़ी इत्यादि सब सामान देकर मेरी सहायता करने को उद्यत हो जाय। यही ठीक है। परन्तु कहानी किस ढङ्ग पर तैयार की जाय? केवल कुछ उलट-पलट कर, कहीं कुछ बढ़ा-घटा कर, प्रस्तुत विषय को ही कहानी के रूप में ठीक कर लूँगा।

तीन बजे रात को भूपेन्द्र नींद में सोया। दूसरे दिन सात बजे उसकी नींद टूटी। मुँह हाथ धो चाय-पानी पीकर पैदल ही वह शिवगञ्ज थाने की ओर रवाना हुआ।

शिवगञ्ज बसन्तपुर से डेढ़ कोस पर था। आठ बज जाने पर उसने थाने में पहुँच कर सुना, दारोगाजी अभी अन्तःपुर से बाहर नहीं निकले। नोकर के द्वारा अपने आने का सम्वाद भेज कर भूपेन्द्र दारोगाजी की बैठक में बैठा।

थोड़ी देर के बाद दारोगाजी गञ्जी पहने चट्टी-जूता चटकाते मुस्कुराते हुए बाहर आये। उनके हाथ में एक नया मासिक पत्र था।

भूपेन्द्र का सम्मान करके उन्होंने पूछा—चाय पीजिएगा?

भूपेन्द्र—धन्यवाद! मैं तो अभी चाय पी कर आया हूँ।

"इतनी दूर पैदल आये हैं—थक गये होंगे—थोड़ी सी और पी लेने से थकावट दूर हो जायगी।"

भूपेन्द्र के स्वीकार करने पर दारोगा ने नौकर को चाय लाने की आज्ञा दी।

शिष्टाचार की दो-चार बातें होने के अनन्तर दारोगा ने कहा—आप इतने सवेरे आगये हैं! आपकी *जमींदार-चरित माला* के ख़रीदार तो दस बजे के पेश्तर आयेंगे नहीं।

भूपेन्द्र ने मुस्कुरा कर कहा—मैं जो यह 'जमींदार-चरित माला' का विज्ञापन लिये घूमता हूँ सो यह मेरा एक बहाना मात्र है।

दारोगाजी कुछ देर तक भूपेन्द्र के मुँह की ओर कुतूहल की दृष्टि से देखते रहे। फिर बोले—यह मैं जानता हूँ।

इस उत्तर से भूपेन्द्र कुछ विस्मित और शङ्कित हुआ। उस ने झट पूछा—क्या जानते हैं? कैसे जाना?

दारोगा ने कहा—उस दिन डाकखाने में आपके साथ बात चीत करने से मेरे मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। इसी से मैंने उसी दिन आप का विज्ञापन पत्र कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर के पास भेज दिया। कल रात में उनके पास से तार आया है कि उस ठिकाने पर कोई पबलिशिंग फर्म नहीं है और कलकत्ते के किसी छापाखाने में उस तरह की कोई पुस्तक किसी ने छपने को नहीं दी है।

भूपेन्द्र का कलेजा धड़कने लगा। किन्तु वह उस भाव को छिपा कर बोला—और क्या मालूम किया है?

दारोगाजी ने हँस कर कहा—और मालूम हुआ है कि आप मामूली आदमी नहीं हैं—बदमाशों की लिस्ट में भी आपका नाम नहीं है।

भूपेन्द्र ने सूखी ज़ुबान से कहा—और?

किन्तु असल बात तो अभी तक नहीं मालूम हुआ।"

से तार नहीं आया था। वैसा तार आने से आपको गिरफ़ार करने के लिए कहाँ ढूँढता फिरूँगा, इसी से बुला भेजा था। किताब के खरीदार आदि की बात—आपकी भाषा में ही कही थी। अर्थात् वह सब बहाना मात्र समझिए।" कह कर दारोगा जी खिलखिला कर हँसने लगे।

किन्तु भूपेन्द्र नहीं हँसा। वह नीची निगाह करके उदास मुँह चुप बैठा रहा।

दारोगाजी बीच बीच में उसके मुँह की ओर देखने लगे। आखिर वे नरम पड़ कर बोले—भूपेन्द्र बाबू! क्या आप नाराज हो गये? देखिए, हम पुलिस के आदमी हैं। सन्देह करना ही हमारा पेशा है। सरकारी काम करके मैंने सिर्फ अपना कर्तव्य पालन किया है। इससे आप दुखी क्यों हो रहे हैं?

भूपेन्द्र ने आँख उठा कर कहा—यह तो सही है।

दारोगा ने कोमल स्वर में कहा—तो आप ऐसा उदास मुँह बनाये क्यों बैठे हैं?

भूपेन्द्र ने दारोगाजी की ओर देख कर धीरे धीरे कहा—आपने मुझे चोर बदमाश जान कर सन्देह किया था, इस के लिए मैं दुखी नहीं। मैं कुछ आशा करके आपके पास आया था—उस आशा के भङ्ग होने के लक्षण देख कर ही मेरा मन व्याकुल हुआ है।

दारोगाजी ने अचम्भे के साथ कहा—मेरे पास आशा कर के आये थे? कैसी आशा?

"कुछ बातों का पता लगाने के लिए मैं इस प्रान्त में आया हूँ। उसी के ऊपर मेरी सारी जिन्दगी का सुख दुख निर्भर है। आप पुलिस के अफसर हैं—आप बात की बात में पता लगा कर वे सब खबरें मुझे दे सकते हैं।

दारोगा ने पूर्ववत् कहा—मैं तहकीक़ात करके आप को खबर दे सकता हूँ ? बात कुछ समझ में आवे तब तो। अच्छा भूपेन्द्र बाबू, यदि आपका असली नाम भूपेन्द्र बाबू ही है—यदि आप अपनी आशा के भङ्ग होने का कारण मुझसे खुलासा कह दें तो मैं कह सकता हूँ कि आपकी कोई सहायता मेरे द्वारा होगी या नहीं।

भूपेन्द्र ने कहा—जब आपके मन में अभी तक यह सन्देह है कि मैंने जो अपना नाम बताया है वह मेरा असली नाम नहीं है, तब आपसे सहायता मिलने की आशा क्या ?

नौकर चाय लाया। भूपेन्द्र प्याले में चम्मच चलाते चलाते बोला—मैं यहाँ पूर्णरूप से अपरिचित हूँ, किसे बुला कर साबित करूँ कि मेरा नाम सचमुच भूपेन्द्रनाथ त्रिपाठी है।

दारोगाजी कुछ सोच कर बोले—मुझसे यदि आपका कोई उपकार हो सके—और वह उपकार मेरी शक्ति के बाहर न हो—तो धर्म की राह पर मैं अवश्य करूँगा। आपका नाम चाहे जो हो, मैं उसके लिए न रुकूँगा।

भूपेन्द्र ने उत्साहित होकर कहा—यौर ! आप धर्म का ख्याल करके ही मेरा उपकार करें—इससे सिर्फ मेरा ही उपकार न होगा वरन् बङ्ग देश का एक पुराना आली खानदान भी आपकी कृपा के लिए चिर-ऋणी रहेगा।

दारोगाजी—पहले मामला तो मुझे समझाइए।

भूपेन्द्र ने चाय का प्याला मुँह में लगाया। तीन-चार घूँट पीकर—"मैं सभी बातें खोल कर कहता हूँ" कह कर चाय का खाली प्याला नीचे रख दिया और रूमाल से मुँह पोंछते पोंछते कहना आरम्भ किया—एक स्त्री और पुरुष दोनों किसी स्थान में पहुँच, प्रपञ्च रच कर, घोर अन्याय करना चाहते हैं।

में उनके इस अन्याय को रोकना चाहता हूँ। स्त्री कौन है, उसका पता मैं यहाँ आकर लगा चुका हूँ। किन्तु पुरुष का अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा सका।

दारोगा ने कहा—यह जालसाजी कहाँ हुई है?

भूपेन्द्र—यह अभी नहीं बताऊँगा। माफ कीजिएगा। हाँ इतना कह सकता हूँ कि यहाँ से वह स्थान बहुत दूर है। इस जिले में नहीं। इस कमिश्नरी में भी नहीं।

'स्त्री कौन है?"

"वसन्तपुर के कृष्णदास उपाध्याय की लड़की लीलावती। कैसे जाना है, यह भी सुन लीजिए।" कह कर उसने साड़ी के आँचल का कोना काट लाने, उसका चिह्न नीलाम्बर धोबी को दिखला कर पहचनवाने और उसके स्वीकार करने का वर्णन किया।

यह सुन कर दारोगा ने हँसते हँसते कहा—मालूम होता है, आपने विलायती डिटेक्टिवों की कहानियाँ खूब ध्यान से पढ़ी हैं। आप तो दूसरे शर्लाक होम्स हैं।

भूपेन्द्र—शर्लाक होम के सदृश मेरी बुद्धि होती तो क्या चिन्ता थी?

दारोगाजी ने मासिक पत्रिका के पन्ने उलटाते उलटाते पूछा—आपने जो कहा है, पुरुष का आप अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगा सके तो क्या किसी के ऊपर आपका सन्देह है?

भूपेन्द्र ने कहा—जी हाँ, जिस रात में लीलावती अपनी ससुराल मदनपुर से गायब हुई उसी रात में, आपके इस शिवगंज के पास ही वसन्तपुर गाँव की रहने वाली, शकली की माँ ने साथ जमींदार शारदाचरण बाबू के छोटे भाई नवीनचन्द्र को जाते किसी ने देखा था। नवीन भी उसी रात से गायब है।

इससे मेरा सन्देह है—शायद इसी नवीन के साथ लीलावती घर छोड कर भाग गई है और उन्हीं दोनो ने जाकर यह कपट-जाल फैलाया है।

दारोगा ने नौकर को बुला कर कहा—अरे, जा तो, मुन्शी से चार-पॉच महीने की पुरानी स्टेशन-डायरी तो ले आ।

भूपेन्द्र—आपकी स्टेशन-डायरी में क्या इस सम्बन्ध में कुछ लिखा हुआ है?

दारोगा ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर कहा—आप जिस जालसाजी को रोकना चाहते हैं—जिन जिन बातों की खोज कर रहे हैं,यह केवल धर्मार्थ, दूसरे का उपकार करने के लिए?

भूपेन्द्र—बिलकुल नहीं। इसमें मेरा घोर स्वार्थ है।

दारोगा—कैसा स्वार्थ?

तब भूपेन्द्र ने जो कल्पित उपन्यास कहना आरम्भ किया, वह सक्षेपत यह है—एक जमींदार के एक-मात्र बेटा था। वह मॉ-बाप के साथ पुरीधाम में रथयात्रा देखने जाकर खो गया। यह पचीस वर्ष की बात है। जमीदार ने स्त्री का स्वर्गवास होने पर बुढापे में दूसरा ब्याह किया। उस स्त्री के गर्भ से एक लडकी पैदा हुई। मेरे पिता उस जमींदार के दीवान थे। इस सम्बन्ध से मैं वहाँ बराबर आता जाता था। मेरे साथ उस लडकी का बचपन से ही परिचय और प्रेम है। घर पर मेम को नोकर रख कर जमींदार अपनी लडकी को अँगरेजी पढवाते थे और मैं उसे हिन्दी की शिक्षा देता था।

दो वर्ष हुए कि जमींदार का देहान्त हो गया। वे वसीयत कर गये हैं कि कन्या जब सोलह वर्ष की होगी तब मुझसे उसका ब्याह होगा और हम दोनों सम्पत्ति के बराबर अंश के हिस्सेदार होंगे। तब तक दीवान जी बालिका के अभिभावक होकर सम्पत्ति

की रक्षा करेंगे। कन्या की उम्र इस समय पन्द्रह वर्ष की है—एक ही वर्ष के बाद हम दोनों की चिरसञ्चित मिलन-लालसा पूरी होती। किन्तु दो महीने हुए, एक व्यक्ति आकर कहता है कि पुरी में खोया हुआ ज़मींदार का लड़का मैं ही हूँ। गाँव के दो चार प्रधान लोगों को और कई एक विरुद्ध कर्मचारियों को वश में करके धन-सम्पत्ति का आधिपत्य प्राप्त करने के लिए वह मुक़दमा दायर करना चाहता है। उसके आने के कुछ दिन पूर्व जनाने में आकर एक अपरिचित स्त्री ने अपने को अनाथ बताया, वहाँ उसे आश्रय भी मिल गया। अब यह बात प्रकट हो गई है कि वह स्त्री उस पुरुष को छिप छिप कर पत्र द्वारा ख़बरें दिया करती थी। नीलाम्बर खोजी के द्वारा प्रमाणित हो गया कि यह स्त्री लीलावती है। किन्तु वह पुरुष कौन है? यह जानने ही से कार्य सिद्ध हो जायगा।

नये दारोगा साहब बड़े ध्यान से आँखें फाड़ कर इस कहानी को सुन रहे थे। कथा समाप्त होने पर बोले—महाशय, यह तो छोटा सा रोचक उपन्यास ही है। सुन कर आश्चर्य होता है।

भूपेन्द्र ने देखा, दवा ने कुछ असर किया है।

इसी समय एक कान्सटेबल ने कई स्टेशन-डायरियाँ लाकर दारोगाजी के सामने रख दीं। दारोगा कुछ देर तक उन किताबों के पन्ने उलटा कर एक जगह पढ़ने लगे।

किताब की ओर से नज़र हटाये बिना ही पूछा—उस स्त्री का नाम क्या बतलाया? किसकी माँ?

भूपेन्द्र ने कहा—शकरी की माँ।

दारोगा ने मुस्कुरा कर कहा—यह देखिए।

भूपेन्द्र ने देखा, मदनपुर गाँव के चौकीदार कमरुद्दीन ने लिखाया है—इस रात में गश्त लगाते समय उसने मदनपुर

और शिवगंज की सरहद के समीप दो स्त्रियों को सन्देहजनक अवस्था में जाते देखा। चौकीदार के पूछने पर सन्दिग्ध व्यक्ति ने जो जो कहा वह भी डायरी में लिखा हुआ है।

भूपेन्द्र ने कुल बयान पढ़ कर कहा—तब तो मैंने ठीक ही शक किया था। नवीन के साथ ही लीलावती भागी है।

दारोगा—यही मालूम होता है।

थोड़ी देर तक इस प्रसङ्ग में खूब घुल घुल कर बातें हुईं। "यदि क्षमा करें तो कुछ पूछूँ"—इस तरह सकोच-सहित भूमिका बाँध कर बीच बीच में दारोगाजी उस काल्पनिक जमींदार की अविवाहित लड़की की बात भूपेन्द्र से पूछने लगे। लज्जा से मुँह को आरक्त और कण्ठ-स्वर को यथासाध्य कँपा कर भूपेन्द्र जो उत्तर देने लगा, उससे दारोगा को स्पष्ट ही प्रतीत हुआ कि वह लड़की रूप में लक्ष्मी और गुण में सरस्वती हैं। इन दोनों का प्रेम स्वर्गीय है—मर्त्यलोक में उसकी तुलना नहीं हो सकती।

अन्त में दारोगाजी ने उसे आश्वासन देकर कहा—कानून के भीतर रह कर अपने इलाके में भूपेन्द्र को जहाँ तक वे साहाय्य दे सकेंगे, देंगे।

---

[१०]

पहला पत्र

वसन्तपुर,
जेठ सुदी १०

प्रिय बहन कनकलता,

तुम को आखिरी चिट्ठी लिखने के बाद मुझे कितनी ही नई बातों का पता लगा है। यहाँ के दारोगा मेरे बड़े प्रिय मित्र हैं। उनकी सहायता से शकली की माँ से जिरह करके बहुत बातें निकाली गई हैं। वह क्या सहज ही कहने वाली थी। सिपाही जब उसके हाथ में हथकड़ी भरने को उद्यत हुआ तब उसने सारी बातें सच सच कह डालीं। नवीनचन्द्र ने उसे रुपये का लालच देकर मदनपुर भेजा था। वहाँ साँझ होने के बाद पहुँच, पोखर के सूने घाट पर, लीलावती को अकेली पाकर उसने कहा—'तुम्हारी माँ बहुत बीमार है। ये लोग तुम्हारी विदा नहीं करेंगे, यह सोच कर उसने चुपचाप पालकी भेज दी है। सोलह कहार पालकी लिये गाँव के बाहर तुम्हारे इन्तज़ार में बैठे हैं। दस बजे रात को मैं खिड़की के पास खड़ी रहूँगी, तुम बाहर निकल आना। माँ से भेंट करा कर मैं तुमको फिर रातों रात यहाँ लौटा लाऊँगी।' मूर्ख स्त्री इस बात पर विश्वास करके शकली की माँ के साथ चल खड़ी हुई। गाँव से कुछ दूर पर, बड़ के पेड़ की छाया में, नवीन छिपा बैठा था। वह लीलावती को पकड़, मुँह में कपड़े ठूँस, बैलगाड़ी पर चढ़ा उठा ले चला। शकली की माँ ने उस पहलवान का नाम बिलटू ग्वाला बताया

तब दारोगा ने विलट्र को बुला कर पूछा। वह भी शम्भी की माँ के कथन को—अर्थात मुँह में कपड़ा ठूँसना और जबरदस्ती गाड़ी में बिठा कर ले भागना आदि—ठीक बताता है। उससे इतनी बात और मालूम हुई कि नयनपुर के निकट एक बाग में ये लोग जाकर गाड़ी से उतरे थे। मैं कल दारोगा के साथ नयनपुर जाऊँगा। वहाँ जो सुनूँगा, वह पीछे लिखूँगा।

तुम्हारा भाई,
भूपेन्द्र।

दूसरा पत्र

बसन्तपुर।

कल्याणमयी कनक !

मैंने परसों तुमको एक चिट्ठी लिखी है, मिली होगी। दारोगाजी मुझको साथ नहीं ले गये। वे अकेले ही नयनपुर के बाग में तहकीकात करने गये थे। वहाँ से लौट कर आज उन्होंने कहा कि लीलावती करीब एक महीने तक उस बाग के मकान में कैद थी। नवीन बीच बीच में आकर उसे देख जाता और बहुत कुछ खुशामद करता था, किन्तु लीला किसी तरह उसके भुलावे में नहीं आई। वह बराबर रोया करती और नवीन को देखते ही कहती थी—अगर मेरे पास आओगे तो मैं छत से कूद कर जान दे दूँगी। एक महीने के बाद नवीन लीलावती को रात में उसी तरह बाँध कर कालना के समीप कल्याणी नदी के किनारे ले गया और उसे नाव पर चढ़ा किधर ले भागा इसका अभी तक पता नहीं।

दारोगाजी की सहायता न मिलने से मैं यह कुछ भी न जान सकता। सौभाग्य से कालना थाने का इन्सपेक्टर हमारे इन दारोगा का मित्र है। ये मुझे चिट्ठी देकर वहाँ भेज रहे हैं।

ालना जाकर उसकी सहायता से अगर मैं उन मल्लाहों का
ता लगा सका तो मालूम हो जायगा कि वहाँ से वे दोनों कहाँ
ये और क्या किया।

अभी जहाँ तक पता लगा है उससे जाहिर होता है कि
शिकला उर्फ लीलावती क्रमश नवीन के पंजे से निकल भागी,
कर इस नकली भवेन्द्र से मिल, प्रपञ्च रच कर वहाँ पहुँची
। इस दरमियान में यदि तुम्हें कोई विशेष संवाद मिला हो
ो कालना पुलिस इन्सपेक्टर के पते पर पत्र लिखना।

तुम्हारा,
भूपेन्द्र।

तीसरा पत्र

वासुदेवपुर।

णामपूर्वक निवेदन।

आपके आशीर्वाद से इस अभागिनी का कुशल है। कहिए,
ीक हुआ न? अब आप यह नहीं कह सकेंगे कि मैं आपके
ति उचित श्रद्धा भक्ति दिखाने में त्रुटि करती हूँ।

आपके दो पत्र मिले। इधर मुझे एक खबर और मिली है।
ो भवेन्द्र बाबू बन कर आये हैं वे शायद पहले तिनतारिया
ठ के महन्त थे। भवेन्द्र बाबू एक दिन दीवानजी से बातचीत
र रहे थे। मैंने आड़ में खड़े होकर उक्त बात सुन ली थी।
िन्तु यह तिनतारिया कहाँ है, यह उन्होंने जाहिर नहीं किया।
हाँ सब प्रकार मङ्गल है। भवेन्द्र जो हों—असली हों या
कली—वे बहूजी के साथ सच्चे प्रेम में उलझ गये हैं। बीच
ं बहूजी को ज्वर हो आया था। एक दिन उनकी अवस्था कुछ
ङ्काजनक हो गई। उस दिन वे, बहूजी के सिर्हाने के पास
रसी पर बैठे थे। मैंने अचानक भीतर जाकर देखा, उनकी

आँखों से आँसू टपक रहे थे। यदि कोई किसी को सच्चे हृदय से प्यार करता है तो यह देख कर मेरा जी बहुत खुश होता है। अपना कुशल-समाचार लिखिएगा। इति।

आपकी छोटी बहन,
कनकलता।

चौथा पत्र

कालना,
आषाढ़ बदी ६

चिरञ्जीविनी कनक,

आज कई दिन हुए, तुम्हारा पत्र मिला था। तुमने लिखा है कि नकली भरेन्द्र पहले तिनतारिया मठ में रहता था। यह स्थान कहाँ है, मैं नहीं जानता। वहाँ कोई डाक-घर भी नहीं है। होता तो पोस्टल-गाइड से पता लग जाता। जो हो, उसका यथा सम्भव शीघ्र ही पता लगाना होगा।

यहाँ आकर इन्सपेक्टर साहब की सहायता से माँझियों को पूछ कर जो पता लगाया है उससे यह गुप्त विषय और भी गम्भीरतर हो गया है। मिट्ठू माँझी की बात से जाहिर हुआ है कि एक बाबू, एक बीमार स्त्री को लेकर, उसकी डोंगी पर सवार हुआ था। स्त्री बाबू से बहुत नाराज थी। वह हमेशा रोती-खीझती रहती थी। किसी दिन कुछ खाती थी, किसी दिन कुछ भी नहीं। बाबू को अपने पास न आने देती थी, उनको देखते ही चिल्ला उठती थी। एक दिन तीसरे पहर के समय नाव में हल्ला उठा, 'छुरी लाओ, छुरी लाओ'। स्त्री ने आत्म हत्या करने के लिए गले में रस्सी कस ली थी। यह देख कर बाबू ने शोर-गुल किया। तब सभी दौड़ कर गये और रस्सी काट कर उसे सूखी जमीन पर उतार लाये। वह बेहोश हो गई थी। बड़ी देर

तक सेवा शुश्रूषा होने पर सन्ध्या के अनन्तर उसे होश हुआ। नाव में स्त्री अकेली सोती थी। उस दिन भी वह अकेली थी। बाबू छपरी के बाहर सोते थे। सवेरे उठ कर देखा तो डोंगी में उस स्त्री का पता नहीं। एक मल्लाह कहता है—'दीवानगंज या ऐसे ही किसी स्थान के समीप रात के तीसरे पहर को धम से कुछ गिरने का शब्द सुना था, किन्तु यह सोच कर कि सोस उछला होगा, उसने उस ओर खयाल नहीं किया। इसलिए अनुमान होता है कि भागने या आत्मघात करने की इच्छा से लीलावती ही रात में नाव से पानी में कूद पड़ी थी और बहते बहते वासुदेवपुर के जनाने घाट पर जा लगी थी। मिट्ठू माँझी कहता है, उस दिन होली का त्योहार था। पत्राङ्क में देखा, उस दिन फागुन सुदी १४ थी। शशिकला किस दिन घाट पर पाई गई थी, इसका पता लगा कर मुझे लिखो। उससे मालूम हो जायगा कि माँझियों के द्वारा वर्णित वह स्त्री और बाबू, शशिकला और नवीन था या नहीं।

तुम्हारा,
भूपेन्द्र।

पाँचवाँ पत्र

वासुदेवपुर,
आषाढ़ बदी १०

प्रिय भूपेन्द्र भैया!

पत्र मिला। झटपट दो सतरें लिखे देती हूँ। होलिकोत्सव के दूसरे दिन सवेरे ही शशिकला घाट पर पाई गई थी।

आपकी,
कनक।

छठा पत्र

कलकत्ता,
आषाढ सुदी ५

कनकलता !

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत हताश होना पडा। स्पष्ट है कि शशिकला इस नक़ली भवेन्द्र के साथ सलाह करके वहाँ नहीं गई। उसके सम्बन्ध में जहाँ तक जो कुछ अनुसन्धान किया, सभी व्यर्थ हुआ। नक़ली भवेन्द्र कौन है, इसका कुछ भी निश्चय नहीं हुआ।

यहाँ लौट कर मैं नवीनचन्द्र की खोज में गया था। उसके घर पर जाकर सुना—आज कई दिन हुए, घोडा गाडी के उलट जाने से उसे सख़्त चोट लगी है। कई दिनों से वह मेडिकल कालेज के अस्पताल में पडा था। मैं वहीं उससे भेंट करने गया। कल उसकी मृत्यु हो गई। मरने के पहले वह एक वकील को बुला कर अस्पताल में ही एक विल कर गया है। उसमें लिखा है, उसने लीलावती के ऊपर अत्याचार करने की चेष्टा की थी, उसी पाप से उसकी अपमृत्यु हुई है। और भी लिखा है, वह बहुत कुछ बुरी चेष्टा करके भी लीलावती का सतीत्व नष्ट नहीं कर सका। यह ईश्वर की कृपा थी। वह बेलाग बच गई। धर्म-रक्षा के ही लिए वह चुपचाप पानी में कूद पडी थी। अपने प्राणों का उसने तनिक भी मोह नहीं किया। पिशाचरूपी मुझ नवीन के भय से ही उसने ऐसा किया। इसलिए उसने अपने प्राप्य धन का आधा अंश—अपने पाप का प्रायश्चित्त स्वरूप—लीलावती को दिया है। और आधा अपने भतीजों को बराबर बराबर अंश में बॉट दिया है। मैं भी उस विल का गवाह हूँ।

मैं कल सबेरे काशी जाऊँगा। वहाँ अनेक साधु-सन्यासी

रहते है। मैं वहाँ रह कर पता लगाऊँगा कि तिनतारिया मठ कहाँ है। वहाँ जाने से शायद नक़ली भवेन्द्र का पता लग जाय।

तुम्हारा वही,
भूपेन्द्र

सातवाँ पत्र

कलकत्ता,
सावन १५

कनक !

इतने दिन बाद मेरा परिश्रम सफल हुआ। काशी से पता लगा कर मैं तिनतारिया मठ को गया था। वहाँ जाने पर ज्ञात हुआ कि उस मठ का भूतपूर्व महन्त वासुदेवपुर-निवासी भवेन्द्र ही था। थोड़े दिन के बाद लौट आने की व्यवस्था करके वह गत फागुन में बङ्गाल को गया था। एक महीने से अधिक समय होने पर भी कोई ख़बर न पाकर उसके चेले उसकी खोज करने कलकत्ते गये। पुलिस-आफिस और रेलवे कार्यालयों में खोज करते करते उन्हें पता लगा है कि सुन्दरपुर स्टेशन में एक सन्यासी की लाश ट्रेन से उतारी गई थी। उस सन्यासी की गठरी और बक्स रेलवे के सदर आफिस में रक्खा था। उस सामान को देख कर चेलों ने पहचान लिया। वह उसी महन्त का था।

इस सम्बन्ध में और भी विशेष अनुसन्धान करने के लिए मैं सुन्दरपुर गया था। वहाँ सन्यासी की लाश उतारी जाने की पक्की ख़बर मिली। और भी पता चला—जिस समय यह लाश उतारी गई थी, उस रात में मदनपुर का गोपालचन्द्र चौबे, लीलावती का पति, स्टेशन पर नाइट-ड्यूटी में था। सन्यासी

की लाश और उसके साथ की सब वस्तुएँ सारी रात उसी के जिम्मे रही। थोड़े दिनों के बाद नौकरी से बरतरफ हो गोपाल काशी को चला गया।

सुन्दरपुर से मैं सीधा मदनपुर गया। वहाँ गोपाल का एक भाई है। उसे अब तक गोपाल का कुछ पता नहीं। वह जीता है या मर गया, यह भी उसे मालूम नहीं।

इसलिए अब दिन के प्रकाश की भाँति स्पष्ट ही आँखों के सामने झलक रहा है कि यह गोपाल ही मृत सन्यासी के कागज-पत्र से उसके नाम-धाम और अन्यान्य विषयों से परिचित हो भवेन्द्र बन कर वासुदेवपुर गया है। उस दिन साँझ को गङ्गा घाट से लौटते समय बाग में नकली भवेन्द्र को देख कर शशिकला एकाएक क्यों चौंक उठी थी, यह भी अब बखूबी समझ में आ गया।

अभी और भी कुछ तथ्य सग्रह करना है। उसे पूरा करके मैं वासुदेवपुर आकर कार्य-क्षेत्र में पैर रक्खूँगा।

तुम्हारा
नगेन्द्र।

पाँचवाँ भाग

[१]

सावन का महीना है। दोपहरी ढल गई है। आकाश मण्डल बादलों से घिरा हुआ है। आज एक सप्ताह से लगातार पानी बरस रहा है। दीवानजी एक ऊनी कमीज पहिने कुरसी पर बैठे दफ़्तर का काम कर रहे हैं और बीच बीच में खो खों कर खाँसते भी हैं। अब भी टप् टप् कर बूँदें पड़ रही हैं। एक बहुत जरूरी खबर आई है—इसलिए मिलने को उन्होंने बाबू के पास अन्दर इत्तिला भेजी थी। बाबू ने कहला भेजा है—"अभी आता हूँ।" एक घण्टा हो गया, पर अब तक बाबू ने दर्शन नहीं दिये।

एक दासी दफ्तर की अँगनाई से होकर जा रही थी। दीवान जी ने उसे बुलवा भेजा। उसके आने पर पूछा—बाबू कहाँ हैं?

"अन्दर।"

"क्या करते हैं?"

"बहूजी के पास बैठे हैं।"

"बहूजी की तबीयत इस समय कैसी है?"

"अच्छी है।"

"अच्छा, जा।" दासी चली गई।

धीरे धीरे अँधेरा फैलता जाता है। चश्मे की सहायता से भी दीवानजी को अब कागज के अक्षर स्पष्ट दिखाई नहीं देते। क़लम उठा कर वे मन ही मन बाबू की बात सोचने लगे। बुदबुदा कर बोले—"देखता हूँ, वह धीरे धीरे स्त्रैण

होता जाता है—धन-सम्पत्ति की रक्षा कैसे कर सकेगा? बिना देख-भाल किये सब नष्ट हो जायगा। सुनता हूँ, दोनों आठो पहर कबूतर की जोड़ी की भाँति एक साथ रहते हैं। ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं करते, मेरा सिर करते हैं। स्त्री को छूने की मनाही है—किन्तु यह संसर्ग तो स्पर्श का बाबा है। इसकी अपेक्षा तो स्पर्श करना कहीं अच्छा था। स्त्री ही अब जप-तप, स्त्री ही अब छोकरे की आराध्य देवी हो गई है।

आकाश में बार बार मेघ की गड़गड़ाहट होने लगी। चारों ओर घोर अन्धकार छा गया। बीच बीच में बिजली चमक कर अन्धकार को दूर कर देती थी। जंगल में झींगुरों ने अपनी रागिनी अलापना शुरू कर दिया। युवक की इस दाम्पत्य लीला की बात सोचते सोचते दीवानजी को अपनी युवावस्था का भी स्मरण हो आया। बाबू की बात छोड़ कर तब वे अपने जीवन के मीठे मीठे पुरातन खण्डों की समीक्षा मन ही मन करने लगे। कुछ देर तक अपनी बीती जवानी की बात सोच उन्होंने लम्बी साँस ले नौकर को पुकार कर कहा—अन्दर जाकर बाबू को ख़बर दो कि दीवानजी आप के इन्तजार में बैठे हैं।

"बहुत अच्छा"—कह कर नौकर भीतर चला गया। तुरन्त वापिस आकर उसने कहा—ख़बर दे दी, बाबू आते ही हैं।

दीवानजी ने और कुछ देर तक बाबू के आने की राह देखी, तथापि उनके दर्शन नहीं हुए। दीवानजी के सामने बत्ती जल रही थी। घड़ी की ओर देखा साढ़े छ का समय हो गया था। सायं-सन्ध्या करने का समय बीतते देख दीवानजी उठे। एक नौकर से कहा—तुम यहाँ बैठे रहो। अगर बाबू आवें तो उनसे कहना, मैं सन्ध्या करके आठ बजे रात को फिर आऊँगा।

यथा-समय लौट कर दीवानजी ने सुना कि बाबू अभी तक नहीं आये हैं। एक बार सोचा, याद कराने के लिए फिर किसी आदमी को उनके पास भेजें। फिर सोचा, आठ तो बज ही गये हैं, नौ बजे बाबू बैठक में सोने को आवेंगे, उसी समय भेंट हो जायगी। इसलिए वे धैर्य धारण कर बैठ रहे।

श्याम बाबू के बर्ताव से दीवानजी आज मन ही मन खूब बिगड़े हैं। सोच रहे हैं—मेरी साठ वर्ष की उम्र हुई, मेरी जिन्दगी का अब क्या ठिकाना! अभी से सब देख सुन न लेगा तो ज़मींदारी की रक्षा कैसे कर सकेगा? मेरे परोक्ष में दूसरा दीवान तो नियुक्त होगा—किन्तु वह क्या मेरी भाँति जी लगाकर मालिक का काम करेगा या धन सम्पत्ति की रक्षा करेगा? मालिक की ऐसी लापरवाही देख कर वह तो दोनों हाथों से लूटेगा।

बाबू के मन को ज़मींदारी सम्बन्धी काम की ओर आकृष्ट करने के लिए किस उपाय से काम लिया जाय, यही दीवानजी मन ही मन सोचने लगे। पानी में उतरे बिना लोग तैरना नहीं सीखते, अतएव उन्होंने स्थिर किया कि कुछ दिनों के लिए किसी बहाने यहाँ से खिसक जाना चाहिए। ज़मींदारी का सारा बोझ सिर के ऊपर पड़ेगा तब अवश्य ही बाबू को चेत होगा।

रात के नौ बजे लालटेन हाथ में लिये हुए नौकर के पीछे पीछे गोपाल सिर पर छतरी लगाये बाहर आया। तब फिर कुछ कुछ पानी बरस रहा था। बैठक के बरामदे में बेञ्च के ऊपर दीवानजी बैठे थे—बाबू को आते देख वे उठ खड़े हुए।

गोपाल ने कहा—आप अभी तक यहीं हैं? घर नहीं गये?

क्रोध और उदासीनता के भाव को यथासाध्य दबा कर

दीवानजी कोमल स्वर में बोले—नहीं बाबू, एक जरूरी काम था, उसी से—

गोपाल—ओहो, आपने आज साँझ को मुझे एक बार बुला भेजा था।

"जी हाँ, पहले एक बार चार बजे बुला भेजा था—आपने कहला भेजा, 'शीघ्र आता हूँ।' साढ़े पाँच बजे तक आप की राह देख आप को फिर याद दिलाने के लिए आदमी भेजा था।"

गोपाल—ठीक है। बड़ी भूल हुई। मैं उस बात को एकदम भूल ही गया था। क्षमा कीजिएगा। आपको मैंने बहुत कष्ट दिया।

दीवानजी का मन इस बार सचमुच मुलायम हुआ। बोले—नहीं बाबू, कष्ट काहे का।

गोपाल—यह सावन महीने की भयङ्कर रात, चारों ओर घोर अन्धकार छाया है। पानी बरस रहा है। इतनी रात को कीचड़-पानी में आप घर कैसे जायँगे। सन्ध्या होने के पहले क्यों नहीं चले गये? ऐसा क्या जरूरी काम था?

"काम बहुत जरूरी है।"

"अच्छा तो ऊपर ही चलिए। वहीं सुनूँगा।" कह कर गोपाल सीढ़ी पर पैर रख ऊपर जाने लगा। दीवानजी ने पीछे पीछे जाते हुए पूछा—बहूजी की तबीअत अब कैसी है?

यह प्रश्न सुन कर गोपाल कुछ लज्जित हुआ। उसने समझा, मैं जो बहूजी के लिए पागल हो रहा हूँ, कर्तव्य की अवहेला का कारण जो बहूजी ही है, इस नुक्ते को बूढ़े ने पकड़ लिया है। उसने जवाब दिया—दिन भर तो अच्छी रही। साँझ को देह कुछ गरम हो गई है। अभी ताप-क्रम देख कर आया हूँ। १०१ डिगरी बुखार है।

दीवानजी ने कहा—यह तो कुछ अधिक नहीं है। बरसात का मौसम है। हवा बिगड़ने से इस समय जूड़ी बुखार होता ही है। इसके लिए कुछ चिन्ता नहीं।

गोपाल चुपचाप ऊपर अपने सोने के कमरे में पहुँच गया। फिर एक कुरसी पर बैठ कर नौकर से कहा—"सूखे अँगोछे से मेरे पैर पोंछ दे।" दीवानजी से कहा—बैठिए, कहिए क्या काम है।

दीवानजी बैठ कर बोले—आज जिले से मोती बाबू पेशकार ने चिट्ठी लिखी है कि परसों कलक्टर साहब मधुपुर हाट के डाक-बँगले में पहुँचेंगे, वहाँ तीन दिन ठहरेंगे।

गोपाल—इस घोर वर्षा में साहब दौरा करने निकलेंगे?

"मधुपुर हाट के पास एक बहुत बड़ी झील है। साहब वहीं चिड़ियों का शिकार करेंगे। पारसाल भी आये थे। वे हमारे इलाके में आते हैं। अच्छी तरह उनका आदर-सत्कार करना होगा। जिले के हाकिम हैं—ऐसे वैसे अफसर तो हैं नहीं।"

गोपाल ने पूछा—डाली भी देनी होगी?

"डाली तो देनी ही होगी। उसका बन्दोबस्त कर चुका हूँ। आपसे बिना पूछे ही हरिशरण को आज दोपहर को कलकत्ते रवाना कर दिया है। इन कामों में वह होशियार है। विलसन के होटल से खाने की चीजें, दो बोतल शेम्पेन, आधा दर्जन ह्विस्की और बहुतेरी चीजों की मैंने फिहरिस्त बना दी है। उस फिहरिस्त के बमूजिब सब चीजें खरीद कर कल साँझ की गाड़ी से हरिशरण सीधा मधुपुर हाट को रवाना होगा।"

गोपाल ने पूछा—मधुपुर हाट में हमारा दफ्तर है न?

दीवानजी ने मन में कहा—इन्हें आये लगभग तीन महीने हो गये, लेकिन यह भी खबर नहीं कि कौन दफ्तर कहाँ है? क्या

इसी तरह जमींदारी का काम चलेगा? प्रकाश्य में कहा—जी नहीं, मधुपुर में हमारा दफ्तर नहीं है। वहाँ से डेढ़ कोस के फासले पर कालिकापुर एक गाँव है, वहाँ अपना बहुत अच्छा मकान और दफ्तर है। बचपन में आप मालिक के साथ दो-एक बार वहाँ गये थे। शायद आपको याद नहीं है।

गोपाल ने मन में हँस कर कहा—याद कैसे हो?

दीवानजी ने कहा—वहाँ के जिलेदार के नाम एक परवाना भेज दिया है कि साहब के लिए मुर्गी, अण्डे, मक्खन, दूध मछली और तरकारी आदि का बन्दोबस्त कर रक्खे।

गोपाल—तब तो सब बन्दोबस्त हो गया है।

दीवानजी—जी हाँ, किन्तु एक बात सोचता हूँ। जिलेदार को भार देकर निश्चिन्त रहना ठीक नहीं।

गोपाल ने पूछा—क्या आप स्वयं जायँगे? तब तो अच्छा ही होगा।

दीवानजी ने धीरे धीरे कहा—मैं—स्वयं—हाँ, जा सकता हूँ। किन्तु वास्तव में आप का जाना ही ठीक होगा।

गोपाल—मैं? मैं अभी कैसे?

दीवानजी—बहूजी तो अब क्रमशः अच्छी होती जा रही हैं। इस साधारण ज्वर को तो वैद्यराज दो ही दिन में अच्छा कर देंगे। मैं यहीं रहूँगा और बराबर उनकी खबर लेता रहूँगा। आपका जाना मेरी समझ में ठीक होगा।

गोपाल चुप हो रहा। इतने में नौकर ने पैर पोंछ कर खड़ाऊँ पहना दी।

दीवानजी ने बाबू के मन का भाव समझ कर कहा—मैं ।५ से जाने के लिए न कहता। किन्तु एक तो आपने आज से मुलाकात नहीं की है, दूसरे आपके इलाके में

आ रहे हैं—आप स्वयं जाकर उनका स्वागत न करेंगे तो शायद साहब मन ही मन नाराज हो जायँ। हाकिम के मिजाज़ का ठिकाना क्या। कौन जाने कब क्या कर बैठें।

गोपाल ने कुछ सोच विचार कर पूछा—मुझे क्या करना होगा?

दीवानजी ने कहा—ज्यादा कुछ नहीं। आप कल भोजन के अनन्तर पालकी पर सवार हो कालिकापुर के दफ्तर जाइए। साँझ तक आप मजे में पहुँच जायँगे। हरिशरण भी डाली लेकर आधी रात तक वहाँ पहुँच जायगा। मुर्गी, अण्डे, दूध, और तरकारी आदि परसों सवेरे ही जिलेदार के मारफत भेजवा दीजिएगा। सब चीजें डाक-बँगले पर पहले ही से मौजूद रहेंगी। आठ-नौ बजे से पहले तो साहब पहुँचेंगे ही नहीं। जब साहब की सवारी पहुँचे तब ज़िलेदार जाकर खाने का कुल सामान साहब के खानसामा के ज़िम्मे कर देगा, और जिस चीज की जरूरत होगी उससे पूछ लेगा। कलकत्ते की डाली ज़िलेदार के पास रक्खी रहेगी। एक घुड़ सवार वहाँ हाजिर रहेगा। वहाँ डेरे पर आपके पालकी कहार तैयार रहेंगे। साहब की सवारी डाक-बँगले पर पहुँचते ही घुड़-सवार झट आकर आपको खबर देगा। तब आप पालकी में बैठ वहाँ पहुँच कर साहब के पास कार्ड भेज दीजिएगा। साहब आपको बुला भेजेंगे, शेक-हैन्ड करके कुरसी पर बिठावेंगे। जब वे कुरसी पर बैठें तब आप भी बैठ कर उनका कुशल पूछिएगा। "हुजूर की तबीअत कैसी है, मेम साहबा कैसे हैं, वह [illegible]जी नहीं आई? रास्ते में हुजूर को कोई तकलीफ तो नहीं [illegible]"—यही सब उनसे पूछना होगा।

गोपाल ने कहा—हिन्दी में?

[illegible]नजी—नहीं नहीं, अँगरेजी में कहिएगा। यह कहना [illegible] ही गया था। स्वर्गीय बाबू साहब हिन्दी में ही सब बातें

करते थे न। इसी से इस ओर मेरा खयाल न था। आप अँगरेजी में ही बातचीत कीजिएगा। अँगरेज़ी में हुजूर नहीं कहना होगा। दो चार बार 'योर ऑनर' कह कर दो एक बार 'सर' कहना किन्तु 'योर ऑनर' ही अधिक कहना। यह सब हो जाने पर कहिएगा कि "हुजूर की खिदमत के लिए कुछ मुर्गी, अण्डे और तरकारी वगैरह पहले ही भेज दी थी—नोकरों ने वे चीज़ें खानसामा के ज़िम्मे कर दी हैं। हुजूर के लिए एक और मामूली डाली ले आया हूँ। हुजर इसे क़बूल कर लें तो मेहरबानी होगी।" हरिशरण को इशारा कीजिएगा। वह साहब के सामने डाली ला कर रख देगा।

गोपाल ने कहा—अरे दादा! इतना तूल करना होगा?

दीवानजी ने मुस्कुरा कर कहा—यह मैं समझता हूँ, पर किया क्या जाय? हाकिम ही ठहरे कलिकाल के देवता। उनको विधिवत् पूजा न करने से क्या कुशल है?

गोपाल ने कुछ सोचकर कहा—इसके बाद,—पूजा करके मैं यहाँ लौट आऊँगा न?

दीवानजी—नहीं, यह ठीक नहीं जान पडता। तीन दिन साहब वहाँ रहेंगे। नित्य सबेरे एक बार जाकर उनसे भेंट कीजिएगा।

"रोज रोज मुलाकात करके उनसे क्या कहूँगा?"

"कहिएगा, हुजूर को कुछ तकलीफ तो नहीं होती? किसी तरह की असुविधा हो तो मैं उसका इन्तजाम करूँ। ऐसी ही दो-चार शिष्टाचार की बातें करके चले आइएगा। एक खशामद करना ठहरा और क्या।"

गोपाल जाने को राजी होकर

यदि आप बहुत जरूरी समझते हैं तो जाऊँगा। इन्तजाम कर दीजिए।

रात बहुत जा चुकी थी। दो-चार बातें और करने के बाद दीवानजी चले गये।

गोपाल पलँग पर लेट कर मन ही मन सोचने लगा—ढाई महीना आये हो गया, एक दिन भी हम दोनों में जुदाई नहीं हुई। उसको देखे बिना ये तीन दिन कैसे कटेंगे।

रत्नकला के ज्वर से विवर्ण हुए मुख का स्मरण करके उस गोपाल को भावी विरह की यन्त्रणा और भी अधिक बढ़ गई। वह अस्पष्ट स्वर में बोला—यदि एक मोटरकार रहती तो यह कष्ट न भोगना पड़ता। रोज सवेरे उठ कर सन से निकल जाता और दोपहर तक मजे में वहाँ से घर लौट आता। ये तीन दिन वह अच्छी रहे तभी कुशल है।

---

[२]

आज सवेरे उठ कर गोपाल ने अन्दर से ख़बर मँगाई तो मालूम हुआ कि बहूजी कुछ अच्छी हैं।

स्नान आदि करके गोपाल आठ बजे अन्दर गया। बहूजी के कमरे के दरवाज़े के पास जाकर देखा, दो स्त्रियाँ उसकी शय्या के बगल में बैठी हैं। गोपाल को देखते ही वे दोनों हट गईं।

गोपाल ने भीतर जाकर देखा, रत्नकला तीन तकियों को एक के ऊपर एक रक्खे उसी के सहारे बैठी है। गोपाल को देख कर उसने ज़रा घूँघट काढ़ लिया।

सिरहाने की ओर कुरसी पर बैठ कर गोपाल ने पूछा—कहो, अब कैसी हो?

रत्नकला ने खिन्न स्वर में कहा—अच्छी हूँ।

"बदन तो गरम नहीं है?"

अपने सूखे होंठों को ज़रा टेढ़ा करके रत्नकला ने कहा—मैं क्या जानूँ? मेरा बदन जाने।

गोपाल उसके मन का भाव समझ गया। उसने जो रत्नकला को छुआ नहीं, उसके माथे पर या हाथ पर हाथ रख कर ताप क्रम की जाँच किये बिना ही मौखिक प्रश्न किया—इसी से रत्नकला का यह ग्लानि-पूर्ण उत्तर है।

गोपाल ने विषाद भरे नेत्रों से रत्नकला के मुँह की ओर देख कर तुरन्त नीची निगाह करके ठण्डी साँस ली। कहा—प्यारी रत्न, तुम तो जानती ही हो।

"मैं क्या जानती हूँ?"

"मेरे दुर्भाग्य की बात।" गोपाल का कण्ठस्वर रुँधा हुआ सा था।

रत्नकला ने एक लम्बी साँस ली। इसके बाद बनावटी प्रसन्नता का भाव दिखा कर मुस्कुराती हुई बोली—नहीं नहीं, आप खेद न करें। मैंने यह बात तो दिल्लगी में कही थी। दुर्भाग्य काहे का? आप जो व्रत धारण किये हुए हैं, उसका पालन करना ही ठीक है। उसका पालन करने की शक्ति भी आप में है। यह दुर्भाग्य कैसा? मेरा शरीर अब अच्छा है। ज्वर नहीं है।

औषध पथ्य आदि की व्यवस्था और वैद्य को बुला कर इलाज कराने की बात होने के बाद रत्नकला ने कहा—आप अब क्यों उदास मुँह किये हुए हैं? मैंने जो यह बात कही उसी से?

गोपाल—नहीं।

"तो आप क्या सोच रहे हैं?"

गोपाल ने कहा—देखो, तुमने जो आज यह बात कही है इसी से कुछ मेरा मन दुखी नहीं हुआ। अब मुझसे सहा नहीं जाता। असह्य हो गया। इस व्रत के फेर में पड़ कर मेरे प्राण होठों आ गये हैं। जब तक तुम्हारा शरीर अच्छा था तब तक तुम को न छू सकने के कारण मुझे कष्ट होता था, परन्तु उस कष्ट को मैं सह लेता था। किन्तु जब से तुम बीमार हुई हो,—अब तक तुम तीन बार बीमार हो चुकी हो,—तब से तुम्हारी बीमारी के साथ साथ मेरी सहन करने की शक्ति भी घटती जाती है। बुखार की हालत में शिर की पीड़ा से जब तुम छटपटाती हो तब मैं तुम्हारे मस्तक पर हाथ नहीं फेर सकता। तुम्हारा हाथ पकड़ कर मैं तुम को बिठा नहीं सकता। जब तुम्हें जाड़ा देकर बुखार आता है तब मैं अपने हाथ से तुम को कपड़े नहीं ओढ़ा सकता। इन सब बातों से मेरे मन में जो दुःख होता है वह मैं तुम्हें किस

तरह जताऊँ। सोचता हूँ, बहुत व्रत कर चुका अब व्रत करने की ज़रूरत नहीं—अब उसका उद्यापन कर डालता हूँ। जो हो चुका वही बहुत है, अब न निभेगा।

रत्नकला दूसरी ओर दृष्टि फेर कर बड़ी देर तक चुप बैठी रही। चुप क्या थी मानों रो रही थी। परन्तु मन के उस भाव को बड़े कष्ट से रोक कर बोली—नहीं नहीं; ऐसा न कीजिए। क्या यह मैं होने दूँगी। कभी नहीं। आप के व्रत-भङ्ग का पाप मैं अपने सिर नहीं ले सकती। मैं आपके धर्म की सहायक न होकर क्या अधर्म का कारण बनूँगी?

गोपाल कुछ न बोला। उस के हृदय में रत्नकला के प्रति एक विमल श्रद्धा का भाव उदित हुआ।

कुछ क्षण के अनन्तर रत्नकला मुस्कुरा कर बोली—केवल एक घटना होने से, मालूम होता है, मैं बड़े स्वार्थ का काम करूँगी। आप के व्रत को खण्डित कर दूँगी। लाचार होकर आप को मेरा शरीर छूना पड़ेगा।

गोपाल ने प्रसन्नता भरी दृष्टि से रत्नकला के मुँह की ओर देख कर कुतूहल भरे स्वर में पूछा—वह कौन घटना है?

रत्नकला धीरे धीरे कहने लगी। आप के व्रत का उद्यापन होने के पूर्व,—इस साढ़े तीन महीने के भीतर—यदि मेरा अन्त-काल उपस्थित हो—तो—तो—

गोपाल ने खेद-सूचक स्वर में कहा—ऐसी बात भी कोई बोलता है! ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकालो।

रत्नकला ने कहा—अशुभ! स्त्रियों के लिए इससे बढ़ कर शुभ, और सौभाग्य और क्या हो सकता है? उस दिन मैं आप की एक बात भी न सुनूँगी। मरते समय आप की गोद में सिर रख कर ही मरूँगी। आप का व्रत नियम एक न मानूँगी।

बात खतम होने के साथ साथ रत्नकला की आँखों में आँसू भर आये। ओठों में हँसी और आँखों में जल—यह स्वर्गीय दृश्य देख कर गोपाल मन्त्र-मुग्ध हो रहा। किन्तु बहुत थोड़ी देर के लिए। धीरे धीरे उस के हृदय में एक वेदना का सञ्चार हुआ। यह वेदना आत्मग्लानि से उपजी हुई थी, अपने प्रति धिक्कार से उपजी हुई थी।

रत्नकला ने समझा, मेरे मरने की बात से ही गोपाल को इतना कष्ट हुआ है। अतएव प्रसङ्ग बदलने के लिए उसने दूसरी चर्चा छेड़ दी। आँखें पोछ कर कहा—सुना है, कलक्टर साहब हमारे-किसी गाँव में आ रहे हैं।

"हाँ, मधुपुर हाट आवेंगे।"

"वह गाँव कहाँ है ?"

"कालिकापुर के समीप।"

"तब तो यहाँ से दूर है। उनके लिए कुछ बन्दोबस्त हुआ है ?"

"हाँ हुआ है। डाली खरीद लाने के लिए एक आदमी कलकत्ते गया है और सब चीजों का इन्तजाम ठीक रखने के लिए कालिकापुर के जिलेदार के नाम परवाना भेजा गया है। यह सब तो हुआ है किन्तु मैं एक मुश्किल में पड़ गया हूँ।"

"क्यों ? कैसी मुश्किल ?"

दीवानजी से कल रात में गोपाल की जो बातें हुई थीं वे रत्नकला को सुना कर उसने कहा—तुम्हारे शरीर की यह दशा है, तुम्हें छोड़ कर कैसे आऊँगा ? तीन दिन तुम से अलग कैसे रहूँगा ?

रत्नकला ने मन में कुछ सोचा। उसके मुँह पर मान की छाया छा गई। वह अकस्मात् बोली—"तीन दिन मुझे छोड़ कर अलग रहने में आप कदराते हैं, फिर सोलह वर्ष

मुझे छोड़ कर कैसे रहे?" उसके दोनों होंठ आज कुछ हिलते हुए दीख पड़े।

गोपाल ने कहना चाहा—"तब मैं न तुमको इस तरह जानता था न पहचानता था।" जवाब अच्छा होता—प्रेम भी इससे प्रकट हो जाता। किन्तु यह झूठी कैफियत उसके कण्ठ में आ कर अटक गई। उसने सोचा—"छि', छि', मुझ पर जिस का इतना विश्वास, इतना प्रेम है उसे मैं झूठी बात कह कर ठगूँगा? धिक्कार है मुझ को!" यह क्षोभ, यह आत्मग्लानि फिर उसके हृदय में लहराने लगी। गोपाल चुप हो रहा।

रत्नकला ने समझने में भूल की। उसके मन में हुआ—शायद उसी की व्यङ्गोक्ति से गोपाल इस तरह लज्जित होकर सिट पिटा गया है। इसलिए उसने कहा—आज मैंने आप के दिल को बहुत दुखाया है। चोट पर चोट दे रही हूँ। बीमारी होने से मानों मैं एक जानवर बन गई हूँ। मुझे क्षमा कीजिए। अगर मैं आपके पास मान न करूँगी, तो करूँगी किस के पास?

रत्नकला का कण्ठस्वर ऐसा कोमल करुणा से भीगा हुआ था, ऐसा मधुर और विनयपूर्ण था, उसमें ऐसा आत्मसमर्पण का भाव भरा हुआ था कि उसे सुनकर गोपाल की आत्मग्लानि घटने के बदले और भी बढ़ गई। उसके इस भाव पर भी रत्नकला ने लक्ष्य किया—लक्ष्य करके वह दुःखित हुई। गोपाल के मन को दूसरी ओर ले जाने का उसने फिर एक बार यत्न किया। कहा—सुना है, कालिकापुर की भगवती चंडी जाग्रत्त हैं।

गोपाल—मुझे तो मालूम नहीं।

"लेकिन सब लोग कहते हैं।"

गोपाल ने काँपते हुए स्वर में कहा—तो मैं वहाँ जगदम्बा

के पास जाकर पूजा मन्नत कर आऊँगा जिससे तुम झटपट भली चगी हो उठो।

रत्नकला—देखिए, यह कह कर मन्नत कीजिएगा कि अच्छी होने पर मैं और आप दोनों साथ चल कर माँ को पूजा चढ़ायेंगे। कहिए, यह मैंने ठीक कहा है न?

गोपाल—ठीक है, यही मन्नत करूँगा।

"माँ की प्रसादी—थोड़ा सा सिन्दूर मेरे लिए लेते आइएगा।"

"ज़रूर।"

इसी समय परदे के बाहर खड़ी होकर माँजी ने पुकारा—बेटा नवेन्द्र!

गोपाल—क्या है माँ?

"बहू अभी साबूदाना खायगी न? तैयार हो गया है।" कहते कहते वह परदे को हटा कर भीतर गई।

गोपाल खड़ा हो गया, समझ गया कि उसे बाहर जाना होगा।

नजदीक आकर माँजी ने पूछा—बेटा! वैद्यराज की दवा इतने दिन हुई। ज्वर छुट कर भी जान नहीं छोड़ता। तीन दफे घूम घूम कर आया है। शहर से किसी डाक्टर को बुला कर क्यों नहीं दिखलाते?

गोपाल—हाँ, मैं भी यही सोचता था। जाता हूँ दीवानजी से कहने। देखें, वे क्या कहते हैं।

"सलाह करके कुछ निश्चय करो। मेरी बहू का शरीर सूख कर आधा हो गया है। यदि डाक्टर हवा पानी बदलने की सलाह दें तो इसे हवा बदलने को कहीं ले जाओ।"

रत्नकला के सामने इस विषय में अधिक चर्चा करने की गोपाल की इच्छा नहीं थी। इसलिए "देखें डाक्टर आकर क्या कहता है?" कह कर वह झटपट बाहर चला गया।

[३]

भोजन आदि के अनन्तर गोपाल रवाना हुआ। पालकी में बैठ कर इतना लम्बा सफ़र उसने कभी नही किया था। वह पालकी में बैठ कर सडक के दोनों ओर स्थित धान के खेतों की प्राकृतिक शोभा देखता चला। कोस दो कोस मार्ग चलने के बाद पालकी के डोलने से एक प्रकार के आनन्द का अनुभव कर वह ऊँघ गया और धीरे धीरे तकिये के ऊपर सिर रख कर लेट रहा। लेटते ही सुख की नींद आ गई। कोई डेढ घटे तक वह गाढी नींद में निमग्न रहा। इसके बाद उसकी नींद टूटी, घडी का ढकन खोल कर देखा—दो बज कर कुछ मिनट हुए थे। तकिये के नीचे से पान का डिब्बा निकाला और एक बीडा खाकर वह अलसाई हुई दृष्टि से बाहर की ओर देखने लगा। धीरे धीरे उसके मन में रत्नकला की चिन्ता हो आई। सोचने लगा—अब आज उसको न देख सकूँगा—कल भी नहीं—और परसों भी नहीं। चौथे दिन साँझ तक फिर उससे भेट होगी। रत्नकला इस समय क्या करती होगी, क्या बातचीत करती होगी? उसके पास कौन कौन बैठे होंगे—शरीर अभी ठडा होगा या गरम, इन सब बातों को वह सोचने लगा। बारम्बार यही बातें उसके मन को दुःख देने लगीं। तीन दिन उससे भेट न होगी। चौथे दिन भेट होगी या न होगी कौन जाने? मनुष्य के क्षणभङ्गुर शरीर का निश्चय ही क्या? कमल पत्र का जल जैसा चचल होता है यह जीवन भी वैसा ही चचल है। इसकी स्थिरता क्या है? यदि लौट कर देखूँ कि रत्नकला नहीं है, यदि

जाकर देखूँ कि घर के सभी लोग रो रहे हैं—सर्वनाश हो गया है तो क्या करूँगा ?—यह सोचते ही गोपाल का कलेजा धड़कने लगा। शरीर काँप उठा। धीरे धीरे उसने आँखें बन्द कर लीं। उसके उन मूँदे हुए नेत्रों से बूँद बूँद आँसू टपक कर पालकी के बिछौने को भिगोने लगे।

कुछ क्षण के अनन्तर गोपाल ने आँखें खोलीं। वह धीरे धीरे उठ कर बैठ गया। चोगे के छोर से आँखें पोंछ कर मन में कहा—"नहीं, भला यह भी हो सकता है ! भगवान् क्या मेरे ऊपर एकदम ऐसे निठुर हो जायँगे ?" किन्तु साथ ही साथ फिर उसने कहा—मुझ पर भगवान् क्यों दया करेंगे ? मैं तो महापापी हूँ। अनाघ्रात फूल की भाँति जो कोमल कमनीय है, गङ्गाजल के सदृश जो स्वच्छ पवित्र है, उसी का मैं सर्वनाश करने बैठा हूँ। मुझ दुष्ट दुराचारी वञ्चक पर क्या ईश्वर कभी कृपा कर सकते हैं ?

इसी चिन्ता में एक घंटा समय बीत गया। इतने में पालकी एक छोटी सी बस्ती में आ पहुँची। रास्ते में एक ओर बड़ का बड़ा भारी पेड़ है, दूसरी ओर एक छोटा सा तालाब है। बड़ के पेड़ से कुछ दूर पर सड़क के किनारे चना चबैने की एक दूकान है। कहारों ने उसी पेड़ के नीचे पालकी रक्खी। उनमें जो सब से चतुर था वह बाबू के सामने आ हाथ जोड़ कर बोला—हुज़ूर, हुक्म हो तो हम लोग यहाँ कुछ जल-उल खाकर दम ले लें।

"अच्छा, पानी-वानी पीकर ज़रा सुस्ता लो।" कह कर गोपाल ने पाकेट से एक रुपया निकाल कर कहार के आगे फेंक दिया। पालकी में बड़ी देर से बैठने के कारण उसका भी बदन जकड़ गया था। इसलिए वह भी पालकी से उतर पड़ा और पूछा—यह कौन गाँव है ?

कहार ने कहा—हजूर, यह मियाँ छपरा है। यहाँ मुसलमान ही ज्यादा रहते हैं, हिन्दू बहुत कम।

"किसकी जमींदारी है ?"

"मुरलीगज के भूमिहार बाबुओं की।"

गोपाल ने वहाँ के भूमिहारों का नाम सुना था। अत्याचार और प्रजापीडन के कारण सब जगह उनकी शिकायत होती थी।

कहार लोग हाथ पैर धोने के लिए तालाब के घाट पर गये। गोपाल टहलते टहलते गाँव के भीतर गया। छोटे छोटे, मिट्टी की दीवारों के, घर हैं और कहीं कहीं टट्टी के घर भी बने हैं। आँगन में मुर्गी मुर्गे चारा चुग रहे हैं। छप्पर के ऊपर कद्दू कोहडे की बेल पसरी हुई है। किसी घर के उसारे में दीवार से सट कर बैठी हुई बूढी मुसलमानिन चरखा कात रही है। किसी सुखी गृहस्थ के घर की बीबी आँखों में काजल दिये कानो में चाँदी के झूमक, बाँहों में बाजूबन्द और हाथों में काँच की चूडियाँ पहिरे उसारे में बैठ कर बच्चे को दूध पिला रही है। यह सब दृश्य देखता हुआ गोपाल आगे बढा।

कुछ दूर आगे जाकर देखा कि एक घर के आँगन में कुछ लोग इकट्ठे होकर हल्ला मचा रहे हैं। दो आदमी एक मोटे-ताजे खस्सी बकरे के गले की रस्सी पकड कर खेंचा खेंची कर रहे हैं और परस्पर झगड़ रहे हैं। अन्यान्य लोग खडे खडे तमाशा देख रहे हैं। उन झगडने वालों में एक मुसलमान है। वह कह रहा है—"यह बकरा मैं कभी न दूँगा, जान चली जाने पर भी नहीं दूँगा। जान दे दूँगा, पर बकरा न दूँगा।" दूसरा हिन्दू है—उसके हाथ में लाठी है और सिर पर साफा है। वह कह रहा है—"कैसे नहीं देगा ? तेरा बाप देगा। जमींदार का हुक्म है, तेरी क्या मजाल है जो तू नहीं देगा।"

मुसलमान कहता है—"जमींदार की जमीन में मुफ्त नहीं जोतता। क्या वे मुझ से मालगुजारी नहीं लेते हैं? मैं अपना बकरा क्यों दूँ? बड़ा जुल्म है।" उसारे का खंभा पकड़े एक दस बारह वर्ष का लड़का रोने की सी सूरत किये खड़ा है। उसके पीछे छप्पर की लकड़ी हाथ से थामे एक अधेड़ स्त्री खड़ी है। मालूम होता है, यह उस लड़के की माँ है।

असल बात मालूम हो जाने पर गोपाल ने रास्ता छोड़ आँगन में जाकर कहा—तुम लोग इतना हल्ला क्यों मचा रहे हो?

मुसलमान ने कहा—बाबाजी सलाम। आप तो हिन्दुओं के साधु हैं। देखिए, मैंने इस बकरे को बड़ी मेहनत से पाला पोसा है। मैंने खुद रोटी न खाकर इसे खिला पिला कर इतना बड़ा किया है। मैंने इसे शौक से पोसा है, इसे मैं क्यों दे दूँ? यह इसे ले जाकर मार डालेगा।

हिन्दू पियादे ने चिल्ला कर कहा—"साले की शैतानी तो देखो! जमींदार के घर में कल भोज है। कलकत्ते से बड़े बड़े बाबू लोग आये हैं, देगा क्यों नहीं? नहीं देगा तो जूते लगा कर खाल खींच लूँगा।" अब सिपाही ने रस्सी पकड़ कर जोर से बकरे को खींचा। बकरा जमीन में गिर कर में में करने लगा।

गोपाल ने बिगड़ कर कहा—अरे तू कौन है?

उसने मुँह बना कर उत्तर दिया—इस्! लाट साहब आये हैं। फकीर होकर शान दिखाने चले हैं। बोली तो सुनो—'तू कौन है रे।' मुझ को पहचानते नहीं—मैं मुरलीगंज के ठाकुर का सिपाही हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। जा जा, यहाँ से बाबाजी! इस गाँव में भीख नहीं मिलेगी। यहाँ मुसलमान रहते हैं।

गोपाल क्रोध से आग बबूला हो गरज कर बोला—चुप

रहो, हरामजादे! बाबाजी से अभी काम नहीं पड़ा है। जिसकी चीज है वह जब देता नहीं तब तू ज़बरदस्ती कैसे ले जायगा?

और सब मुसलमान अभी तक दर्शक रूप में खड़े थे—दुर्दान्त जमींदार के डर के मारे कोई कुछ बोलने का साहस नहीं करता था। अब इस अपरिचित सन्यासी की यह निर्भयता देख कर उन लोगों के भी मुँह खुले। किसी ने कहा—गफूर भाई! हर्गिज मत दो। बकरा तुम्हारा है, तुम नहीं दोगे तो जबरदस्ती कौन ले सकता है? किसी ने कहा, "जुल्म है। देखें तो यह सिपाही का बच्चा कैसे यह बकरा ले जाता है?" कोई कोई इससे भी कड़ी कड़ी बातें कहने लगे। सन्यासी के शाप के भय से हो या मुसलमानों को जुटे हुए देख कर के हो, ज़मींदार का सिपाही अब कुछ मुलायम हो गया। उसने नरमी के साथ कहा—मैं यों ही तो इसका बकरा नहीं माँगता। जो मुनासिब दाम हो, ले ले। मैं अभी रुपया देता हूँ।

गफूर मियाँ ने कहा—रहने दो अपना रुपया। जिसको प्यार करता हूँ उसके गले पर कैसे छुरी चलाने दूँ?

गोपाल ने जमींदार के सिपाही से कहा—अगर अपनी भलाई चाहो तो यहाँ से चुपचाप चले जाओ। तुम्हारे मालिक को बकरा खाने का शौक है-तो जो बेचना चाहता हो उससे मोल ले लो। गरीब के ऊपर जुल्म मत करो।

गोपाल की ओर से नजर हटाकर सिपाही अपनी उँगली हिलाकर गफूर से बोला—"रह जा साले। ज़मींदार की बेइज्ज़ती का मैं अभी मजा चखाता हूँ।" फिर मारे क्रोध के गरजता चिल्लाता हुआ चला गया।

गोपाल ने देखा कि सिपाही की आखिरी बात सुनने से सभी

पर रोब गालिब हो गया है। ये सब आपस में कहने लगे— "सिपाही बहुत खिसिया कर गया है। एक की सात बना कर कहेगा। ज़मींदार नाराज होकर कहीं लठैतों को न भेज दे।" गफूर ने कहा—भेजने दो। मर भले जायँगे, जीते जी बकरा नहीं देंगे। क्या वही एक सब के ऊपर है, जो करेंगे वही होगा?

"देखो तुम लोगों का जमींदार भला आदमी नहीं है। तुम लोगों के ऊपर अगर किसी तरह ज़ुल्म हो तो मधुपुर हाट में कलक्टर साहब से रिपोर्ट करना। वहाँ उनका पड़ाव है। तीन दिन तक वे वहाँ रहेंगे। तुम लोग उनसे जाकर सब कह सुनाना।" यह कह कर गोपाल ने रास्ता पकड़ा। मुसलमान लोग बड़े अदब से गोपाल को झुक झुक कर सलाम करने लगे।

गोपाल ने पालकी के पास जाकर देखा, कहार लोग जलपान करके तैयार बैठे हैं। गोपाल पालकी में जा बैठा। कहार फिर पालकी को उठा कर रवाना हुए।

गोपाल बैठे बैठे इसी एक विषय को मन ही मन उधेड़-बुन करने लगा। "जिसे प्यार करता हूँ उसके गले पर कैसे छुरी चलाने दूँ?" यह बात मानों उसके कान में बार बार प्रतिध्वनित होने लगी। एक साधारण मुसलमान ने प्रबल पराक्रमी जमींदार के क्रोधानल की उपेक्षा कर के, अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को तुच्छ जान कर, अपने स्नेह-पात्र की रक्षा की। इससे गोपाल को उस मनुष्य पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने मन में कहा— यही तो चाहिए।

मानसिक उत्तेजना कुछ कम होने पर गोपाल फिर रत्नकला की चिन्ता में डूब गया। उसने सोचा, आते समय तो उसे अच्छी ही देख आया हूँ। लौट कर जाऊँगा तब कृष्णनगर से डाक्टर को बुलवा कर एक बार उसे दिखलाऊँगा। यदि वायु-परिवर्तन की

सलाह होगी तो वायु-परिवर्तन के लिए उसे कहीं ले जाऊँगा। शिमला, नैनीताल या दार्जिलिङ्ग, जहाँ की सलाह होगी वहीं ले जाऊँगा। तभी वह सम्पूर्ण रूप से चङ्गी होगी। व्रत का ढोंग रचे मुझे प्राय: तीन महीने बीत गये हैं। अब तीन महीने के बाद ही—सहसा गोपाल का चेहरा उतर गया। मानों किसी ने उसके हृदय पर एक चाबुक कस कर मारा हो। उसकी आँखें झिप गईं, जल्दी जल्दी साँस चलने लगी।

धीरे धीरे उसका सिर झुक गया। बड़ी देर तक वह काठ की भाँति निश्चेष्ट बैठा रहा। इसके बाद फिर सोचने लगा। उसकी आँखों से आँसू टपक टपक कर गिरने लगे। अन्त में वह अस्पष्ट स्वर मे बोला—उस मूर्ख मुसलमान को जितना धर्म-ज्ञान है मुझे क्या उतना भी नहीं? वह जिसको प्यार करता है उसके गले पर दूसरा कोई छुरी न चलावे, इसके लिए वह अपनी जान तक देने को तैयार है। और मैं जिसको प्यार करता करता हूँ उसके गले पर अपने हाथ से छुरी चलाना चाहता हूँ! छि, धिक्कार है मुझे और मेरे अदृष्ट को।

[४]

कलक्टर साहब की खातिर करके तीन दिन बाद गोपाल जब वासुदेवपुर लौट आया तब दिन ढल चुका था। उसे देख सभी लोग अचम्भे में आ गये। तीन ही दिन में उसका चेहरा और का और हो गया है। अन्दर जाते ही कमलादेवी ने सशङ्कित भाव से उससे पूछा—बेटा भवेन्द्र, वहाँ जाने पर कुछ माँदा तो न हो गया था?

गोपाल—नहीं।

"तो तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो गया है।"

"रास्ते की हरारत मालूम होती है"—कह कर गोपाल वहाँ से चल दिया।

रत्नकला के पास जाकर देखा, वह पहले से कुछ अच्छी है। अब उसे बुखार नहीं आता। खाँसी भी कुछ कम है। रत्नकला ने भी गोपाल के भावान्तर का अनुभव किया। पूछा—वहाँ आप की तबीयत कैसी थी?

"अच्छी तो थी।"

"तो आप का चेहरा इस तरह क्यों सूख गया है? मानों आप का वह चेहरा ही नहीं।"

गोपाल—नहीं, यह कुछ नहीं है।

रत्नकला ने समझा, शायद रास्ते की तकलीफ से ही ऐसा हुआ है। इधर उधर की दो चार बातें होने के बाद रत्नकला ने पूछा—देवीजी के दर्शन कर आये?

"हाँ, दर्शन तो कर आया।"

"जैसा मैंने कहा था वैसी मन्नत की है न ?"

तनिक चुप रह कर गोपाल ने कहा—नहीं।

इस उत्तर से रत्नकला को कुछ आश्चर्य हुआ। उसकी समझ में न आया कि क्या मामला है। गोपाल भी देर तक वहाँ नहीं रह सका। जलपान करके बाहर चला आया।

सन्ध्या के अनन्तर दीवानजी आये। बहूजी के स्वास्थ्य और कलक्टर साहब से भेंट आदि की बातचीत होने पर वे बोले—श्याम बाबू, मैं एक महीने की छुट्टी चाहता हूँ।

गोपाल—क्यों ?

"मेरा शरीर इस समय बड़ा खराब हो गया है। स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा है। इससे जी चाहता है कि एक-आध महीना दार्जिलिङ्ग में जाकर रहूँ। उस साल मालिक के साथ दार्जिलिङ्ग गया था। उससे बहुत फायदा हुआ था। वहाँ खूब घूमता-फिरता था। खासी भूख लगती थी।"

गोपाल—यदि अपनी स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आप यह आवश्यक समझें तो हर्ज क्या है, घूम आइए।

दीवानजी—किन्तु आप अपना काम कुछ देखिए-सुनिएगा। नायब दीवान अवश्य होशियार आदमी हैं। परन्तु अपनी सम्पत्ति आप न देखने से सब काम चौपट हो जाता है।

इसके बाद दीवान जी जमींदारी सम्बन्धी कार्य के विषय में गोपाल को अनेक प्रकार के उपदेश देने लगे, किन्तु कोई बात गोपाल के कान में नहीं अटकी। उसका मन जमींदारी के झंझट से सौ योजन पर विचर रहा था। वह इधर कई दिनों से जिस चिन्ता में पड़ा था उसी चिन्ता में फिर अचेत सा हो रहा।

बड़ी देर तक बातचीत करने के बाद दीवानजी ने समझा कि श्रोता का कुछ भी ध्यान मेरी बातों पर नहीं है। तब वे रुक गये

और एक लम्बी साँस लेकर बोले—अच्छा बाबू, अब जाता हूँ। रात हुई।

गोपाल ने खड़े होकर कहा—बहुत अच्छा, जाइए।

दीवानजी के चले जाने पर गोपाल ने नौकर को तम्बाकू भर लाने की आज्ञा दी। नौकर तम्बाकू भर कर ले आया। उस निर्जन कमरे में बैठ कर धूम्रपान करते करते गोपाल आकाश पाताल की बातें सोचने लगा। तम्बाकू पीते पीते उसके हाथ से नैचा छुट कर नीचे गिर पड़ा। लोग कहते हैं कि तमालपत्र का धुआँ चिन्ता-रोग की महौषधि है। किन्तु रोग जब बहुत प्रबल होता है तब महौषधि भी कुछ फल नहीं देती। गोपाल की अभी यही अवस्था है।

थोड़ी देर के बाद भोजन तैयार होने की खबर आई। गोपाल अन्दर जाकर भोजन करने के लिए आसन पर बैठा। नाम मात्र का भोजन किया। भोजन की सब सामग्री ज्यों की त्यों पड़ी रही। कमला देवी पास ही बैठी थी। गोपाल को उठते देख कर बोली—यह क्या भवेन्द्र! कुछ खाया नहीं।

गोपाल ने कहा—माँ, आज भूख नहीं है।

"जी तो अच्छा है?"

"हाँ।"

कमला ने कातर स्वर में कहा—नहीं बेटा, विश्वास नहीं होता। तुमको क्या होता है सो कहो। तुम्हारा जी अवश्य ही खराब है। वैद्यराज को बुलवाऊँ?

"नहीं, वैद्यराज को बुलाने की आवश्यकता नहीं। आप ही तबीअत ठीक हो जायगी।" कह कर गोपाल मुँह-हाथ धोने लगा।

और दिन—जब से रत्नकला विशेष रूप से बीमार है तब

से—सोने को जाने के पूर्व गोपाल उससे भेंट कर एक-आध घड़ी बातचीत करता था। किन्तु आज वैसा नहीं किया। सीधे बाहर की बैठक में, अपने शयनागार में, जा किवाड़ बन्द कर दिये। नौकर तम्बाकू भर कर ले आया। किवाड़ भीतर से बन्द देख कुछ देर तक वह बाहर खड़ा होकर चिलम की आग फूँकने लगा। दो-एक बार धीमे स्वर में खाँसा भी कि शायद बाबू किवाड़ खोल दें। किन्तु दरवाजा बन्द ही रहा। तब लाचार हो नौकर चिलम हाथ में लिये नीचे उतर गया और सब नौकर मिल कर उस चिलम के सद्व्यवहार में लग पड़े।

[५]

दो दिन के बाद रत्नकला को अन्न का पथ्य दिया गया। उसके दूसरे दिन दीवानजी दार्जिलिङ्ग को गये।

गोपाल इन दोनों घटनाओं की ही अपेक्षा किये चुप बैठा था। अब उसने अपने मन का सिद्धान्त स्थिर कर लिया है—हृदय को दृढ़ कर लिया है। उसके सब सन्देह दूर हो गये हैं। स्नेह की गर्दन पर वह छुरी नहीं चलावेगा। विश्वास के स्थान में वह वञ्चना नहीं करेगा। रत्नकला से सभी बातें खोल कर कह देगा। इसके बाद जो भवितव्य होगी, वह होगा।

दोपहर के बाद दीवानजी को पालकी पर चढ़ा स्टेशन को रवाना करके गोपाल अपने शयन गृह में आकर सोचने लगा। अब उसके चेहरे पर गत कई दिनों की अशान्ति की वह कालिमा नहीं है। अपने कर्तव्य-सम्बन्ध में सिद्धान्त स्थिर कर चुकने के कारण उसके मन में कुछ शान्ति आ गई है। किन्तु उसकी यातना और चिन्ता का अभी अन्त नहीं हुआ है।

उसको अब अपने भविष्यत् के सम्बन्ध में ही चिन्ता थी। कल हो चाहे परसों, यहाँ से एक न एक दिन जाना ही होगा। प्रेम प्रतिमा को यहीं छोड कर जाना होगा। इस जीवन में फिर इस मूर्ति का दर्शन नहीं होगा। उसको देखे बिना यह जिन्दगी कैसे कटेगी?

अपने अन्धकारमय भविष्यत्-जीवन के भीतर गोपाल जो कहीं कुछ प्रकाश नहीं देखता हो सो नहीं। अब वह सोचता है कि अपनी बडी आशा की प्रतिमा को छोड जाने में मेरा कलेजा

फट जायगा। फट जायगा तो फट जाय—मैंने अपनी आराधना की मूर्त्ति को अपवित्र नहीं किया, मेरे लिए यही एकमात्र सन्तोष की बात है। यही मेरे शेष जीवन के चिर-अन्धकार के भीतर प्रकाश की रेखा है। जिसको प्यार किया है उसके गले पर छुरी नहीं चलाई, जिसकी आराधना के लिए हृदय का सिंहासन सज्जित किया था उसे कलङ्कित नहीं किया—इसी से मेरा शेष जीवन रत्नदीप की भाँति चमकेगा।

गोपाल ने निश्चय किया है कि आज सन्ध्या समय रत्नकला को अन्त पुर की वाटिका में ले जाकर वह सब बात उसको कह सुनावेगा। अपने अपराध के लिए उसके पैरों में पड़ कर शत सहस्र वार क्षमा की प्रार्थना करके सदा के लिए विदा माँगेगा।

घड़ी में टन् टन् कर चार बज गये। उक्त बात कहने का मन में सकल्प करके गोपाल अन्दर गया। देखा, रत्नकला अपने कमरे में बैठ कर एक पुस्तक पढ़ रही है। गोपाल को देख सकुचित हो उसने पुस्तक पढ़ना बन्द कर दिया।

गोपाल ने एक कुरसी पर बैठ कर कहा—"चलो, बाग में टहलने चलें।" अब उसे आप ही अपना कण्ठस्वर एक विचित्र ढंग का सुन पड़ा। इससे उसे कुछ सकोच हो आया। रत्नकला उसके मुँह की ओर चकित दृष्टि से बड़ी देर तक देखती रही। पीछे बोली—आप का जी कैसा है?

गोपाल—अच्छा तो है।

"आपका गला ऐसा भारी क्यों मालूम होता है? आँखें भी सूज गई हैं।" गोपाल ने इस बात का उत्तर न देकर कहा—बाग में चलो, वहीं कहूँगा।

पुरानी रीति के अनुसार बहूजी पहले उठ कर बाग में गई। थोड़ी देर में गोपाल भी वहाँ जा कर निर्दिष्ट स्थान में बहूजी से

मिला। तब दोनों साथ ही साथ बाग में घूमने लगे। बहूजी बीच बीच में कातरदृष्टि से गोपाल की ओर देखने लगीं।

गोपाल अपनी बात कहने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा। किन्तु किसी तरह उसके मुँह से वह बात नहीं निकली। कण्ठ तक बात आकर अटक जाती थी, मुँह से बाहर न होती थी।

बहूजी कुछ क्षण के बाद बोली—मेरी एक बात मानिएगा ?

गोपाल—क्या ?

बहूजी—आप का शरीर और मन दोनों ही खराब हो गये हैं। सोलह वर्ष तक आप पच्छिम में थे। उधर का जल वायु आपके रोम रोम में भिद गया है। एकाएक बङ्गाल में आने से यहाँ का मन्द जल वायु आपको बरदाश्त नहीं होता। और सोलह वर्ष तक आपने एक भाव से जीवन बिताया है, अब उससे विपरीत अवस्था में पड गये हैं। इसी से आपका जी घबरा गया है। मैं कहती हूँ कि चलिए, कुछ दिन हम और आप पच्छिम के जल वायु का सेवन कर आवें। माँजी भी बहुत दिनों से तीर्थ जाने का इरादा रखती हैं। चलिए, हम आप उन्हें तीर्थ-यात्रा करा लावें। महीने डेढ महीने घूम कर देवीपूजा के पहले ही हम लोट आवेंगी। कहिए, आपकी क्या राय है ?

उत्तर के लिए बहूजी ने कुछ देर तक निष्फल प्रतीक्षा करके फिर पूछा—आप क्या कहते हैं ?

गोपाल चोंक पडा। पूछा—अयँ। क्या पूछा ?

बहूजी ने कहा—आप क्या कहते हैं ? जो चलना स्वीकार हो तो मैं माँजी से जाकर कहूँ। सब बातों का प्रबन्ध किया जाय।

गोपाल—कहाँ चलने को कह रही हो ?

बहूजी ने कहा—मैं इतनी देर तक जो बक गई हूँ, सो आप ने कुछ भी नहीं सुना ?

गोपाल ने लज्जित हो कर कहा—मैं एक और ही बात सोच रहा था। इससे तुम्हारी बात पर ध्यान नहीं दिया। क्या कहा था, एक बार फिर कहो।

बहूजी ने अपने प्रस्ताव को फिर दुहरा दिया। सुन कर गोपाल ने कहा—अच्छा, सोच कर कहूँगा।

अब गोपाल ने मन में निश्चय किया कि जो बात कहनी है वह बहूजी के सामने कहते न बनेगी, इसलिए आज रात में वह एक चिट्ठी में सब बातें लिख रक्खेगा और कल सुयोग पाकर किसी समय उसके हाथ में दे देगा।

रात में भोजन आदि करके सोने के कमरे में आकर गोपाल रत्नकला को पत्र लिखने बैठा।

एक पृष्ठ, दो पृष्ठ, तीन पृष्ठ, लिखता था और फिर फाड डालता था। फिर दूसरे कागज पर लिखने लगता था। बीच बीच में एक आध बार कलम रोक कर ऊपर की ओर दृष्टि कर के सोचता था—फिर लिखने लगता था। लिखते लिखते बीच मे एक-आध बार हाथ से आँख मूँद कर रो लेता था और आँखें पोंछ कर फिर दो-चार सतरें लिखता था। इस तरह करते करते रात के एक, दो, और तीन बज गये। अन्त में गोपाल ने चिट्ठी लिख कर तैयार कर ली। थोडा सा और लिखने ही से उसका मतलब हो जाता। किन्तु अब उसका हाथ काँपने लगा। सारी रात लैम्प के पास बैठे रहने से उसका सिर घूम गया। इससे उसने सोचा कि बाहर जाकर छत पर खुली हवा में टहल कर दिमाग को ठंडा कर लूँ—इसके बाद पत्र को समाप्त कर के सोऊँगा।

गोपाल टेबल छोड उठ खडा हुआ। दरवाजा खोल कर छत के ऊपर टहलने लगा। भादों का महीना है तथापि आज

आकाश में बादलों का नाम नहीं। चन्द्रमा डूबने ही पर है। स्वच्छ आकाश में लाखों तारे चमक रहे हैं। चारों ओर सन्नाटा है। जंगल के झींगुरों को भी नींद आ गई है। मन्द मन्द हवा बह रही है।

टहलतें टहलते एकाएक गोपाल को एक बात सूझ पड़ी। वह छत के मध्य भाग में ठिठक कर खड़ा हो रहा। कुछ देर तक न मालूम क्या सोचा। इसके बाद कमरे में लौट आया और चिट्ठी का अन्तिम पृष्ठ लिख कर बत्ती बुझा सो रहा।

जब तक नींद न आई तब तक गोपाल पत्र के शेष अंश की ही बात सोचता रहा। मन में कहा—वृथा आशा! वृथा आशा!

मेरी यह आशा भी वैसी ही है। जो हो, दो दिन के भीतर सब बात प्रकट हो जायगी। मैंने तो कल ही यहाँ से चल देने का इरादा किया था। कल न सही परसों ही सही। बखेड़ा कुछ तो जरूर होगा। ये लोग चाहें तो मुझे पुलिस के सिपुर्द भी कर सकते हैं। जेल होगा—हो। जेल के बाहर और भीतर दोनों स्थान मेरे लिए बराबर हैं।

इन बातों को सोचते सोचते गोपाल सो गया।

---

[६]

आज बहूजी को आशा थी कि नित्य-कृत्य करके जब वे (गोपाल) जलपान करने अन्दर आवेंगे तब उनसे भेंट होगी और तीर्थयात्रा के विषय में वे कुछ न कुछ अपनी राय देंगेही। उनकी शारीरिक और मानसिक अवस्था देख कर बहूजी व्याकुल हो गई हैं। मारे सोच के उन्हें रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई।

किन्तु उनकी आशा पूरी न हुई। जलपान के लिए गोपाल यथासमय अन्दर तो आया परन्तु बहूजी से बिना भेंट किये ही बाहर चला गया।

तब बहूजी आशा करने लगीं कि दोपहर को जब भोजन करने आवेंगे तब उनसे अवश्य ही भेंट होगी। किन्तु गोपाल आया और भोजन करके चला गया। भेंट फिर भी न हुई।

तब बहूजी के मन में कुछ अभिमान हुआ। वह सोचने लगी— क्यों? मुझ से इस तरह क्यों दूर भागते फिरते हैं? मैंने क्या किया है? जान-बूझ कर तो मैंने कोई अपराध किया नहीं। पहले मुझे उतना प्यार करते थे, मुझ से भेंट करने के लिए बहुत व्याकुल रहा करते थे। अब ऐसे कठोर क्यों हो गये? जब से कालिकापुर से लौटे हैं तब से यह परिवर्तन देख रही हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या बात है।

इस प्रकार मन ही मन सोच विचार कर आखिर उन्होंने निश्चय किया कि उनका जी अच्छा नहीं है इसी से वे ऐसा रूखा बर्ताव कर रहे हैं। जो हो, आज पिछले पहर दिन में जब उनसे भेंट होगी तब तीर्थयात्रा की बात पूछ कर पक्की

कर लूँगी। सास को खिला पिला कर और स्वयं भी कुछ भोजन करके बहूजी जब अपने कमरे में आईं तब एक बजे का समय था। सवेरे से ही आज आकाश में कुछ कुछ बादल दिखाई दे रहे थे। इस समय बादलों ने आसमान को चारों ओर से घेर लिया। एक ओर से काली घटा उमडी आ रही है। पच्छिम ओर के झरोखे के पास खडी होकर बहूजी उस घटा की शोभा देखने लगीं। रह रह कर बिजली चमक उठती है। आज पानी बरसे बिना न रहेगा।

कमजोरी के सबब से बहूजी देर तक खडी न रह सकीं। एक गद्देदार बेञ्च पर जा बैठीं। कुछ समय बाद कनक और शशिकला आवेगी। मालूम होता है, अभी उन्हें खाने पीने से छुट्टी नहीं मिली। एक नया मासिक-पत्र आया था, उसे खोल-कर बहूजी चित्र देखने लगीं। घडी में एक बज गया।

इसी समय बाहर किसी के पैरों की आहट सुन पडी। बहूजी के हृत्पिण्ड में शोणित का प्रवाह बडे वेग से होने लगा।

पैरों की आहट उनकी पहचानी हुई थी और आकाङ्क्षित थी। उन्होंने झटपट कपडे सँभाल लिये। इतने में गोपाल कमरे में आ पहुँचा।

रत्नकला उठ खडी हुई। अनखा कर बोली—आज इतनी देर में स्मरण हुआ है?

गोपाल सिर झुका कर चुप हो रहा। कुछ उत्तर न दिया।

रत्नकला—बैठिए, क्या बैठिएगा नहीं?

"नहीं" कह कर गोपाल ने कुरते की जेब में हाथ डाला और लिफाफे में बन्द एक चिट्ठी निकाल कर काँपते हुए हाथ से रत्नकला के आगे रख दी।

रत्नकला ने पूछा—किसकी चिट्ठी है?

"तुम्हारी।"

रत्नकला ने हाथ बढा कर चिट्ठी ले ली। लिफाफे को उलट-पलट कर देखा। यह चिट्ठी डाक से नहीं आई है। तब पूछा—किसने लिखी है?

"खोल कर देख लो" कह कर गोपाल, पागल की तरह हिलता-डोलता, कमरे से बाहर हो गया।

उसके व्यवहार से रत्नकला के मन में एक प्रबल आशंका जाग उठी। मानों एक अज्ञात राक्षस मुँह फैला कर उसको निगलने के लिए दौड़ा आ रहा है। उसका सूखा चेहरा और भी सूख गया। हाथ-पैर काँपने लगे। किसी तरह चिट्ठी खोली। मेघ से ढके हुए आकाश के धुँधले प्रकाश में चिट्ठी पढने लगी। उसमें लिखा था —

"मैं नहीं जानता कि क्या कह कर तुम्हें सम्बोधन करूँ। तुम मेरे जीवन के एकमात्र सुख और आनन्द की निश्छल संगिनी हो—किन्तु विधि की विडम्बना से मैं रत्नरूप तुम से विलग होना चाहता हूँ। मैं बहुत लिखा पढा नहीं हूँ। मन की सब बातों को सुन्दर रूप में कहने की योग्यता मुझ में नहीं है। नहीं तो मैं इस पत्र में अपने अकृत्रिम प्रेम का प्रमाण देता। मैं जन्म का दुखिया हूँ। मन में सोचा था कि इतने दिनों बाद विधाता ने मुझको सुख के दिन दिखाये हैं। किन्तु जो भाग्यहीन है उसे सुख कहाँ? मेरे सभी सुख भस्म हो गये। मैं बडा भारी अधम, कृतघ्न और दुराचारी हूँ। मैने तुम्हारा जो अपराध किया है वह क्षमा किये जाने लायक नहीं। सती साध्वी हिन्दू रमणी उसे माफ नहीं कर सकती। मैं क्षमा के योग्य हूँ भी नहीं। मैं मूर्ख हूँ, किन्तु तुमको प्यार करने से इन कई महीनों में मुझे जो शिक्षा मिली है उसी के फल से मैं आज तुम को यह पत्र लिखने

ठा हूँ। मैंने तुम को हृदय से जितना प्यार किया है उतना ार अपने जीवन में कभी किसी को नहीं किया। तुम को देखने : पूर्व मैं नहीं जानता था कि प्रेम किसको कहते हैं। तुम पर मेरा ार्दिक प्रेम है, इसलिए तुम्हारे साथ कपट नहीं करूँगा। तुम्हारा मुझ पर अटल विश्वास है। अब मैं ऐसा नराधम नहीं हो सकता कि तुम्हारी छाती में छुरी भोंकूँ। तो असल बात कहता हूँ, सुनो। मेरा नाम भवेन्द्र नहीं है। मैं तुम्हारा स्वामी भी नहीं। तुम्हारे स्वामी भवेन्द्र अब इस लोक में नहीं हैं। वे इस दीन दुनिया से चल बसे—यह जानकर सम्पत्ति के लोभ से मैं भवेन्द्र बन कर "

यहाँ तक पढ कर रत्नकला आगे न पढ सकी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। बेहोश होकर वह बेञ्च के ऊपर से धडाम से गिर पडी।

आधे मिनट बाद पान चबाती, बाँह डुलाती, झूमती-झामती हुई कनकलता आ पहुँची। चौखट के भीतर पैर रखते ही "अयँ! क्या हुआ?" कह कर वह दौड कर बहूजी के पास गई। चिट्ठी जमीन पर पडी थी। उसे झट उठा लिया। बडी तेज दृष्टि से एक सतर यहाँ दो सतर वहाँ पढ कर मामले को मोटे तौर पर समझ गई। चिट्ठी को झटपट कपडे के भीतर छिपा कर "क्या हुआ, क्या हुआ रे दादा!" कह कर वह चिल्लाने लगी। महल में हलचल मच गई। चारों ओर शोरगुल होने लगा। पहले शशिकला आई। इसके बाद हाँफते हाँफते झल्लू की माँ—और भी कितनी ही औरतें आ गई। झल्लू की माँ गोन चिल्लाने की आवाज से छत तोड़ने पर तैयार हो गई थी कनक ने बहुत कुछ कह सुन कर उसे रोका [illegible] में कमला देवी भी आ पहुँची। मुँह पर ठण्डा पानी [illegible] से हवा

की तथा और भी अनेक यत्न करके बहूजी को होश कराया गया। उन्होंने आँख खोली। शशिकला और कनक दोनों ने उठा कर उन्हें बेञ्च पर बिठाया।

कमला देवी रोते रोते बोलीं—हाय रे दैव! मेरी बहू को क्या हो गया? एकाएक इस तरह मूर्च्छित क्यों हो गई?

बहूजी ने कोई जवाब न देकर सिर्फ़ अपने कपार को हाथ से ठोका। कनक ताड गई। बहूजी के नेत्र पत्र की खोज न करके ऊपर की ओर टक लगाये हुए हैं।

कमला देवी ने कहा—"बेटी! बिछौने पर लेटोगी?" बहूजी ने इशारे से सम्मति जताई।

तीन-चार स्त्रियाँ उसे हाथों हाथ उठाकर बिछौने पर ले गई। कपड़ा बदलवा देने पर रोगिनी की सेवा-शुश्रूषा होने लगी।

असल बात को जानने के लिए कनक का मन छटपटाने लगा। कुर्ती के भीतर छिपा हुआ वह पत्र तप्त अंगारे की भाँति उसे दग्ध करने लगा। वह धीरे धीरे बहूजी के कमरे से निकल कर अपनी कोठरी में गई। बडी सावधानी से द्वार बन्द करके खुली खिडकी के पास जाकर खडी हुई। अब पानी बरसने लगा था। खिड़की की राह से पानी के छींटे घर के भीतर आने लगे। कुछ पीछे हट कर कुर्ती के भीतर से चिट्ठी निकाल कर कनक पढने लगी। साधारण भूमिका के अनन्तर गोपाल ने अपने जीवन का संक्षिप्त इतिहास आरम्भ किया है। विवाहिता स्त्री लीलावती के साथ प्रणय का न होना, छुट्टी लेकर उसको लाने के लिए घर जाना, वहाँ जाकर स्त्री को न पाना, नवीनचन्द्र के साथ उसके भागजाने की अफ़वाह, सुन्दरपुर लौट आने पर बरखास्त हो जाना, रेलगाडी से संन्यासी की लाश का उतारा

जाना, गहरी रात में उसका बाक्स खोल कर चुपचाप रुपये और कागज का पुलिन्दा निकाल कर फिर उसे ज्यों का त्यों बन्द करना, कागज-पत्र से मृत व्यक्ति का परिचय ज्ञात होना, डायरी की बातें, उन दोनों में उम्र और सूरत शकल का सादृश्य—पीछे भवेन्द्र बन कर वासुदेवपुर आने की अभिलाषा और उसके लिए जो तैयारी की थी उसका वर्णन करके अन्त में गोपाल ने लिखा है—

"मैंने जो दुःसाहस किया था वह सम्पूर्ण रूप से सिद्ध हुआ। तुम लोगों में कोई मुझ पर नकली होने का सन्देह भी नहीं कर सका। किया भी हो तो वह आज तक मुझे मालूम नहीं हुआ। मैं निर्विघ्नतापूर्वक इस विपुल ऐश्वर्य का उपभोग कर सकता। किन्तु मेरी समझ में एक भूल हुई थी। मैं उस समय नहीं जानता था कि प्रेम क्या वस्तु है। मैं न जानता था कि प्रेम से मनुष्य के मन की गति किस तरह परिवर्तित हो जाती है। अब मालूम हुआ है। इसलिए मेरी सारी तैयारी व्यर्थ हो गई। मैंने तुम्हारा जो अपराध किया है उसके लिए सैकड़ो बार क्षमा प्रार्थना कर के मैं सदा के लिए तुमसे विदा हो चला। जब तक जीता रहूँगा, ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि तुम सुख से रहो, धर्ममार्ग में रह कर जीवन बिता सको। तुम पर जैसे मैंने सब बातें प्रकट कर दी हैं वैसे ही मुझे उचित था कि परमपूजनीया माँ जी को सब बातें बतला कर उनके पैर पकड़ क्षमा प्रार्थना करके जाता। किन्तु मैं एक बात सोच कर ऐसा नहीं करता। उनके समीप ये बातें कहने से शायद सब लोग सुन लें, और धीरे धीरे ये बातें सारे गाँव क्या सारे देश में फैल जायँ। इससे लोग तुम पर कलङ्क लगावेंगे। लोगों को क्या मालूम कि तुम कहाँ तक पवित्र हो। तुम्हारा जो अनिष्ट करने का था वह तो मैंने किया

ही—किन्तु अब अधिक अन्याय न करूँगा। मेरी बात को अपने मन से हटा दो। मेरे ऐसा अभागा संसार में दूसरा नहीं। इति।

तुम्हारा अपराधी,
गोपालचन्द्र चौबे।

"पुनश्च,

एक बात की और याद आगई, इसलिए विदा होकर भी फिर लौटना पड़ा। वह बात तुम को लिख कर मैं अपने अपराध को और भी भारी कर रहा हूँ या नहीं, सो नहीं जानता। इन कई महीनों में मुझ पर तुम्हारे मन का भाव कैसा हुआ है, मैं नहीं जानता। मैं जैसे ज्ञानशून्य होकर तुम को चाहता हूँ वैसे ही तुम भी यदि मुझे चाहती हो और यदि विधवा के पुनर्विवाह को पाप और अन्याय नहीं समझती हो तो आओ हम दोनों, नये विधान के अनुसार, शास्त्रोक्त रीति से विवाह-बन्धन में आबद्ध हो जायँ। यदि इसमें तुम्हारी सम्मति हो तो मैं कहूँगा कि हाथों से चाँद को छू लिया। यदि इस विषयमें तुम्हारा मत न हो तो सूचना मिलते ही मैं यहाँ से सदाके लिए रुख़सत हो जाऊँगा। तुम मेरे सब अपराधों को क्षमा करो, यही तुम्हारे चरणों में मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

—गोपालचन्द्र।"

बादल इस समय खूब झुक आया है। मज़े की वर्षा हो रही है। बीच बीच में मेघ गरज उठता है। पत्र पढ़ कर कनकलता कुछ देर तक चुपचाप बाहर की ओर देखती रही। इस के बाद पत्र को अपने बाक्स में बन्द करते करते उसने मन में कहा—भाग्य से चिट्ठी मेरे हाथ आ गई, इसी से रक्षा हुई। जो दूसरे के हाथ लग जाती तो अभी महल भर में बात फैल जाती। गोपाल चला जाय—लोग समझें, सन्यासी भवेन्द्र फिर संन्यास ग्रहण करके चला गया। घर-गृहस्थी में उसका जी

नहीं लगा। गोपाल ने ठीक ही कहा है— "इस बात के गुप्त रहने ही में कुशल है।"

बाक्स बन्द करके कनक फिर खिड़की के पास आ कर खड़ी हो गई और वर्षा की बहार देखने लगी। अस्पष्ट स्वर में बोली—बड़ा आश्चर्य है ! यह मनुष्य है या देवता ! इसके पैरों की धूल लेने की इच्छा होती है।

इसी समय किवाड़ पर बाहर से बारबार हाथ का धक्का देकर शशिकला ने कहा—कनक बहन ! क्या करती हो ? जल्द आओ, बहूजी को फिर मूर्च्छा आ गई।

तब कनक झट किवाड़ खोल कर बहूजी के शयन गृह की ओर दौड़ी।

ही—किन्तु अब अधिक अन्याय न करूँगा। मेरी बात को अपने मन से हटा दो। मेरे ऐसा अभागा संसार में दूसरा नहीं। इति।

तुम्हारा अपराधी,
गोपालचन्द्र चौबे।

"पुनश्च,

एक बात की और याद आगई, इसलिए विदा होकर भी फिर लौटना पड़ा। यह बात तुम को लिख कर मैं अपने अपराध को और भी भारी कर रहा हूँ या नहीं, सो नहीं जानता। इन कई महीनों में मुझ पर तुम्हारे मन का भाव कैसा हुआ है, मैं नहीं जानता। मैं जैसे ज्ञानशून्य होकर तुम को चाहता हूँ वैसे ही तुम भी यदि मुझे चाहती हो और यदि विधवा के पुनर्विवाह को पाप और अन्याय नहीं समझती हो तो आओ हम दोनों, नये विधान के अनुसार, शास्त्रोक्त रीति से विवाह-बन्धन में आबद्ध हो जायँ। यदि इसमें तुम्हारी सम्मति हो तो मैं कहूँगा कि हाथों से चाँद को छू लिया। यदि इस विषयमें तुम्हारा मत न हो तो सूचना मिलते ही मैं यहाँ से सदाके लिए रुख़सत हो जाऊँगा। तुम मेरे सब अपराधों को क्षमा करो, यही तुम्हारे चरणों में मेरी अन्तिम प्रार्थना है।

—गोपालचन्द्र।"

बादल इस समय खूब झुक आया है। मजे की वर्षा हो रही है। बीच बीच में मेघ गरज उठता है। पत्र पढ़ कर कनकलता कुछ देर तक चुपचाप बाहर की ओर देखती रही। इस के बाद पत्र को अपने बाक्स में बन्द करते करते उसने मन में कहा—भाग्य से चिट्ठी मेरे हाथ आ गई, इसी से रक्षा हुई। जो दूसरे के हाथ लग जाती तो अभी महल भर मे बात फैल जाती। गोपाल चला जाय—लोग समझें, सन्यासी भवेन्द्र फिर सन्यास ग्रहण करके चला गया। घर-गृहस्थी में उसका जी

[७]

अपने शयनागार में पलँग पर लेटा हुआ गोपाल बड़ी व्याकुलता से करवट बदल रहा था। कुछ अन्तर पर टेबल के ऊपर लैम्प जल रहा था। उसे दस बजे रात को खबर मिली कि बहूजी की अवस्था अच्छी नहीं। वैद्यराज बारबार अन्दर जाते आते हैं।

गोपाल मन में सोचने लगा कि हाय! मैंने यह क्या किया। रत्नकला का शरीर जैसा दुर्बल है उससे, ऐसी अवस्था में, वह इस विषम आघात को नहीं सह सकेगी। मैंने क्यों न यह समझा? यह समझने के लिए तो विशेष बुद्धिमत्ता की भी आवश्यकता न थी। छिः छिः, मैं कैसा निर्बोध हूँ, कैसा मूर्ख हूँ! यदि रत्न न बचे तब तो उसका हत्यारा मैं ही हुआ। मानों मैंने अपने हाथ से उसका गला घोंट दिया। इससे बढ़ कर और निर्दयता हो ही क्या सकती है! स्त्री-हत्या करना भी क्या मेरे भाग्य में लिखा था? राम राम! मेरा कैसा अभाग्य है! गोपाल की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। वह तकिये में मुँह छिपा कर रोने लगा।

कुछ देर में अपनी प्रकृति को कुछ ठिकाने ला कर सोचने लगा—जो मैंने आशा की थी वह होने की नहीं, यह स्पष्ट ही देख पड़ता है। यदि रत्न का पुनर्विवाह करने का विचार होता तो मेरे पत्र को पढ़ने से कभी उसकी यह मरणापन्न दशा न होती। नैराश्य-जनित भारी दुःख उसे होता सही—किन्तु उसके भीतर कुछ आशा की सूचना भी रहती। किन्तु यह नहीं है। होगी ही क्योंकर? यहाँ भी मेरा खयाल गलत निकला।

जो जन्म ही से हिन्दू संस्कार के अधीन है, जो हिन्दू घर में पाली गई है, हिन्दू धर्म जिसके रोम रोम में भरा है—वह दूसरा पति ग्रहण करने की बात को मन में क्यों आने देगी। जो स्त्री अपने विवाहित पति के हाथ एक बार अपना तन मन सौंप चुकी है वह अपना संकल्प तोड़ कर अन्य पुरुष की अर्धाङ्गिनी कैसे हो सकती है? कई शताब्दियों से जिस देश की कुलाङ्गनायें विधवा के लिए दूसरा पति होना महापाप समझती आई हैं उस देश के कुलीन वंश में जन्म लेकर कोई स्त्री वंशपरम्परागत उस दृढ़-मूल संस्कार को एकाएक कैसे उखाड़ सकती है? मेरा यह आशा करना ही पागलपन था। मैं पागल नहीं तो क्या हूँ? हाँ, पागल होने ही में रक्षा थी। इस दुःसह मर्मान्तिक कष्ट से छुटकारा हो जाता।

गोपाल बिछौने पर बैठ गया। वह सिर पर हाथ रक्खे आँखें मूँद कर कहने लगा—अहा! अगर मैं पागल हो जाता तो कैसा अच्छा होता। दफ़्तर की घड़ी में टन् करके एक बज गया। सुन कर गोपाल चौंक उठा। तब वह पलँग से उतर कर एक खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। वहाँ से अन्तःपुर का प्रवेशद्वार देख पड़ता है। आकाश में बादल छाये हुए हैं, उसी से चन्द्रमा का प्रकाश अच्छी तरह फैलने नहीं पाता। उस धुँधले प्रकाश में भी गोपाल ने मानों अनुभव किया कि दासियाँ और दास बीच बीच में दरवाजे से इधर उधर जा आ रहे हैं। गोपाल खड़ा होकर कुछ देर तक शून्य दृष्टि से उस दरवाजे की ओर देखता रहा। फिर थक जाने पर पलँग पर आ बैठा। गाल पर हाथ रक्खे मन ही मन कुछ सोच कर वह लेट रहा। कहने लगा, अगर नींद आ जाय तो चिंता घट जाय। किन्तु जो अभागा है उसके पास नींद क्यों आवेगी?

कुछ देर तक यों ही पड़े रहने के बाद गोपाल ने चकित हो कर सुना, उसके बन्द किवाड़ों को बाहर से कोई खटखटा रहा है। उसका कलेजा धड़क उठा। सोचा, शायद रत्नकला का अन्तिम समय उपस्थित हुआ है। कोई यही खबर देने आया है। गोपाल झट उठ बैठा। उसने पूछा—कौन है?

कुछ उत्तर न मिला। किवाड़ पर पूर्ववत् हाथ की थपथपाहट होने लगी।

तब गोपाल ने उठ कर किवाड़ खोल दिये। उसने आश्चर्य के साथ देखा कि एक विधवा-वेश-धारिणी स्त्री खड़ी है। कॉपते हुए कण्ठ स्वर से गोपाल ने पूछा—तुम कौन हो?

स्त्री ने चुपचाप कमरे के भीतर पैठ कर झट द्वार बन्द कर लिया। अब वह गोपाल की ओर मुँह करके खड़ी हुई। घूँघट को कुछ पीछे की ओर हटा कर उसने कान के पास लटकती हुई लट को सँभाला। गोपाल ने देखा स्त्री युवती है, उम्र बीस वर्ष के लगभग होगी, चेहरा बड़ा ही खूबसूरत है। केवल आँखें विषाद से भरी हुई मालूम होती है।

गोपाल ने फिर पूछा—तुम—आप कौन हैं?

स्त्री ने कहा—मैं कनकलता हूँ।

गोपाल इस नाम को जानता था। उसने दूर से दो एक बार उसे देखा भी था। उसने कहा—अच्छा पहचाना। क्या खबर है? बहूजी की कैसी हालत है?

कनक ने गम्भीर भाव से कहा—बिलकुल खराब।

गोपाल का जी सूख गया। वह बोला—तो क्या एकदम खराब!—आगे उसके मुँह से बात नहीं निकली। वह टकटकी बाँध कर कनक के मुँह की ओर देखने लगा।

कनक ने टूटे स्वर में कहा—वैद्यराज ने जवाब दे दिया है। क्या मालूम रात कटेगी या नहीं।

गोपाल सिर पर हाथ रखकर पलँग पर बैठ रहा। कनक ने बत्ती तेज कर दी। कुरसी को पलँग के पास खींचकर वह रोशनी की ओर मुँह करके बैठ गई। एक मिनट तक चुप रह कर अत्यन्त मधुर और कोमल स्वर में बोली—अब सोच करने से क्या होगा? जिसके भाग्य में जो लिखा है, वह तो होगा ही। उसे क्या कोई मेट सकता है? रोइए मत, छि: आप तो समझदार हैं।

गोपाल ने धीरे धीरे ऊपर सिर उठा कर पूछा—क्या बहूजी ने आपको मेरे पास भेजा है?

"नहीं। वे क्या होश में हैं?"

"होश नहीं है। कब से बेहोश है?"

"तभी से जब आप चिट्ठी दे आये—उसके बाद तो एक बार कुछ होश हो आया था। नहीं तो बराबर अचेत अवस्था में ही पड़ी है।"

गोपाल सोचने लगा—चिट्ठी की बात यह जानती है। यह बात क्या इतनी देर तक छिपी रह सकती है। निःसन्देह घर के सभी लोग जान चुके हैं, किन्तु अभी तक कोई बखेड़ा क्यों नहीं खड़ा हुआ है? शायद अभी सब लोग बहूजी की चिन्ता में हैं। उसके प्राणों पर संकट आ पड़ा है, इसी से किसी ने मेरी ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया। किन्तु यहाँ कनकलता किस-लिए आई है?

गोपाल को अतिशय चिन्तित देखकर कनक ने सान्त्वना के स्वर में कहा—आप बहूजी को जो चिट्ठी दे आये थे—समझा आपने गोपाल बाबू—वह चिट्ठी भाग्य से पहले मेरे ही हाथ में पड़ी। मैंने उसे छिपा रक्खा है।

कनक ने तनिक घूँघट बढा कर वीणा को लजाने वाले कोमल स्वर में कहा—आपको तो—विधवा-विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।

गोपाल ने दिल्लगी के तौर पर कहा—तुम्हारे ही साथ ?

' क्या हर्ज है ? मैं भी तो ब्राह्मण की लडकी हूँ—मेरे पिता भी खासे कुलीन थे।"

गोपाल ने हँस कर कहा—उसी कुल को तुम उज्ज्वल करना चाहती हो ?

इस व्यङ्ग पर कुछ विचार न करके कनक बोली—आप जो भवेन्द्र बन कर आये हैं सो भवेन्द्र ही बने रहेंगे। भला हम लोगों का गुप्त वृत्तान्त कौन जानेगा ? हम आप दोनों राजसी ठाट से चैन करेंगे।

गोपाल मन में कहने लगा, यह मानवी है या राक्षसी ? ओफ्! कैसा अर्थ लोभ है ! मेरी चिट्ठी पढने के बाद अवश्य यह आशा इसको न थी कि मैं इसको किसी भी समय पत्नी-भाव से ग्रहण कर प्यार करूँगा, फिर भी केवल सम्पत्ति के लोभ से धर्म को जलाञ्जलि देने के लिए यह तैयार हो गई है। ओफ, कैसी शैतान है !

गोपाल को चुप देखकर कनक ने कहा—कुछ उत्तर दीजिए। दासी को चरणों में स्थान दीजिएगा न ?

गोपाल ने दाँत पीस कर कठोर स्वर में कहा—जी चाहता है कि तुम को चित करके तुम्हारे गले पर दोनों पैर रक्खूँ और सदा के लिए तुम्हें चरणों में स्थान दे दूँ। एक स्त्री हत्या तो कर ही डाली है, एक और सही। जैसे सत्तर तैसे अस्सी।

कनक उठ खडी हुई। क्षण ही भर में उसका सब भाव बदल गया। उसने कमनीय कण्ठ से कहा—"गोपाल बाबू, मेरा

भी जी यही चाहता है । यदि आप ऐसा करें, यदि इन दोनों पैरों से मेरा गला दबा कर मेरे इस कलङ्कित जीवन को समाप्त कर दें, तो इस यम-यातना से मेरा उद्धार हो जाय । किन्तु यह सब कविताई है—यह होने का नहीं। दीजिए, मैं आपके चरणों की रज लूँगी। मेरी गुस्ताखी माफ कीजिएगा।" यह कह कर कनकलता ने दोनों हाथ बढ़ा कर झट गोपाल के पैर पकड़ लिये।

कनक का यह अभिनव आचरण देखकर गोपाल विस्मित हो गया। उसे विस्मयापन्न होने का अवसर न देकर कनकलता कहने लगी—जब से आपकी वह चिट्ठी पढ़ी है तभी से आपके चरणों की रज लेने के लिए मैं छटपटा रही थी। मेरी यह धारणा ही न थी कि मनुष्य ऐसा सच्चा, ऐसा त्यागशील हो सकता है। मैं आपको प्रेम दिखाने नहीं आई, मैं तो भक्ति दिखलाने ही के लिए आई थी। किन्तु मेरे हृदय की मलिनता कहाँ जायगी? उसी कारण कुछ दुष्ट बुद्धि आ गई। सोचा, एक अभिनय करूँ। हाँ, एक बात कहना मैं भूल गई थी। मैं निष्ठावती हिन्दू विधवा ब्राह्मणी नहीं। मैं तो एक अभिनेत्री हूँ। मुँह पर रङ्ग चढ़ा कर कलकत्ते के पेशेदार थियेटर के स्टेज पर खड़ी हो कृत्रिम प्रेम करते करते उसका कुछ प्रतिबिम्ब मेरे चेहरे पर आ गया है। मेरा असली परिचय यहाँ कोई नहीं जानता। आज आप ही ने जाना है। जैसे आप नकली रूप धारण करके आये हैं वैसे ही मैं भी आई हूँ।

गोपाल—आप क्यों भेष बदल कर आई हैं?

"मेरे भाग्य का दोष है। गोपाल बाबू! इसके भीतर बहुत बातें हैं। अवसर पाऊँगी तो किसी समय कहूँगी। भाग्य का दोष क्यों कहूँ, गुण ही कहना चाहिए। यहाँ न

जान सकती थी कि आप के सदृश त्यागी पुरुष भी पृथ्वी में हैं। मैं यहाँ अब अधिक दिन नहीं रहूँगी। किन्तु जितने दिन हूँ—यदि आपका कोई उपकार कर सकूँगी तो मैं करूँगी। अब जाती हूँ, प्रणाम।"

गोपाल ने कृतज्ञता भरी दृष्टि से कनक की ओर देख कर कहा—जरा बैठो, तुम से कुछ बहूजी की बात पूछनी है।

कनकलता फिर बैठ गई।

गोपाल ने कहा—चिट्ठी आपके हाथ कैसे लगी?

जिस तरह चिट्ठी कनक के हाथ में पड़ी थी उसका वर्णन उसने कर दिया।

गोपाल ने पूछा—इसके बाद दो एक बार जब बहूजी को होश हुआ तब आप उनके पास थीं?

"जी हाँ।"

"तब उन्होंने क्या कहा?"

"कोई खास बात नहीं कही।"

गोपाल ने सकोच के साथ पूछा—मेरे ऊपर उनकी नाराजगी क्या बहुत मालूम हुई?

कनक ने गम्भीरतापूर्वक कहा—गोपाल बाबू, यह पूछना वृथा है। होश होने पर उन्होंने चिट्ठी की खोज तक नहीं की।

गोपाल ने ठण्डी साँस ली।

कनक कहने लगी—अब यह सब सोच कर क्या होगा। आपने जो अन्त तक उनकी धर्म रक्षा की है, इसके लिए बहूजी अवश्य ही आपकी विशेष रूप से कृतज्ञ हैं। अब माँ बाप के पुण्य से यदि वे बच जायँ तो बड़ी खुशी है। हाँ, आप क्या करेंगे?

गोपाल—मैं यहाँ से चला जाऊँगा। बहूजी के कुछ आरोग्य होने का सवाद पाते ही चल दूँगा।

"कहाँ जाइएगा ?"

"कुछ निश्चय नहीं, जहाँ भाग्य ले जाय।"

कनक ने कहा—गोपाल बाबू, आप मेरी एक बात मानिएगा ?

"क्या ?"

"जाने के पहले मुझसे एक बार भेंट कर लीजिएगा।"

"क्यों ?"

"एक खास काम है।"

"क्या ?"

"यह उसी समय कहूँगी। अभी इतना ही कहती हूँ कि यदि मुझसे भेंट किये बिना चले जाइएगा तो समझ लीजिए कि आप एक निर्दोष व्यक्ति का सर्वनाश कर डालेंगे। मुझे वचन दीजिए कि मुझ से बिना भेंट किये आप नहीं जायँगे।"

गोपाल ने धीरे धीरे कहा—मैं कुछ भी नहीं जानता कि इसके भीतर कौन सा गुप्त रहस्य है। अच्छा, जब आप इस तरह कहती हैं तब यही होगा।

कनक उठी। बोली—जाती हूँ, प्रणाम।

गोपाल भी उठ खड़ा हुआ। कनक के पीछे पीछे द्वार तक जाकर कहा—अभी जाकर बहूजी की जैसी अवस्था देखो उसकी सूचना रामा के द्वारा मुझे देना।

"अच्छा, कहला भेजूँगी।" कह कर कनक चली गई।

कुछ क्षण के बाद रामा ने आकर खबर दी—दो बजे रात को बहूजी जागी थीं। बातचीत की है, दूध पिया है। अब फिर सो गई हैं।

यह खबर सुन कर गोपाल का मन कुछ स्थिर हुआ। कनक के साथ जो बातचीत हुई थी उसको सोचते सोचते वह निद्रित हो गया। तब नाम मात्र को रात थी।

जान सकती थी कि आप के सदृश त्यागी पुरुष भी पृथ्वी में है। मैं यहाँ अब अधिक दिन नहीं रहूँगी। किन्तु जितने दिन हूँ—यदि आपका कोई उपकार कर सकूँगी तो मैं करूँगी। अब जाती हूँ, प्रणाम।"

गोपाल ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से कनक की ओर देख कर कहा—ज़रा बैठो, तुम से कुछ बहूजी की बात पूछनी है।

कनकलता फिर बैठ गई।

गोपाल ने कहा—चिट्ठी आपके हाथ कैसे लगी?

जिस तरह चिट्ठी कनक के हाथ में पड़ी थी उसका वर्णन उसने कर दिया।

गोपाल ने पूछा—इसके बाद दो एक बार, जब बहूजी को होश हुआ तब आप उनके पास थीं?

"जी हाँ।"

"तब उन्होंने क्या कहा?"

"कोई ख़ास बात नहीं कही।"

गोपाल ने सकोच के साथ पूछा—मेरे ऊपर उनकी नाराजगी क्या बहुत मालूम हुई?

कनक ने गम्भीरतापूर्वक कहा—गोपाल बाबू, यह पूछना वृथा है। होश होने पर उन्होंने चिट्ठी की खोज तक नहीं की।

गोपाल ने ठण्डी साँस ली।

कनक कहने लगी—अब यह सब सोच कर क्या होगा। आपने जो अन्त तक उनकी धर्म रक्षा की है, इसके लिए बहूजी अवश्य ही आपकी विशेष रूप से कृतज्ञ हैं। अब माँ बाप के पुण्य से यदि वे बच जायँ तो बड़ी खुशी है। हाँ, आप क्या करेंगे?

गोपाल—मैं यहाँ से चला जाऊँगा। बहूजी के कुछ आरोग्य होने का संवाद पाते ही चल दूँगा।

"कहाँ जाइएगा ?"

"कुछ निश्चय नहीं, जहाँ भाग्य ले जाय।"

कनक ने कहा—गोपाल बाबू, आप मेरी एक बात मानिएगा ?

"क्या ?"

"जाने के पहले मुझसे एक बार भेंट कर लीजिएगा।"

"क्यों ?"

"एक खास काम है।"

"क्या ?"

"यह उसी समय कहूँगी। अभी इतना ही कहती हूँ कि यदि से भेंट किये बिना चले जाइएगा तो समझ लीजिए कि एक निर्दोष व्यक्ति का सर्वनाश कर डालेंगे। मुझे वचन िए कि मुझ से बिना भेंट किये आप नहीं जायेंगे।"

गोपाल ने धीरे धीरे कहा—मैं कुछ भी नहीं जानता कि के भीतर कौन सा गुप्त रहस्य है। अच्छा, जब आप इस कहती हैं तब यही होगा।

कनक उठी। बोली—जाती हूँ, प्रणाम।

गोपाल भी उठ खड़ा हुआ। कनक के पीछे पीछे द्वार तक र कहा—अभी जाकर बहूजी की जैसी अवस्था देखो उसकी ना रामा के द्वारा मुझे देना।

"अच्छा, कहला भेजूँगी।" कह कर कनक चली गई।

कुछ क्षण के बाद रामा ने आकर खबर दी—दो बजे रात को ी जागी थीं। बातचीत की है, दूध पिया है। अब फिर गई हैं।

यह खबर सुन कर गोपाल का मन कुछ स्थिर हुआ। कनक ाथ जो बातचीत हुई थी उसको सोचते सोचते ेत हो गया। तब नाम रात थी।

भोर होने पर गोपाल की नींद टूटी। तब वह बिछौने से उठ कर, छत के ऊपर, टहलने लगा। कुछ देर में मुँह हाथ धो कर जब वह बैठक में आया तब सुना कि बहूजी जागी हैं, और अच्छी हैं। औषधि खाई है। वैद्यराज ने कहा है, अब कोई डर नहीं।

थोड़ी देर में एक बाँदी ने आकर कहा—"आप को सरकार बुलाती हैं।" गोपाल ने पूछा—बहूजी क्या करती हैं ?

"उनके पास शशिकला बैठी है, उसी के साथ बातचीत कर रही हैं।"

शशिकला नाम की एक अनाथ ब्राह्मणी अन्तःपुर के आश्रय में है। यह गोपाल जानता था। किन्तु कभी उसे आँख से नहीं देखा। वह यह भी जानता था कि शशिकला बहूजी की प्रिय-सङ्गिनी है।

गोपाल के अन्दर आते ही कमला ने पूछा—बेटा भवेन्द्र, तुम्हारा चेहरा ऐसा उदास क्यों है ? मालूम होता है, तुम्हें रात को नींद नहीं आई।

गोपाल ने कुछ उत्तर नहीं दिया, नीची निगाह किये खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

कमला ने कहा—भवेन्द्र, रोओ मत। तुम्हारी आँखों में आँसू देखने से मेरी छाती फटती है। आधी रात से बहू को मूर्च्छा नहीं आई। तब से वह अच्छी है। वैद्यराज कह गये हैं "अब कोई चिन्ता नहीं।" मुझे मालूम नहीं, कल रात में तुमने क्या खाया और क्या

नहीं। जाओ स्नान कर आओ, मैं तुम्हारे नित्य-कृत्य का प्रबन्ध कर रखती हूँ। सन्ध्या पूजा करके जलपान कर लो। क्या अभी बहू को जाकर देखोगे?

गोपाल ने कुछ स्पष्ट उत्तर न देकर सिर हिला कर अपना भाव सूचित किया कि "नहीं।"

स्नान और नित्य-कृत्य के अनन्तर जलपान करके गोपाल जब बाहर आया तब नौ बजने में देर न थी। कमरे के पास आकर देखा, बरामदे की बेञ्च पर भूपेन्द्रनाथ बैठा है। साहबाना पोशाक पहने है। सिर पर हेट है। उसकी बाईसिकिल दालान के नीचे रक्खी है। गोपाल को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। सिर से टोप उतार कर कहा—नमस्कार।

गोपाल—नमस्कार। आप एकाएक कहाँ से आ पहुँचे?

"कलकत्ते से आ रहा हूँ। आप से एक विशेष कार्य्य है।"

"कार्य्य है? अच्छा—स्नान पूजा कीजिए, कुछ खाइए। इसके बाद काम की बात होगी।"

भूपेन्द्र ने कहा—जी नहीं। बहुत जरूरी काम है। मुझे तीन बजे की गाड़ी से लौट जाना पड़ेगा। अभी मामला तय कर लिया जाय।

भूपेन्द्र का ऐसा तीव्र भाव देख कर गोपाल मन ही मन कुछ नाराज हुआ। सोचा, बहन तो थियेटर की अभिनेत्री है और आप आये हैं नवाब बन कर। उससे प्रकट कहा—"अच्छा, आप कुछ देर तक ठहरिए, फुरसत होने पर आप को बुला लूँगा।" यह कह कर गोपाल ऊपर के कमरे में चला गया।

भूपेन्द्र ने भी मन में कहा—ये तो रेल के किरानी, पचीस रुपया मासिक वेतन पाते थे। यहाँ आकर नवाब बन गये हैं। अच्छा, नवाबी शीघ्र ही निकाले देता हूँ।

भूपेन्द्र वहाँ बैठ कर इन्तजार करने लगा और रह रह कर जेब से घड़ी निकाल कर देखने लगा। आध घण्टा हो गया, बाबू ने नहीं बुलाया।

तब भूपेन्द्र मन में कहने लगा—डैम्, नौनसेन्स। मैं किस लिए यहाँ बैठ कर उम्मीदवारी करूँ? उम्मीदवार मैं हूँ या यह पाजी? मैं स्वयं जाता हूँ। मुझे डर क्या है? बस, बूट खट-खटाता हुआ सीढ़ी की राह वह सीधा ऊपर जा धमका।

गोपाल अपने शयन-गृह की खुली खिड़की के पास एक आराम-कुरसी पर बैठा आकाश पाताल की बातें सोच रहा था। एकाएक जूते का शब्द सुन चौंक कर द्वार की ओर देखने लगा।

"क्या आप बड़ी चिन्ता में पड़ गये हैं?" व्यङ्ग के साथ यह कह कर भूपेन्द्र एक कुरसी पर बैठ गया।

रोष से भौंहें सिकोड़ कर गोपाल ने कहा—आप क्या चाहते हैं?

पाकेट से रूमाल निकाल कर मुँह पर घुमाते घुमाते भूपेन्द्र ने कहा—मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है।

गोपाल—मुझसे क्यों कहते हो? मैं रुपया कर्ज देने का व्यवहार नहीं करता। अगर आप की बहन के मासिक वेतन में कुछ बाकी हो तो आप अपनी बहन से जा कर कहें। दीवानजी नहीं हैं। नायब दीवान हैं, वे हिसाब करके दे देंगे।

भूपेन्द्र ने मन में कहा—"नवाब"। प्रकाश्य कहा—जी नहीं, बहन के वेतन के हिसाब में नहीं। मैं आप ही से कुछ पाने की आशा रखता हूँ। बहुत नहीं, एक लाख रुपया नकद और हर महीने बङ्गाल बैङ्क से हजार रुपये का एक चेक। इतना ही बहुत है।

आश्चर्य-भरी दृष्टि से गोपाल ने भूपेन्द्र के मुँह की ओर देखा, और कहा—कुछ नशा-वशा भी करते हो?

"जी हाँ, करता था। इस समय रुपये की कमी से उतना नहीं

करता। एक बोतल अङ्गूरी शराब रोज जलपान में उडती थी। किन्तु आप के पास नशा करके नहीं आया हूँ। सीधे-सादे तौर से आया हूँ। झटपट रुपया निकालिए। अगर लाख रुपये का नोट मौजूद हो तो उस पर दस्तखत करके दे दीजिए या बैङ्क के नाम चेक काट दीजिए, मैं कलकत्ते जाकर भुना लूँगा।"

गोपाल—मैं आप को रुपये क्यों दूँ?

भूपेन्द्र ने हँस कर कहा—"मैं जो आप का भाई हूँ।" फिर स्वर को कुछ नरम करके बोला—मौसेरा भाई अर्थात् चोर चोर मौसेरे भाई। इतनी बडी सम्पत्ति आप अकेले ही भोगेंगे,—मौसेरे भाई को कुछ न देंगे? इस धन में से कुछ हिस्सा मुझे भी तो मिलना चाहिए। सारी सम्पत्ति आप स्वच्छन्द होकर भोगिए, मैं एक लाख नकद और हजार रुपया मासिक पाने ही से सन्तुष्ट रहूँगा। अब यह 'खग-भाषा' समझ में आई?

गोपाल—खग-भाषा क्या?

भूपेन्द्र—"खग जाने खग ही की भाषा" नहीं जानते? बात यह है कि आप भवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती नहीं—गोपालचन्द्र चौबे हैं। सुन्दरपुर स्टेशन में गट्ट गट्ट गरगट्ट करके टेलीग्राफ देते थे, खट् खट कर टिकट बाँटते थे, गाडी आने पर जूता चटकाते हुए ट्रेन 'पास' करने के लिए प्लैट-फार्म पर दौडते थे। अब समझ गये न? या और टीका टिप्पणी की आवश्यकता है?

गोपाल ने शान्तस्वर में कहा—आपको यह सब कैसे मालूम हुआ?

भूपेन्द्र ने सीना तान करके कहा—बहुत परिश्रम करने पर, बहुत रुपया खर्च करने पर।

गोपाल ने कहा—तो आपका परिश्रम करना और रुपये फूँकना सब व्यर्थ हुआ।

"क्यों ?"

"क्योंकि आपको रुपये नहीं मिलेंगे।"

भवेन्द्र कुछ दब कर बोला—रुपये नहीं मिलेंगे ?

"जी नहीं।"

भूपेन्द्र थोडी देर सोचता रहा, फिर बोला—गोपाल बाबू ! आपने शायद समझा है कि यह सब गीदड-भबकी है, सो नहीं है महाशय। मालूम होता है, आप अपने को इतनी बडी सम्पत्ति का स्वामी समझते हैं और सोचते हैं—'यह कहाँ का कौन साधारण आदमी है, यह मेरा कर ही क्या सकता है ? इसे साक्षी सबूत कहाँ मिलेगा ?' साहब ! मैं कलकत्ते का आदमी हूँ। कच्चा काम नहीं करता। साक्षी सबूत सब मौजूद है। मैं आपके मदनपुर गाँव में गया था, फिर बसन्तपुर और सुन्दरपुर गया था—और आप जहाँ कभी भी नहीं गये उस तिनतारिया मठ तक को मैं देख आया हूँ। सुन्दरपुर के आप के सिगनलमैन महावीरसिंह, पानी-पाँडे, और दो खलासी छुट्टी लेकर आये हैं। कलकत्ते में मेरे घर बैठ कर पूरी-तरकारी, दूध दही दोनों समय खाते हैं। वे लोग सिनाख्त करेंगे कि आप उन लोगों के पूर्व-परिचित सुन्दरपुर स्टेशन के छोटे बाबू गोपालचन्द्र चौबे हैं। तिनतारिया मठ के चार सन्यासियों को भी मैं लाया हूँ। गोस्वामी लक्ष्मण गिरि, भैरों गिरि, महादेव गिरि और बालक पुरी उनके नाम हैं। उन लोगों के गाँजे के धुवें की गन्ध से मुझे मकान में रहना कठिन हो गया है। वे लोग आप को देख कर कहेंगे कि आप उनके भूतपूर्व महन्त भजनानन्द गिरि नहीं हैं। गवाहों को रुपया देकर आप फोड लेंगे, सो वह रास्ता भी मैंने बन्द कर रक्खा है। मेरे घर के फाटक पर चार दरवान आठों पहर कडा पहरा देते हैं। अब आप सब सुन चुके न ? रुपया

झटपट निका लिए, नहीं तो साफ साफ कह दीजिए। मैं कृष्ण-नगर जाकरपुलिस-इन्सपेक्टर को कच्चा चिट्ठा सुना दूँगा। यहाँ पिनल कोड है ? न हो तो दीवानजी के सरिश्ते से मँगा कर ४७६ धारा देख लीजिए, उसमें क्या लिखा है।

गोपाल ने लापरवाही के साथ कहा—मुझे मालूम है।

'मालूम है न ? तीन वर्ष सपरिश्रम बड़े घर में निवास ! अब भी आपकी राय कुछ बदली है या नहीं ?"

गोपाल ने जम्हाई लेकर कहा—जी नहीं। आप को रुपया नही मिलेगा। आप मुझे झूठा भय दिखा रहे हैं। मैंने कल ही बहूजी पर सब बातें प्रकट कर दी हैं।

यह सुन कर भूपेन्द्र मानों आकाश से गिरा। बोला—अयँ ! सच कहिए, सब बातें जाहिर कर दी हैं ?

"जी हाँ। आप की बहन हो या चाहे जो हो, उस कनकलता से पूछ कर ही आप जान सकेंगे।" यह कह कर गोपाल ने नौकर को पुकारा। नौकर के आने पर कहा—बाबू को नीचे लेजा, नहाने धोने का बन्दोबस्त कर दे। और यदि ये अपनी बहन से भेट करना चाहें तो किसी दासी को पुकार कर उसके द्वारा बहूजी के पास इत्तिला भेजवा दे।

---

[९]

बरामदे में आकर भूपेन्द्र धम से बेञ्च के ऊपर बैठ गया। नौकर ने तेल लाकर कहा—बाबू, कपड़े हैं या किसी मुशी से धोती माँग लाऊँ?

भूपेन्द्र—धोती नहीं चाहिए।

नौकर—तो स्नान कैसे कीजिएगा?

"स्नान नहीं करूँगा।"

भूपेन्द्र के मुँह का भाव देख कर नौकर कुछ चकराया और डरा भी। जरा चुप रह कर फिर बोला—तो जलपान के लिए ले आऊँ?

भूपेन्द्र ने सिर हिला कर कहा—नहीं।

नौकर ने समझा—शायद बाबू ने इन्हें खूब फटकारा है। उसी रञ्ज से शायद ये स्नान या जलपान कुछ करना नहीं चाहते। दो एक बार इधर उधर देख कर उसने कहा—क्या अपनी बहन से भेंट करोगे? इत्तिला भेजवा दूँ?

"भेजवा दो।" कह कर भूपेन्द्र दूसरी ओर देखने लगा। नौकर चला गया।

अब भूपेन्द्र ने अपने कोट के भीतरी पाकेट से एक बोतल निकाली। इसमें ब्रान्डी थी। कार्क घुमा कर बोतल का मुँह खोला और तीन-चार घूँट पी गया। बोतल का मुँह बन्द करके फिर पाकेट में रख ली और गाल पर हाथ रख कर सोचने लगा।

वह बड़ी आशा करके आया था। उसकी बहुत दिनों की आशा आज मिट्टी में मिल गई। एक तो नैराश्य का दुःख, उस

पर खाली पेट में ब्राण्डी का प्रभाव—इस कारण वह पागल सा हो उठा। गोपाल ने किस अभिप्राय से बहूजी के निकट सब बातें जाहिर कर दीं, भूपेन्द्र इसका कुछ भी कारण न समझ सका और इस विषय में सोचने की शक्ति भी उसके मस्तिष्क में अभी नहीं। उसके नाक-कान से मानो आग की ज्वाला निकलने लगी। किन्तु हृदय बर्फ से भी ठंडा मालूम होने लगा, इसलिए उसने बोतल निकाल कर फिर दो घूँट पिये।

थोड़ी देर में उसकी इच्छा होने लगी कि कचहरी के अहाते में खूब दौड़ लगाऊँ। किन्तु बुद्धि भी तुरन्त उत्पन्न हुई। ऐसा करने से लोग समझेंगे कि इसने नशा किया है। भीतर नहीं जाने देंगे। कनक से भेंट न होगी।

इस अवस्था में पन्द्रह बीस मिनट रहने के बाद नौकर ने अन्दर से आकर कहा—बाबू, चलिए।

भूपेन्द्र उठ कर तलमलाता हुआ नौकर के साथ साथ चला।

अन्तःपुर की पूर्व-परिचित कोठरी के भीतर जा करके भूपेन्द्र ने देखा, कनकलता उसके इन्तजार में बैठी है। भूपेन्द्र कुरसी पर बैठ गया और ऊपर ताक कर बोला—कहो कनक, क्या स-च-र है?

कनक ने डर कर पूछा—आप ऐसे क्यों हो गये हैं? आपको क्या हुआ है?

भूपेन्द्र ने कहा—तुम जानती नहीं?

"नहीं।"

"तो क्या बिलकुल झूठी बात है? मेरे साथ धोखेबाजी की?"

"किसने?"

"और कौन? तुम्हारे इसी गोपाल ने?"

"उनसे भेंट हुई है? उन्होंने क्या कहा है?"

"मैंने यहाँ आकर उससे रुपया माँगा और कहा कि नहीं दोगे तो मैं भण्डाफोड़ कर दूँगा। उसने कहा—'मैंने कल ही बहूजी के निकट सब बातें स्वयं प्रकट कर दी है।'—यह बात सच है या झूठ ?"

कनक ने कहा—बिलकुल सच।

भूपेन्द्र ने फिर बोतल निकाली और सुरा का सेवन कर कहा—घर के और सब लोग सुन कर क्या कहते हैं ?

कनक—घर में और किसी को इसकी खबर नहीं। सिर्फ बहूजी जानती हैं। किन्तु आप इस समय ख़ाली पेट ब्राण्डी क्यों पीते हैं ?

भूपेन्द्र—ब्राण्डी आनन्द की माता है। ज़रा सी तुम भी पी लो।

कनक—नहीं, नहीं, आप भी न पियें। भले घर में ऐसा करना ठीक नहीं।

"ओफ्" कह कर भूपेन्द्र ने आँखें बन्द कर लीं। दो मिनट के बाद वह अपने सिर के ऊपर बार बार शीघ्रता से हाथ फेरते फेरते अपने आप खिलखिला कर हँसने लगा।

उसकी यह हालत देख कर कनक ने जरा तुर्शी के साथ कहा—यह क्या करते हो जी? घरके लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

भूपेन्द्र आँखें मूँद कर कहने लगा—पहले मेरी ही बुद्धि भ्रष्ट हुई थी—(ठहाके की हँसी)। देखो, गोपाल ने जब पहले मुझ से यह बात कही—हीं ही ही। तब—ही ही—मैं समझ गया—हीं ही ही। वह एकाएक वैराग्य धारण कर—ही ही ही—सब छोड़ छाड़ कर जाना चाहता है। ही ही ही—तुम्हारी बात सुन कर अब मैंने समझा—यह सब उसकी चालाकी है। ही ही ही—खेल तो उसने अच्छा खेला है। ही ही ही।



पेन्द्र—माधवी आनन्द की माता

कनक ने पूछा—कैसा खेल ? आप बात बात में इतना हँसते क्यों हैं ?

"अच्छा, एक बार और भर पेट हँस लेने दो फिर न हँसूँगा—ही हो ही। कैसा खेल, तुम जानती नहीं हो ? अब तक तुम्हारी समझ में नहीं आया। स्त्री की बुद्धि ही कितनी ! (फिर हँसी) उसने क्या सोचा है सो तुमने नहीं समझा ? सोचा है—एक न एक दिन जब मेरी यह चालाकी पकड़ी जायगी तब क्या होगा ? देखा, कि बहूजी अभी उसके प्रेम में डूबी हुई हैं, अब जायँगी कहाँ। अब यदि बहूजी सुनेंगी कि वह भवेन्द्र नहीं है तो भी बहूजी उसे छोड़ नहीं सकेंगी। कनक ! यही निश्चय करके गोपाल ने बहूजी से सब बात कह डाली है। अब उसके साथ विधवा-विवाह हो, चाहे जो हो। इस बात का गुप्त रहना बहुत अच्छा है। प्रकट होना ठीक नहीं। ओ ! क्या बुद्धि है ! कैसी प्रखर बुद्धि है !" कह कर भूपेन्द्र धीरे धीरे सिर हिलाने लगा। क्षण भर यों ही करके बोला—"अच्छा, अच्छा, मेरे हाथ से जाओगे कहाँ ? बहूजी को मिला लिया है। बात जाहिर होने पर भी अब जेल जाने या अर्द्ध-चन्द्र पाने का भय नहीं रहा। किन्तु कलङ्क ? कलङ्क कैसे मिटेगा ? लोग बहूजी को क्या कहेंगे ? कनक, मैं फिर गोपाल के पास जाता हूँ। जाकर उससे कहता हूँ। तु—तुम्हारा सब म—मतलब मैं स—समझ गया। रु—रुपया देते हो तो दे दो—नहीं तो लोगों में—सब—सब, बात—बात प्रकट कर दूँगा।' विधवा विवाह करे चाहे जो करे, 'बङ्गवासी' में आ—आक्षेप पूर्ण ऐसे ऐसे कुटिल ले—लेख लिखना आरम्भ करूँगा कि बाप का नाम लेकर बच्चा जी को दे—देश से भागना पड़े। सहज ही नहीं छोड़ूँगा, बाबू, मैं सहज नहीं छोड़ूँगा। किन्तु कनक,—तु—तुम किसी काम की नहीं। यही

बहूजी वि—विधवा विवाह के लिए राजी हुई—मेरे लिए तो तू रा—राजी नहीं करा सकी।" कह कर भूपेन्द्र ने आँखें बन्द करके सिर हिला हिला कर गाना आरम्भ किया—

"जीओ जीओ ईश्वरचन्द्र, दयासिन्धु कहलाने वाले।
ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्यगणों में, विधवा ब्याह चलाने वाले॥"

भूपेन्द्र की दशा देख कर कनक डर गई। वह उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोली—भूपेन्द्र बाबू, ओ भूपेन्द्र बाबू!

भूपेन्द्र जाग उठने की तरह आँखें खोल कर बोला—क्या है?

"आप ऐसा क्यों करते हैं?"

"क्यों—क्या किया है?"

"आपको बेढब नशा चढ गया है। अट सट बक रहे हो।"

"क्या अल्ल बल्ल बक रहा हूँ? ओफ।"

कनक ने कहा—आप वह आशा त्याग दें। गोपाल बाबू के पास अब न जायँ। रुपया पाने की अब कोई उम्मीद नहीं।

"कोई—उम्मीद—नहीं?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?"

"इसके कई कारण हैं—अभी सुन कर भी आप नहीं समझ सकेंगे। आपका चित्त स्थिर नहीं है। अभी बाहर जाइए, स्नान करके भोजन कीजिए। उस वक्त फिर बातचीत होगी।"

भूपेन्द्र उठ खडा हुआ। उसकी आँखें अंगारे की तरह लाल लाल हो रही हैं। पूछा—पाने की—अब—कोई आशा नहीं?

कनक डर से जरा हट कर बोली—नहीं।

भूपेन्द्र ने पागल की भाँति एकाएक उछल कर उसे ढकेल दिया। वह धरती पर गिर पडी। भूपेन्द्र ने अभिनेता के ढङ्ग पर कहा—"पापिनी! यही तेरे योग्य दण्ड है।" अब भूपेन्द्र वहाँ से

तलमलाता हुआ बाहर निकला। सीढ़ी से उतर कर आँगन में खड़ा हो दोनों हाथों से ताली पीटने का संकेत करके घरघराते हुए स्वर से विकट चीत्कार करके बोला—"तेरी दुम—तेरी दुम—भाइयो! जो जहाँ हो सुनो। यह भवेन्द्र नहीं—भवेन्द्र नहीं—भवेन्द्र नहीं। यह गोपाल—यह गोपालचन्द्र—स्टेशन का छोटा बाबू है। तुम लोगों की यह शशिकला—यह शशिकला इस गोपाल की ब र् र् री है।" यह कह कर भूपेन्द्र झूमता हुआ हवेली से बाहर गया। वह यों ही झूमता झामता कचहरी के मैदान से बाहर निकल कर सड़क पर पहुँच गया।

उसकी यह अवस्था देख सड़क पर आने जानेवालों ने भयभीत होकर रास्ता छोड़ दिया। टोले-महल्ले के बालक निर्भीक भाव से ताली पीट कर कहने लगे—"देखो, देखो, पगले साहब को देखो।" किन्तु भूपेन्द्र किसी ओर देखे बिना पैर घसीटता रास्ते की धूल उड़ाता हुआ स्टेशन की ओर चला।

बाइसिकल की बात उसे बिलकुल भूल गई।

आज सवेरे से वहूजी अच्छी हैं। पथ्यपूर्वक औषध का सेवन किया है। किन्तु वह हृदय के भीतर जिस दु:सह यातना और लज्जा का अनुभव कर रही थीं उसे, घुणाक्षर न्याय से भी, किसी पर प्रकट नहीं किया। कमला देवी आदि की धारणा थी कि कमजोरी के कारण वह एकाएक इस प्रकार मूर्च्छित हुई है। कनक आज बीच बीच में वहूजी को कई दफे देख आई थी, किन्तु उसने अपनी तरफ से उस विषय की चर्चा नहीं की। वहूजी ने भी उससे उस विषय में कुछ नहीं कहा। कनक ने देखा, वहूजी को रत्ती भर भी उत्कण्ठा या कौतूहल नहीं कि चिट्ठी क्या हुई और किसके हाथ लगी। मानों चिट्ठी की बात वह कुछ जानती ही नहीं।

कनकलता जब उस कोठरी में भूपेन्द्र से बातचीत कर रही थी तब वहूजी तकिये के सहारे बैठी गाल पर हाथ रक्खे व्याकुल चित्त से अपने दौर्भाग्य को सोच रही थी। चिन्ता का वारापार न था। सोच रही थी कि न मालूम पूर्वजन्म में मैंने क्या महापातक किया था जिसका यह दण्ड पा रही हूँ। यह कलङ्क अब मुझे आजीवन भोगना पड़ेगा। उसकी आँखों के आँसू सूख गये हैं। हृदय के भीतर प्रचण्ड दावाग्नि सी लग गई है।

सीढी से जब भूपेन्द्र उतरने लगा तब उसके बूट का प्रबल शब्द वहूजी के कानों तक पहुँचा। इस अपरिचित शब्द से वह चौंक उठी और उस ओर कान लगाये रही। बूट का शब्द क्रमश दूर होता गया। इसके बाद आँगन से वही बीभत्स

चिल्लाहट—हरेक बात—बहूजी के कान में गई। साथ साथ हवेली में जो शोर-गुल हुआ वह भी उसने सुना। अपमान और धिक्कार उसके चारों ओर—प्रज्वलित अग्नि की भाँति—धधक उठा। उसका सिर घूमने लगा। चेतन्य जाता रहा। न किसी ने देखा और न किसी ने जाना कि वह बिछौने पर मूर्च्छित होकर कब गिर पडी।

उधर भूपेन्द्र के बाहर जाते ही हवेली की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर परस्पर एक दूसरे का मुँह देखने और काना-फूसी करने लगीं। पूजा के कमरे से कमलादेवी तुरन्त निकल आई। जिस तिस से पूछने लगीं—"क्या कह गया है? वह कनक का भाई क्या कह गया है?" कमलादेवी ने भी भूपेन्द्र की पूरी बात सुन ली थी। किन्तु अपने कान की सुनी बात पर मानों वह विश्वास नहीं कर सकती थीं। ऐसे सर्वनाश की बात क्या एकाएक विश्वास के योग्य होती है?

कमला देवी के प्रश्न का उत्तर किसी ने नहीं दिया। तब वह रुँधी साँस से पुकारने लगीं—कनक कहाँ गई! शशिकला कहाँ है री! जल्द उसे बुला दे।

एक स्त्री ने एक कमरे की ओर उँगली दिखा कर कहा—शशिकला वहाँ है।

कमला देवी तब पगली की भाँति उस कमरे के भीतर गई। देखा, शशिकला दीवाल पकडे खडी खडी रो रही है। कमला देवी ने आँखें ऊपर चढा कर पूछा—शशी, शशी,—यह मेरा भूपेन्द्र नहीं है?

शशिकला रोते रोते बोली—नहीं।

"तो वह तुम्हारा स्वामी है?"

"हाँ" कह कर शशिकला बिलख बिलख कर रोने लगी।

कमला देवी तब बाहर आकर विक्षिप्त की भाँति इधर उधर देखने लगीं। हाँफते हाँफते पुकारने लगीं—कनक!—कनक कहाँ गई?

एक आदमी झट दौड कर ऊपर से कनक को बुला लाया। उसको देखते ही कमला देवी ने कहा—बेटी कनक, बता तो—तेरा भाई आँगन में खडा होकर क्या कह गया है?

कनक ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह सिर नीचा किये खडी रही।

कमला ने कहा—जो आया है वह क्या मेरा भवेन्द्र नहीं है?

कनक ने स्पष्ट स्वर में कहा—नहीं।"

"वह शशिकला का स्वामी है?

"हाँ।"

कमलादेवी ने सिर पीट कर "हा जगदीश्वर!" कहा। फिर वह कटे हुए पेड की भाँति काँपते काँपते जमीन पर गिर पडी।

यह खबर बाहर पहुँचने में भी विलम्ब नहीं हुआ। भूपेन्द्र तलमलाता हुआ कचहरी के मैदान से बाहर गया और इधर दफ्तर के कर्मचारियों के पास खबर पहुँची। नायब दीवान कालीप्रसाद बाबू तब तक कचहरी में नही आये थे। उनको बुलाने के लिए एक मुहर्रिर दौडा। नायब दीवान उस समय भोजन करने बैठे थे। उन्होंने झटपट दो-चार कौर खाकर मुँह धोया। दो बीडे मुँह में रख कर बहुत बडी तोंद के ऊपर चपकन के बटन लगाते लगाते वे दौडे आये। कचहरी पहुँच कर हाँफते हाँफते पूछा—भाग गया?

मुहर्रिर—नहीं।

नायब दीवान तब "जमादार जगबहादुर सिंह, जगबहादुर सिंह कह कह कर चिल्लाने लगा।

जमादार जगबहादुरसिंह हाजिर हुआ। नायब दीवान ने हुक्म दिया—जमादार, यह शख्स जो हम लोगों के पास बाबू बन कर आया है, वह बाबू नहीं चोट्टा है। जितने प्यादे और नौकर-चाकर हैं सब लोगों को लेकर जाओ। जिस कमरे में वह रहता है उसे चारों ओर से घेर कर सख्त पहरा बिठा दो जिसमें वह भागने न पावे।

"जो हुक्म" कह कर जमादार सिपाहियों को जमा करने के लिए दौड़ा।

नायब ने माथे का पसीना पोछ कर दो गिलास पानी पिया। कहने लगा—मैंने उसी समय सन्देह किया था परन्तु किसी से कहा नहीं। जो आदमी सोलह वर्ष से लापता है वह क्या अब लौट सकता है? दीवानजी उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों ही पर घुल गये। अगर मैं दीवान होता तो देखता, वह मेरी आँखों में कैसे धूल डालता है। भाग्य से मैं उनकी एवजी पर हूँ। अच्छा, मैंने रोक तो रक्खा, भागने नहीं दिया। अगर दीवानजी रहते तो अब तक वह किसी न किसी युक्ति से भाग गया होता। अरे एक गिलास पानी और दे।

एक बूढ़े कर्मचारी ने कहा—यह तो हुआ। अब क्या करना चाहिए?

असिस्टेन्ट दीवान ने गिलास नीचे रख कर कहा—थाने में खबर भेजता हूँ।

बूढ़े ने कहा—दारोगा पूछेगा कि ये भवेन्द्र बाबू नहीं हैं, इसका क्या सबूत? सिर्फ उस मतवाले की बात के ऊपर तो विश्वास करना नहीं चाहिए। बर्दवान के नकली प्रतापचन्द्र के मुकद्दमे की बात तो आप जानते ही हैं। जाल को साबित करना सीधी बात नहीं है।

बूढ़े की बात सुन कर नायब कुछ दब गया। सोचा, अगर

मतवाले की बात झूठी हो तो यह जो मैंने बाबू के चारों ओर पहरा बिठा दिया है इससे बाबू क्या समझेंगे। कल ही मेरी नौकरी चली जायगी। प्रकट रूप से कहा—वह नशेबाज़ कहाँ गया? उसे बुला कर अच्छी तरह पूछ लेना चाहिए। वह यहाँ से कब गया?

एक आदमी ने कहा—आध घंटा हुआ होगा।

नायब ने तब फिर सिपाहियों को लौट आने का हुक्म दिया। उनके लौट आने पर नायब ने उस मतवाले को खोज लाने का आदेश किया।

वृद्ध कर्मचारी ने कहा—मेरी समझ में आप बड़ी मालकिन से पूछ कर कोई काम करते तो अच्छा होता। हम लोग जितने हैं, सभी नौकर हैं। उनकी आज्ञा लेकर ही काम करना अच्छा है। वह क्या कहती हैं? थाने में खबर भेजने को कहती हैं, या दीवान जी को तार दिलवाती हैं—यह जान लेना जरूरी है।

नायब ने कहा—जाता हूँ, बड़ी मालकिन से जाकर तो पूछूँगा ही। उनसे बिना पूछे कोई काम थोड़े ही करूँगा! अरे, कोई है? जा तो—अन्दर माँजी के पास इत्तिला भेज दे कि नायब एक बार भेंट करना चाहते हैं।

माँजी का हुक्म आने में विलम्ब होने लगा। नायब दीवान बहुत चञ्चल हो उठे। आदमी पर आदमी भेजने लगे। आखिर उनकी तलबी हुई।

अन्दर जाकर कालीप्रसाद नियत स्थान में बिठाये गये। परदे में मालकिन थीं। कालीप्रसाद ने वहीं से उन्हें प्रणाम करके कहा—माँजी, यह जो सुना है सो क्या सच है?

माँजी ने दासी से कहलाया—हाँ।

"तो क्या ये हमारे बाबू नहीं हैं?"

"नहीं।"

"तो अब क्या करना चाहिए?"

"जो भगवान् करें।"

"थाने में खबर भेज दूँ?—मैंने अभी उन्हें हिरासत में रक्खा है।"

मालकिन—थाने में खबर मत भेजो। पहरे पर से सिपाहियों को हटा लो। कोई किसी तरह उसका अपमान न करे, कोई ऐसी बात न बोले जिससे उसे दुःख हो। अपने मन से जब वह जाना चाहेगा, चला जायगा।

नायब—और कोई हुक्म है?

"बहूजी की बीमारी बहुत बढ़ गई है। स्टेशन पर एक घुड़सवार को भेजो, कृष्णनगर के सिविल सर्जन को अर्जेन्ट तार दे, जिसमें वे साँझ की गाडी से यहाँ आजावें। जितने रुपये आवश्यक हों, टेलीग्राफ के जरिये उनके पास भेज दो। साँझ की गाडी के समय डाक्टर साहब को ले आने के लिए स्टेशन पर पालकी और सोलह कहार मौजूद रहें।"

"और कोई हुक्म? क्या दीवानजी को आने के लिए भी तार दिया जाय?"

"नहीं।"

प्रणाम करके नायब इजाजत ले चले गये। मालकिन के व्यवहार से वे क्षुब्ध हो पड़े। आहिस्ते आहिस्ते कचहरी में आकर पहले मालकिन के हुक्म की तामील की। इसके बाद अपने गंजे सिर के अग्रभाग पर हाथ फेरते फेरते सोचने लगे—जिस व्यक्ति ने ऐसा सर्वनाश किया है, जिसको कमर तक मिट्टी में गाड़ कर कुत्तों से नुचवा देने पर भी क्रोध शान्त होने का नहीं, उस सत्यानाशी ठग के ऊपर मालकिन ऐसी दयालु क्यों हैं?

दयालु होने का कारण है। कनकलता ने चिट्ठी दिखला कर मालकिन के निकट गोपाल को सत्यवादी प्रमाणित किया है। उस समय गोपाल यह बिलकुल ही नहीं जानता था कि एक पगला आकर इस बात को प्रकट कर देगा। तभी, उसने अपना सारा वृत्तान्त बहूजी पर जाहिर कर दिया था। कनक ने माँजी को समझा दिया है कि गोपाल ने समयानुसार बड़ी सावधानी से धर्म कर्म का अवलम्बन करके इस पवित्र कुल को कलङ्कित नहीं किया। इसलिए यह इनकी कृतज्ञता का ही पात्र है, और जन्म का दरिद्री होकर भी इस विपुल सम्पत्ति के पाने के लोभ को जीत कर न्यायपथ पर अटल रहा इसलिए वह भक्ति का भी पात्र है। धार्मिक लोगों से किञ्चित् भूल हो जाने पर भी वे क्षम्य हैं, नायब को इसका पूरा प्रमाण मिल गया।

---

[११]

यही भूपेन्द्र का उन्मत्त गर्जन सुनकर बहूजी जो मूर्च्छित हुई थीं वह उसी अवस्था में देर तक पड़ी रहीं। आध घंटे तक किसी ने उनकी खोज-खबर नहीं ली। आध घंटे में एक दासी किसी काम से वहाँ गई। पहले उसी ने सबको खबर दी। बहुत उपाय किये गये तब बहूजी की मूर्च्छा टूटी। मूर्च्छा टूटने के कुछ ही देर बाद उन्हें बड़े जोर से ज्वर चढ़ आया।

सायकाल की गाडी से कृष्णनगर के सिविल सर्जन आये। लगातार तीन दिन तक ज्वर चढा रहा। डाक्टर साहब की अविश्रान्त चिकित्सा से तीसरे दिन, आधी रात के बाद, बहूजी का ज्वर उतरने लगा। सूर्य्योदय के साथ साथ उनकी खोई हुई चेतना पलट आई।

शशिकला तब बहूजी की चारपाई के पास बैठी उनके मुँह पर मन्द मन्द पखा झल रही थी। बहूजी ने आँख खोली। कमरे के चारों ओर देखा। शशिकला की ओर देख कर अत्यन्त खिन्न-स्वर में कहा—तुम सारी रात मेरे पास बैठी रहती हो?

शशिकला ने कहा—नहीं, मैं तो देर तक यहाँ नहीं बैठती। बीच बीच में तुम्हें देख जाती हूँ। माँजी अभी यहीं बैठी थीं। मुझे बिठा कर के गङ्गा-स्नान करने गई हैं। उन्होंने दो दिन से न स्नान किया है और न कुछ खाया ही है।

बहूजी ने कहा—दो दिन से! मैं कितने दिन से बीमार हूँ?

"आज तीन दिन हो गये। परसो दोपहर को आप एकाएक मूर्च्छा खाकर बेहोश हो गई थीं।"

बहूजी ने कुछ सोचने की सी चेष्टा करके—"परसों—दो पहर को ? ओफ—हाँ।" कह कर आँखें मूँद लीं। उनकी मुँदी हुई आँखों से पलक की दाब न मान करके बूँद बूँद आँसू टपकने लगे।

उनको रोते देख शशिकला की समझ में न आया कि क्या कह कर उनको धैर्य दे। वह एकाएक "डाक्टर साहब ने कल कहा था"—कह कर चुप हो रही।

बहूजी ने आँख खोल कर शशिकला के मुँह की ओर देखा। पूछा—किसने ?

शशिकला—डाक्टर साहब ने।

"कौन डाक्टर साहब ?"

"कृष्णनगर से डाक्टर साहब आये हैं न।"

"कृष्णनगर से डाक्टर साहब आये हैं ? कब ?"

"परसों साँझ को।"

"ठीक है।" कह कर बहूजी दूसरी ओर देख कर कुछ सोचने लगीं।

शशिकला ने कहा—उन्होंने कहा है कि तुम कुछ अच्छी हो जाओगी तो तुम्हें हवा-पानी बदलना होगा।

बहूजी के नेत्रों से आँसू गिरने लगे। बोलीं—अब कोई आवश्यकता नहीं।

शशिकला—क्यों ?

"सब सुना है न ?"

"सुना तो है।"

"तो—अब मेरे जीने ही से क्या ?"

शशिकला ने कहा—बहन, तुम यह बात क्यों कहती हो ? मैंने एक दिन यह बात कही थी, उस पर तुमने मुझे क्या कह कर धिक्कारा था। याद नहीं है ?

बहूजी ने दुःख-भरी साँस लेकर कहा—तुम्हारी दशा से मेरी दशा में बहुत अन्तर है। मेरा जीवन तो कलङ्कित हो गया है। यह जीवन जितना शीघ्र समाप्त हो उतना ही अच्छा है।

शशिकला पखा रख कर बड़ी व्याकुलता से बहूजी का एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—यह बात तुम क्यो कहती हो? तुम्हारा तो कोई दोष नहीं है।

बहूजी ने कपार ठोक कर कहा—मेरे इस जले कपार का दोष है।

शशिकला ने कहा—तुम तो अपना स्वामी जान कर ही—

इस बात से बहूजी कुछ उत्तेजित हुईं। उनकी आँखें प्रदीप्त हो उठीं। उन्होंने कहा—हजार बात की यह एक बात है।

शशिकला ने उत्साहित होकर कहा—तुम्हारा शरीर और मन दोनों विशुद्ध हैं। कलङ्कित होने की बात क्यो कहती हो? लोग जो पत्थर की मूर्ति को ईश्वर मान कर पूजते हैं, वह पूजा पत्थर को प्राप्त होती है या ईश्वर को? उसी तरह तुमने भी अपने पति की ही पूजा की है।

बहूजी आँख मूँद कर बोलीं—अच्छा, मुझे सोचने दो।

शशिकला आग्रह के साथ उनका मुँह देखने लगी। बहूजी के नेत्रों की पलकें रह रह कर काँपने लगीं। साँस भी रह रह कर काँप उठती थी। कुछ क्षण यो ही बीतने पर उन्होंने आँखें खोल कर फिर शशिकला की ओर देखा। वह दृष्टि कृतज्ञता पूर्ण थी। बोलीं—हाँ, बहन, तुम ठीक कहती हो। अच्छा एक काम करो न।

शशिकला ने पूछा—क्या?

"मेरी इस आलमारी के नीचे की दराज में, दहने कोने में, एक हाथी दाँत का बाक्स है। उसे ले आओ।"

शशिकला आलमारी खोल कर बाक्स ले आई। बहूजी ने बाक्स लेकर बड़े स्नेह के साथ छाती के ऊपर रक्खा।

शशिकला ने कहा—बहन, इसमें क्या है ?

बहूजी ने धीरे धीरे बाक्स को खोला। उसके भीतर एक रेशमी रूमाल के कोने में कुछ बँधा हुआ था। बहूजी ने उस रूमाल को निकाल लिया। बाक्स को बिछौने पर रक्खा। रूमाल को छाती के ऊपर रख कर धीरे धीरे गाँठ खोलने लगीं। उसमें से एक अँगूठी निकली।

शशिकला ने पूछा—यह किसकी अँगूठी है ?

बहूजी के होठों में कुछ हँसी की झलक आ गई। बोलीं—इस अँगूठी को वे पहनते थे।

यह सुन कर शशिकला की आँखों में आँसू भर आये। बहूजी ने शशिकला की ओर करवट बदली। रूमाल को बिछौने पर फैला कर हाथ से उसे अच्छी तरह खींच तान कर दुरुस्त किया। फिर अँगूठी को चूम कर उसी तरह रूमाल में बाँध बाक्स में रक्खा और उसे आलमारी में रखवा दिया।

शशिकला ने देखा, बहूजी की आँखें बन्द हैं। अब शशिकला उनके पास बैठ गई। बहूजी ने एक बार आँखें खोल कर कहा—मुझे नींद आ रही है।

"सो जाओ" कह कर शशिकला उनके मुँह पर धीरे धीरे पखा झलने लगी। बहूजी शीघ्र ही सो गईं। शशिकला ने देखा, उनके मुँह पर आज कई दिनों के बाद शान्ति की शोभा विराज रही है।

---

[१२]

अन्दर महल में शशिकला के नाम से जो स्त्री कुछ दिन से रहती है यह गोपाल की पत्नी है। यह बात, भूपेन्द्र के द्वारा फैलाये जाने के कुछ क्षण बाद, गोपाल ने भी सुनी। इससे उसके आश्चर्य की सीमा न रही। पाँच-छ महीने पहले जो लीलावती बसन्तपुर से नवीनचन्द्र के साथ गायब हुई थी वह किस प्रकार यहाँ आ पहुँची, यह गोपाल की समझ में नहीं आया। शशिकला का नाम उसने बारबार सुना है, परन्तु आज तक एक बार भी उसे आँख से देखा नहीं। इसका कारण यह कि वह गोपाल की दृष्टि से बची रहने के लिए विशेष सावधानी रखती थी। इस विषय में गोपाल को अब रत्ती भर भी सन्देह नहीं रहा। इन बातों को सोच कर उसका कुतूहल क्रमश बढने लगा। वह अब पूछे तो किससे? अन्त पुर का द्वार उसके लिए बन्द ही हो गया। दो एक दासियाँ अब भी बीच बीच में किसी काम से उसके पास आजाती ह, किन्तु उनसे इस विषय में कोई बात पूछने की उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। कनकलता से जो उसकी आखिरी बातचीत हुई थी, वह भी उसे स्मरण हो आई। यहाँ से विदा होने के पहले एक बार भेंट के लिए कनक का अतिशय आग्रह के साथ अनुरोध करना, तब एक प्रकार की पहेली सा जान पडा था। अब गोपाल की समझ में वह पहेली आ गई।

बहूजी की हालत अब वैसी खराब नहीं है, यही सुनने के लिए गोपाल ठहरा हुआ था। अब यह सुना है। सुन कर उसे चल देना चाहिए था, पर नहीं गया। लीलावती से मिलने की



भी उसको इच्छा नहीं। उसने जैसा कुछ सुना है और विश्वास किया है, उससे वह इच्छा अब उसके मन में उत्पन्न भी नहीं हो सकती। तब जिसका हाथ उसने मन्त्रोच्चारण करके पकड़ा था, जिसे इतने दिनों तक वह अपनी अर्धाङ्गिनी समझता था, उसका क्या हुआ और परिणाम में उसका क्या होगा? यह जानने के लिए गोपाल के मन को एक आग्रह दबाये हुए था। इसके सिवा कनकलता से उसकी भेट कैसे होगी? बिना भेट किये वह कैसे जायगा? इस प्रकार की दुविधा में पड कर उसने और भी दो दिन बिता दिये।

तीसरे दिन सबेरे सुना कि दीवानजी को दार्जिलिङ्ग के पते पर तार दिया गया है। कल वे आ जायँगे। कमलादेवी और उनकी पतोहू रत्नकला तीर्थयात्रा की तैयारी कर रही हैं। दिन भी नियत हो गया है। यह सुन कर गोपाल ने सोचा कि मैं यहाँ से हिलना नहीं चाहता, इसी से ये झटपट यहाँ से जा रही हैं। दुर्जन के कारण घर छोडना चाहती हैं। इसलिए अब विलम्ब करना अनुचित जान उसने तीसरे पहर की गाडी से जाने का निश्चय किया। माँजी उस पर नितान्त निर्दय नहीं हैं। उन्हीं की आज्ञा से उस पर से पहरा हटा लिया गया है, उन्हीं की दया से उसे अपार अपमान और पुलिस की हथकडियों से छुटकारा मिला है—यह उसे मालूम था। इसी से वह उन्हें एक बार प्रणाम करने जायगा और कनकलता से एक बार भेट करने की माँजी से आज्ञा माँगेगा।

स्नान आदि करके गोपाल ने अन्दर इत्तिला भेजी। इत्तिला पाते ही कमलादेवी ने उसे बुला भेजा। भीतर जाते ही जो सब से पहला कमरा था उसी में दासी ने गोपाल को बिठाया। कुछ क्षण बाद कमलादेवी वहाँ आईं।

गोपाल ने देखा, उनका मुँह गाम्भीर्य पूर्ण है, दृष्टि नीचे की ओर है। उनके बैठने का आसन था, किन्तु वह बैठी नहीं। गोपाल काँपता हुआ उनके सामने आया। अब वह क्या कह कर उन्हें पुकारेगा? "माँ" कहने का अधिकार अब उसे कमलादेवी देंगी या नहीं,—इसका वह निश्चय नहीं कर सका। धीरे धीरे घुटने टेक धरती में सिर लगा कर उसने प्रणाम किया। इसके बाद कष्ट से आँसू रोक कर नीची नजर करके कहा—"मेरे सब अपराध क्षमा कीजिए।" यह कह कर उसने सिर उठाया और कातर दृष्टि से कमलादेवी की ओर देखा। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है।

देख कर गोपाल की आँखों से भी आँसू बहने लगे। उसने काँपते हुए स्वर से कहा—"मैं आपको माँ कहने योग्य नहीं, मैं महापापी हूँ। यदि आज्ञा हो तो आपके चरणों की रज लेकर यहाँ से सदा के लिए चला जाऊँ।" कमला देवी के होंठ काँपने लगे। "बेटा" के सिवा वे और कुछ भी नहीं बोल सकीं। प्रबल अश्रुधारा में उनका वक्तव्य बह गया। मुँह के ऊपर आँचल डाल कर वह काँपने लगीं।

"मैंने अपने को जैसा हतभाग्य समझा था, देखता हूँ कि वैसा नहीं हूँ। आपने 'बेटा' कह कर मुझे 'माँ' कहने का अधिकार दिया है। माँ, तो मैं अब चला।" कह कर गोपाल ने फिर धरती में सिर रख कर प्रणाम किया।

कमला ने आँखों पर से आँचल हटा कर कहा—"बेटा जाओ। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारी बुद्धि धर्म में अटल बनी रहे। तुम्हें फिर सुख मिले।" यह कह कर वह धीरे धीरे द्वार की ओर अग्रसर हुईं। द्वार के समीप जाकर एकाएक रुक गईं और



बोली—"ज़रा ठहर जाओ, कनक तुम से भेंट करेगी।" कनक से भेंट करने की बात गोपाल भूल गया था।

पाँच मिनट के बाद कनकलता उस कमरे में आई। गोपाल तब एक कुरसी पर बैठ गया था। उस के पास आकर कनक खड़ी हुई। उसके अनुरोध करने पर भी वह नहीं बैठी। कनक ने कोमल स्वर में पूछा—क्या आप आज ही जायँगे?

गोपाल ने कहा—दोपहर की गाड़ी से चला जाऊँगा। बहूजी अब कैसी हैं?

कनक ने कहा—लोग देखने से यही कहेंगे कि अब वे बहुत अच्छी हैं, परन्तु यह बात मैं नहीं कह सकती। उनकी आरोग्यता पर मैं विश्वास नहीं करती।

गोपाल—सुना है, परसों ही वे तीर्थयात्रा करेंगी। शरीर की ऐसी अवस्था में घर छोड़ कर इतना शीघ्र जाना अच्छा होगा?

"यह बात हम सब उनसे कहते कहते हार गईं, किन्तु वे अब यहाँ किसी तरह रहना नहीं चाहतीं।"

"कहाँ जाने की बात स्थिर हुई है?"

"काशी जाने की। आप अब कहाँ जाइएगा?"

गोपाल—मैं अभी कलकत्ते को जाता हूँ। वहाँ से और कहीं चला जाऊँगा।

कनक—लीलावती कुछ दिन से यहाँ है, यह आपने सुना है?

गोपाल—हाँ, सुना है।

"उसकी आपने क्या व्यवस्था की?"

"अपनी व्यवस्था तो उसने आप ही कर ली है। मैं अब उस की क्या व्यवस्था करूँगा? आप तो सब जानती ही हैं।"

"मैं जानती हूँ, किन्तु आप नहीं जानते। लीलावती के सम्बन्ध में आप एक भ्रम में हैं।"

यह बात सुन कर गोपाल चौंक उठा। पूछा—क्यों ? मैं किस भ्रम में हूँ ?

कनक ने कहा—आपकी स्त्री सती साध्वी है, पर कुछ निर्बोध अवश्य है। अपनी नासमझी से इस फसाद में फँसी है।

गोपाल कुछ आग्रह के साथ सिर ऊँचा करके बोला—सो कैसे ?

कनक ने तब एक एक कर लीलावती का सारा वृत्तान्त गोपाल को कह सुनाया।

सुन कर गोपाल कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा। फिर बोला—यह बात तो तुमने लीलावती के ही मुँह से सुनी होगी। उसकी बात का विश्वास क्या ? अपना दोष छिपाने के लिए ऐसी कोई एक बात तो वह गढ़ कर कहेगी ही।

कनक—उससे यह बात मैंने पहले नहीं सुनी।

"तो पहले किससे सुनी ?"

"आपके किसी मित्र से।"

"मेरे किस मित्र से ?"

"वही जो पागल की तरह बक गया है, वही भूपेन्द्र बाबू। आप के प्रति अकृत्रिम मित्रतावश उसने आपसे अपना मतलब गाँठने के लिए आपके जीवनचरित का उपकरण संग्रह करते करते यह बात मालूम की थी।"

गोपाल कनक के मुँह की ओर देखने लगा। उसके मन में सन्देह होने लगा कि लीलावती पर स्नेह करके उसके हितार्थ शायद यह झूठ-मूठ ये बातें कह रही है।

कनक ने कहा—क्या आपको मेरी बात का विश्वास नहीं होता ?

गोपाल—आपकी यह बात सच है, इसका प्रमाण ?

कनक—पहले तो यह कि मैं आपसे झूठ क्यों कहूँगी? इसमें मेरा लाभ क्या है?

"लीलावती आपकी सहेली है। सहेली का उपकार करना तो लाभ ही है।"

"लीलावती मेरी सखी नहीं है।"

"तो एक दुखिया का उपकार ही सही।"

कनक जरा हँस कर बोली—किसी का उपकार करना मेरी जन्मपत्री ही में नहीं लिखा। यह कुछ नहीं। यदि आप प्रमाण चाहते हैं तो मैं अकाट्य प्रमाण दे सकती हूँ।'

गोपाल—क्या?

"आपके परम हितैषी का हस्ताक्षर।" कह कर कनक झटपट बाहर गई। दो मिनट के बाद लौट कर गोपाल के हाथ में उसने कई एक पत्र दिये।

गोपाल ने एक एक कर वे सब पत्र पढे। लिफाफों को उलट पलट कर डाक घर की मुहर देखी। आखिर एक लम्बी साँस लेकर दूसरी ओर देखने लगा।

कनक ने कहा—क्या सोच रहे हैं आप? क्या लीलावती के ऊपर आपको और कुछ सन्देह है?

गोपाल ने पूछा—माँजी को यह हाल मालूम है?

"अब उन्हें सब बातें मालूम हो गई हैं।"

"इस विषय में उनकी क्या राय है?"

कनक ने कहा—उनकी राय क्या है, यह आप उनके व्यवहार से नहीं समझ सके?

गोपाल ने अचम्भे के साथ कहा—क्या व्यवहार?

कनक—क्या वे आपको मुझ से भेंट करने के लिए नहीं कह गई?

"हाँ, ठीक है। अच्छा, वे क्या कहती हैं ?"

"सब सुन कर और ये पत्र पढ़ कर माँजी आपकी गृहिणी की बुद्धि की बहुत प्रशंसा करती हैं।"

गोपाल ने अधीर होकर कहा—मैं लीलावती को ग्रहण करूँ या नहीं, इस सम्बन्ध में उन्होंने क्या कुछ राय दी है ?

कनक—हाँ, दी है। उन्होंने कहा था कि अपनी विवाहिता स्त्री को बिना अपराध के त्याग कर गोपाल कभी अधर्म नहीं करेगा।

गोपाल सिर झुकाकर सोचने लगा। "तुम्हें फिर सुख मिले।" माँजी के इस आशीर्वाद का गूढ़ संकेत अब उसने समझा।

कनक—तो लीलावती को यहाँ भेज दूँ ?

गोपाल—नहीं, अभी रहने दो। उसे मैं साथ ले जाऊँगा। अब बाहर जाता हूँ, आपका उपकार मैं जीवन भर न भूलूँगा।



उसी दिन दोपहर को गाँव से एक डोली और एक पालकी बाहर निकली। कलकत्ते पहुँच कर वहाँ एक छोटा सा मकान किराये पर लिया। गोपाल वहाँ करीब एक महीने रह कर नौकरी का उद्योग करने लगा। कमलादेवी ने लीलावती को कुछ रुपये दिये थे। इससे गोपाल को खर्च के लिए कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

एक महीने की कोशिश से गोपाल बङ्गाल-नागपुर-रेलवे के एक छोटे से स्टेशन का छोटा बाबू नियुक्त होकर सस्त्रीक कलकत्ते से वहाँ के लिए रवाना हो गया।



दो महीने बाद एक दिन लीलावती को कनकलता का लिखा एक पत्र मिला। उसके पढ़ने से ज्ञात हुआ कि कनक भी मालकिन के हाथ-पैर जोड़ कर उनके साथ काशी गई थी। वहाँ

पहुँचने पर बहूजी का रोग उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। गत कार्त्ति पूर्णिमा को उन्हें काशी-लाभ हो गया। मृत्यु के दो दिन पहले ही से वह पति की अँगूठी को हमेशा अपने आँचल में बाँधे रहती थीं और उनके अनुरोध से उस अँगूठी को भी उनकी चिता में स्थान मिला।

❀ समाप्त ❀

मुद्रक—रामप्रसाद वाजपेयी, कृष्ण प्रेस, प्रयाग।